छायावादोत्तर हिन्दी कविता में सौन्दर्य-बोध

(केदार, नागार्जुन एवं त्रिलोचन के विशेष सन्दर्भ में)

बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय, झाँसी की पी-एच0 डी0 उपाधि हेतु प्रस्तुत

शोध-प्रबन्ध



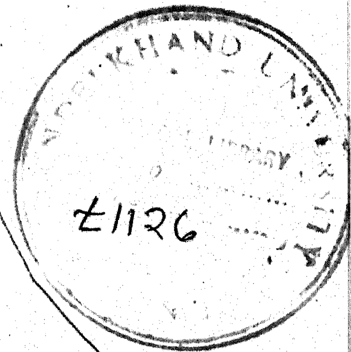
शोध-छात्रा

अर्चना गुप्ता

निर्देशक

डॉ0 ज्ञान प्रकाश तिवारी

रीडर, हिन्दी-विभाग



पं0 जवाहरलाल नेहरू स्नातकोत्तर महाविद्यालय

सन् 1998 **बाँदा (उ0प्र0), इंडिया**

डॉ० ज्ञान प्रकाश तिवारी
रीडर, हिन्दी-विभाग
पं० जवाहरलाल नेहरू पी०जी० कालेज, बाँदा ।

प्रमाण-पत्र

प्रमाणित किया जाता है कि-

1. कु० अर्चना गुप्ता ने मेरे निर्देशन में "छायावादोत्तर हिन्दी कविता में सौन्दर्य-बोध (केदार, नागार्जुन एवं त्रिलोचन के विशेष संदर्भ में)" विषय पर शोध कार्य किया है ।
2. इन्होंने मेरे यहाँ निर्धारित अवधि तक उपस्थिति दी है ।
3. यह शोध-प्रबन्ध छात्रा के गहन अध्ययन और चिन्तन का मौलिक परिणाम है ।

मैं समझता हूँ कि यह शोध-प्रबन्ध अब इस स्थिति में है कि इसे पी-एच.डी. उपाधि हेतु मूल्यांकन के लिए प्रस्तुत किया जा सकता है ।

15/11/98

(डॉ० ज्ञान प्रकाश तिवारी)
निर्देशक

प्राक्कथन्

सौन्दर्य काव्य का आवश्यक, उपादान है । पाश्चात्य और पौर्वात्य विद्वानों ने सौन्दर्य के स्वरूप और उसकी स्थिति पर व्यापक विचार किया है, किन्तु सौन्दर्य की प्रकृति गत्यात्मक होने के कारण उसका कोई अन्तिम स्वरूप स्थिर नहीं हो सका । काव्य के सन्दर्भ में भी सौन्दर्य की अवधारणा निरन्तर बदलती रही है । छायावादोत्तर हिन्दी कविता का सौन्दर्य-बोध पूर्ववर्ती काव्य धाराओं से सर्वथा भिन्न है । छायावादोत्तर कवियों, विशेष रूप से प्रगतिशील काव्य-धारा के कवियों ने मार्क्स-दर्शन के आलोक में सामाजिक-चेतना और भाव-बोध को अपना लक्ष्य बनाकर काव्य-रचना की है । इनकी कविता का उद्देश्य किसी कल्पना लोक में विचरण करना नहीं, बल्कि सामाजिक यथार्थ को इस प्रकार चित्रित करना है कि कुरूप, शोषक, सड़ी-गली, विसंगतिग्रस्त शक्तियों का पर्दाफाश हो और नयी सामाजिक शक्तियों के संघर्षो, युयुत्सा और आस्था को बल मिले । जनता तक पहुँचना और जनता के जीवन की ही बात कहना इनका लक्ष्य होने के कारण-इन्होंने छन्द, अलंकार और रस जैसे परम्परागत काव्य-शास्त्रीय प्रतिबन्धों से अलग हटकर सरल-सहज भाषा में अपनी बात कहने पर जोर दिया है और अपनी अभिव्यक्ति को अधिक प्रभावशाली तथा लोक ग्राह्य बनाने के लिए प्रतीक, बिम्ब, शब्द, मुहावरे आदि सभी का चयन जन-जीवन के बीच से किया है। फलतः एक बहुत ही जीवन्त भाषा का उदय हुआ है ।

केदारनाथ अग्रवाल, नागार्जुन और त्रिलोचन का छायावादोत्तर हिन्दी कविता में महत्वपूर्ण स्थान है । इन कवियों के जीवन और साहित्य पर तो कुछ शोध कार्य हुआ है, किन्तु इनके सौन्दर्य-बोध का अभी तक गंभीर अध्ययन नहीं हो सका था । इसी कमी को पूरा करने के लिए मैंने केदार, नागार्जुन और त्रिलोचन के विशेष सन्दर्भ में छायावादोत्तर हिन्दी-कविता के सौन्दर्य-बोध का विस्तृत अध्ययन किया है । मेरा विश्वास है कि इस अध्ययन से न केवल आलोच्य कवियों के सौन्दर्य-बोध पर प्रकाश पड़ेगा, बल्कि यह समसामयिक हिन्दी कविता के भी अनेक प्रश्नों को स्पष्ट करता हुआ, उसे अपनी दिशा खोजने में सहायता दे सकेगा ।

प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध के प्रथम अध्याय में भारतीय तथा पाश्चात्य दृष्टि को ध्यान में रखते हुए सौन्दर्य का तात्विक विवेचन तथा हिन्दी काव्य में क्रमागत सौन्दर्य दृष्टि के विकास का तुलनात्मक परीक्षण किया गया है । दूसरे अध्याय में आलोच्य कवियों-केदार, नागार्जुन और त्रिलोचन के व्यक्तित्व एवं कृतित्व पर प्रकाश डालते हुए उनकी सौन्दर्य-चेतना का तुलनात्मक अनुशीलन किया गया है । तीसरे और चौथे अध्याय में क्रमशः आलोच्य कवियों के वस्तुगत तथा आत्मगत सौन्दर्य-बोध का सोदाहरण विवेचन है । पांचवे, छठें तथा सातवें अध्याय में क्रमशः आलोच्य कवियों के कल्पना-सौन्दर्य, बिम्ब-सौन्दर्य तथा प्रतीक-सौन्दर्य पर प्रकाश डाला गया है । अन्तिम अध्याय में शोध-प्रबन्ध का उपसंहार करते हुए आलोच्य कवियों के सौन्दर्य-बोध का तुलनात्मक निष्कर्ष एवं

परवर्ती हिन्दी कविता में उसके प्रभाव की चर्चा की गई है ।

प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध-की पूर्णता पर सर्वप्रथम मैं अपने शोध-निर्देशक डॉ0 ज्ञानप्रकाश तिवारी रीडर, हिन्दी-विभाग पं0 जवाहरलाल नेहरू स्नातकोत्तर महाविद्यालय, बाँदा के प्रति श्रद्धावनत हूँ, जिन्होंने मुझे सतत् जागरूक रखकर विषय की गुरूता का बोध कराया एवं समुचित मार्ग-दर्शन करते हुए प्रबन्ध की पूर्णता में अपना सक्रिय सहयोग प्रदान किया । पूज्य गुरूवर की इस महती कृपा के लिए मैं हृदय से उनके प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करती हूँ ।

इस अवसर पर मैं पं0 जवाहरलाल नेहरू स्नातकोत्तर महाविद्यालय, बाँदा के हिन्दी-विभाग के गुरूजनों- डॉ0 चन्द्रिका प्रसाद दीक्षित 'ललित', रीडर, डॉ0 मनोरमा अग्रवाल, रीडर, डॉ0 देवलाल मौर्य, रीडर एवं अपने पूज्य पिता जी डॉ0 रामगोपाल गुप्त रीडर एवं अध्यक्ष, हिन्दी-विभाग के प्रति हृदय से नमन करती हुई विशेष आभारी हूँ जिन्होंने स्नेहिल वातावरण के बीच अपने अमूल्य सुझावों एवं प्रेरणाओं से मेरा मार्ग-दर्शन करते हुए मुझे शोध की पूर्णता तक पहुँचाया ।

मैं आलोच्य कवियों में सर्वप्रथम आदरणीय बाबू श्री केदारनाथ अग्रवाल के श्री-चरणों में प्रणाम निवेदित करती हुई उनके प्रति-हृदय से आभार व्यक्त करती हूँ, जिनके सानिध्य में मुझे सदैव वात्सल्य और ममत्व प्राप्त होता रहा । बाबू जी ने न केवल अपने विषय में अपितु प्रगतिशील काव्य-धारा के अग्रिम पांक्तेय कवियों-श्री नागार्जुन और श्री त्रिलोचन शास्त्री के विषय में भी अनेक जानकारियाँ और संस्मरण सुना कर हमारा मार्ग-दर्शन किया । श्री नागार्जुन जी के पुत्र श्री शोभाकान्त मिश्र के प्रति आभार व्यक्त करती हूँ, इन्होंने अपने पूज्य पिता जी के कृतित्व और व्यक्तित्व से संबंधित सामग्री और जानकारियाँ उपलब्ध कराने की महती कृपा की है । श्री त्रिलोचन शास्त्री के प्रति-पूर्ण श्रद्धा-भाव से मैं कृतज्ञता ज्ञापित करती हूँ । इन्होंने अपने व्यक्तित्व और कृतित्व से सम्बन्धित अनेक जानकारियाँ देकर मेरी उत्सुकताओं को शान्त किया । परिणाम स्वरूप मैं आलोच्य कवियों की विषय की व्यापकता और गहराई में उतर कर कुछ मोती पाने में समर्थ हो सकी ।

डॉ0 राम विलास शर्मा, डॉ0 कमला प्रसाद पाण्डेय, डॉ0 अजय तिवारी, डॉ0 अशोक त्रिपाठी, श्री अजित पुष्कल, श्री नासिर अहमद सिकंदर, श्री नरेन्द्र पुण्डरीक, श्री चन्द्रपाल कश्यप, डॉ0 रामशंकर द्विवेदी व डॉ0 दुर्गाप्रसाद श्रीवास्तव, प्रभृति अनेक सुधी समीक्षकों, विद्वानों एवं कवियों के प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करती हूँ जिनके प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष सहयोग, प्रेरणाओं एवं मार्ग दर्शन से मैं इस गुरू-गम्भीर विषय के वैचारिक पक्ष को पकड़ सकी ।

जिन अन्य विद्वानों के ग्रन्थों से मैंने अपने शोध-प्रबंध लिखने में सहायता ली है, उनके नाम यथास्थान अंकित किये है । मैं अत्यन्त विनम्रता पूर्वक इन समस्त मनीषियों के प्रति कृतज्ञता प्रकट करती हूँ । हो सकता है कि पूर्ण सावधानी रखने पर भी कोई नाम छूट गया हो, उसके लिए मैं क्षमा प्रार्थी हूँ । साथ ही पूर्व कण्ठाग्र किन्हीं विद्वतजनों की किसी विषय सामग्री का यदि

कहीं संदर्भ संकेत न किया जा सका हो तो उसके लियें मैं उन विद्वानों से क्षमा चाहती हूँ एवं हृदय से कृतज्ञता प्रकट करती हूँ ।

इस अवसर अपने जनक-जननी को स्मरण न करना अपने को ही भूलना है । मैं अपने पूज्य पिता श्री डॉ0 रामगोपाल गुप्त एवं पूज्या माता-श्री श्रीमती सुशीला लहारिया के प्रति श्रद्धावनत हूँ जिन्होंने सुन्दर संस्कारों के बीच मेरा लालन-पालन कर मुझे शोध-कार्य जैसे महत् एवं उच्च सोपान तक पहुँचाया । मैं अपने अनुज प्रिय मनु लहारिया, जिसकी दौड़-धूप का रंग इस शोध-प्रवंध में मुझे स्पष्टतः आभातित होता है, के प्रति आभार व्यक्त करने में संकोच का अनुभव करती हूँ, कारण कि एक तो वह मुझसे बहुत छोटा है और दूसरा, कहीं वह इसे मात्र लौकिक शिष्टाचार न मान बैठे, उससे प्राप्त सखा-भाव और आदर का मैं सम्मान करती हूँ । साथ ही अपने अनुज तुल्य श्री जितेन्द्र बाजपेयी (छात्र, एम.ए.पूर्वार्द्ध, हिन्दी) के प्रति भी आभार व्यक्त करती हूँ इन्होंने शोध-प्रबन्ध को पढ़कर टंकण सम्बन्धी त्रुटियों के निवारण में मेरा भरपूर सहयोग किया है ।

मैं अपने पति (इन्जीनियर) श्री अवनीश कुमार गुप्त और अपने पितृ-मातृ तुल्य श्वसुरजी एवं सास जी के प्रति कृतज्ञता प्रकट करती हुई उनकी श्री-चरणों में नमन करती हूँ । आप सबने शोध की गुरूता और महत्ता को समझते हुए मुझे शोध-प्रबंध पूर्ण करने हेतु न केवल अवसर उपलब्ध कराया वरन् मुझे प्रोत्साहित भी किया ।

अन्त में मैं श्री राजेश कुमार गुप्त प्रोपाइटर पी.डी.कम्प्यूटर्स बाँदा एवं श्री बिहारी शरण निगम के प्रति भी आभार व्यक्त करती हूँ जिन्होंने इस शोध-प्रबंध के स्वच्छ एवं शुद्ध टंकण में अपना योगदान देकर महत्वपूर्ण भूमिका अर्पित की है ।

दिनांक 15.11.98

अर्चना गुप्ता

अर्चना गुप्ता
शोध-छात्रा

कहीं संदर्भ संकेत न किया जा सका हो तो उसके लियें मैं उन विद्वानों से क्षमा चाहती हूँ एवं हृदय से कृतज्ञता प्रकट करती हूँ ।

इस अवसर अपने जनक-जननी को स्मरण न करना अपने को ही भूलना है । मैं अपने पूज्य पिता श्री डॉ० रामगोपाल गुप्त एवं पूज्या माता-श्री श्रीमती सुशीला लहारिया के प्रति श्रद्धावनत हूँ जिन्होंने सुन्दर संस्कारों के बीच मेरा लालन-पालन कर मुझे शोध-कार्य जैसे महत् एवं उच्च सोपान तक पहुँचाया । मैं अपने अनुज प्रिय मनु लहारिया, जिसकी दौड़-धूप का रंग इस शोध-प्रबंध में मुझे स्पष्टत: आभातित होता है, के प्रति आभार व्यक्त करने में संकोच का अनुभव करती हूँ, कारण कि एक तो वह मुझसे बहुत छोटा है और दूसरा, कहीं वह इसे मात्र लौकिक शिष्टाचार न मान बैठे, उससे प्राप्त सखा-भाव और आदर का मैं सम्मान करती हूँ । साथ ही अपने अनुज तुल्य श्री जितेन्द्र बाजपेयी (छात्र, एम.ए.पूर्वार्द्ध, हिन्दी) के प्रति भी आभार व्यक्त करती हूँ इन्होंने शोध-प्रबन्ध को पढ़कर टंकण सम्बन्धी त्रुटियों के निवारण में मेरा भरपूर सहयोग किया है ।

मैं अपने पति (इन्जीनियर) श्री अवनीश कुमार गुप्त और अपने पितृ-मातृ तुल्य श्वसुरजी एवं सास जी के प्रति कृतज्ञता प्रकट करती हुई उनकी श्री-चरणों में नमन करती हूँ । आप सबने शोध की गुरूता और महत्ता को समझते हुए मुझे शोध-प्रबंध पूर्ण करने हेतु न केवल अवसर उपलब्ध कराया वरन् मुझे प्रोत्साहित भी किया ।

अन्त में मैं श्री राजेश कुमार गुप्त प्रोपाइटर पी.डी.कम्प्यूटर्स बाँदा एवं श्री बिहारी शरण निगम के प्रति भी आभार व्यक्त करती हूँ जिन्होंने इस शोध-प्रबंध के स्वच्छ एवं शुद्ध टंकण में अपना योगदान देकर महत्वपूर्ण भूमिका अर्पित की है ।

दिनांक 15.11.98

अर्चना गुप्ता

अर्चना गुप्ता
शोध-छात्रा

अनुक्रम

अध्याय-१

सौन्दर्य का तात्विक विवेचन

'सौन्दर्य' की व्युत्पत्ति, परिभाषा,

(क) भारतीय दृष्टि,

(ख) पाश्चात्य दृष्टि,

(ग) हिन्दी काव्य में क्रमागत सौन्दर्य दृष्टि -

(1) द्विवेदीयुगीन सौन्दर्य-दृष्टि

(2) छायावादी सौन्दर्य-दृष्टि

(3) छायावादोत्तर सौन्दर्य-दृष्टि - प्रगतिवाद, प्रयोगवाद, नयी कविता ।

तुलनात्मक निष्कर्ष

अध्याय-१

सौन्दर्य का तात्विक विवेचन

सौन्दर्यशास्त्र व्यापक रूप में सौन्दर्य का शास्त्र है, जिसमें उपयोगी और ललित सभी कलाओं - संगीत, साहित्य, रंगमंच, नृत्य, फिल्म, पेंटिंग, वास्तु, मूर्ति आदि के साथ-साथ प्रकृति, मानव-जीवन और जगत के प्रत्येक क्षेत्र में उपस्थित आनुभूतिक एवं आभिव्यक्तिक सौन्दर्य का अध्ययन होता है । सौन्दर्यशास्त्र का यह व्यापक स्वरूप वस्तुत: सौन्दर्य की व्यापकता के ही कारण है ।

सौन्दर्य की व्युत्पत्ति - विद्वानों द्वारा 'सौन्दर्य की' व्युत्पत्ति अनेक प्रकार से की गयी है । 'सौन्दर्य' सुन्दर की भाववाचक संज्ञा है । वाचस्पत्यकोश के अनुसार 'सु' उपसर्ग पूर्वक 'उन्द्' धातु में 'अरन' प्रत्यय जोड़कर 'सुन्दर' की सिद्धि की गई है जिसका अर्थ हुआ अच्छी तरह से आर्द्र करने वाला । (१) 'नन्द्' धातु से भी 'सुन्दर' की व्युत्पत्ति मानी गई है सु + नन्द् अर्थात जो भली प्रकार से प्रसन्न करे । 'संस्कृत-हिन्दी-कोश' में 'सुन्दर' की व्युत्पत्ति सुन्द् + अर् से की गई है । (२)

'सुन्दर' की एक व्युत्पत्ति - सुन्दं राति इति सुन्दरम् । 'सुन्द' का अर्थ है कर्तनी अर्थात जो कैंची की तरह काटने वाला हो, उसको जो लाता हो, वह 'सुन्दर' हुआ । सौन्दर्य हृदय पर, नेत्र के द्वारा, कैंची की-सी काट वाला पक्का प्रभाव करता ही है, यह कौन नहीं जानता है ?(३)

इसके अतिरिक्त सुनर् तथा 'असून' से भी 'सुन्दर' का सम्बन्ध जोड़ा गया है । (४)

परिभाषा :- पाश्चात्य एवं भारतीय विद्वानों ने 'सौन्दर्य' पर अपने-अपने मत दिये, परन्तु इतने प्रयासों के बावजूद भी 'सौन्दर्य' पर एक सर्वमान्य दृष्टि सामने नहीं आ सकी । पाश्चात्य विद्वानों में यूनान में सुकरात, अफलातून और अरस्तू ने, रोम में प्लूटार्क, प्लाटिनस ने, जर्मनी में बाउमगार्तेन, कान्ट, हीगेल, शापेनहावर, और लेसिंग ने, इंग्लैण्ड में शैफ्टसबरी, रस्किन, एडिसन, वर्क और बेन ने मुख्य रूप से तथा अन्य देशों में अनेक विद्वानों ने सौन्दर्य को परिभाषित करने का प्रयास किया। भारतीय कवियों, विचारकों ने भी सौन्दर्य को परिभाषित करने का यत्न किया ।

पाश्चात्य विचारकों में बाउमगार्तेन, हीगेल, क्रोचे, कीट्स, शीलिंग आदि ने सौन्दर्य पर अपने महत्वपूर्ण विचार प्रस्तुत किये । कुछ विचार निम्नवत् हैं -

वाउम गार्तेन के अनुसार-

"The appearance of perfections or perfection, obious to taste in the wide sense, is beauty." 5

१.	वाचस्पत्यम् कोश,	:		पृ० ५३१४
२.	संस्कृत हिन्दी कोश	:	बी०एस० आप्टे	पृ० ११९५
३.	जयशंकर प्रसाद वस्तु और कला	:	डॉ० रामेश्वर लाल खण्डेलवाल	पृ० २८८
४.	मंझन का सौन्दर्य दर्शन	:	डॉ० लालता प्रसाद सक्सेना	पृ० १८
५.	छायावादी काव्य में सौन्दर्य दर्शन से उद्धृत		सुरेश चन्द्र त्यागी	पृ० १९

क्रोचे सौन्दर्य को एक सफल प्रभावपूर्ण अभिव्यक्ति के रूप में मानते है -

"We may define beauty as successful expression, or better, as expression and nothing more, because expression when it is not successful, is not expression." (1)

कीट्स ने सत्य और सौन्दर्य के समन्वय पर बल दिया है -

Beauty is truth, truth beauty-that is all ye know on earth, and all ye need to know." (2)

शीलिंग के विचार से -

"Beauty is the infinite represented in the form of finite." (3)

भारतीय विद्वानों और कवियों की सौन्दर्य के विषय में मान्यतायें इस प्रकार है -

महाकवि माघ के विचार से - "क्षणै क्षणै यन्नवतामुपैती तदैव रूपं रमणीयताया:" - जो क्षण-क्षण नवीनता प्राप्त करें, वही रमणीयता का रूप है । (४) "भवेत्यसौन्दर्यमंगानां सन्निवेशो यथोचितम्" (५) कहकर भी श्रीमद् रूपगोस्वामी ने सौन्दर्य को परिभाषित किया है । कालिदास के अनुसार "प्रियेषु सौभाग्यफला हि चारूता ।" (६) डॉ० सम्पूर्णानन्द की मान्यता है कि "कुछ ऐसे दृग्विषय हैं जिनको देखकर हृदय में रस का संचार होता है । .... हम इन सबमें जो मनोहारिता पाते हैं, उसे सौन्दर्य कहते हैं ।" (७) डॉ० हरिद्वारी लाल शर्मा का कहना है कि "अपनी अनुभूति प्रत्यक्ष, स्मृति,कल्पना आदि द्वारा, आनंद को उत्पन्न करने वाले वस्तु के गुण को सौन्दर्य और वस्तु को सुन्दर कहते हैं ।" (८) डॉ० रामविलास शर्मा का विचार है कि "प्रकृति, मानव-जीवन तथा ललितकलाओं के आनन्ददायक गुण का नाम सौन्दर्य है ।" (९) हरिवंश सिंह के अनुसार "स्थूल या सूक्ष्म जगत में आत्मा की अभिव्यक्ति ही सौन्दर्य है ।" (१०) "प्रसाद जी ने सौन्दर्य को चेतना का उज्जवल वरदान कहा है ।" (११)

१.	छायावादी काव्य में सौन्दर्य दर्शन से उद्घृत-	सुरेश चन्द्र त्यागी	पृ० १९
२.	Poetical works of John Keats -	John Keats	पृ० ११८
3.	छायावादी काव्य में सौन्दर्य दर्शन से उद्घृत-	सुरेश चन्द्र त्यागी	पृ० १९
4.	शिशुपालवधम् :	माघ	४/१७
5.	उज्जवल नीलमणि, उद्दीपन प्रकरण :	श्रीमद् रूपगोस्वामी	पृ० १९
6.	कुमारसम्भवम् (पंचम सर्ग) :	कालिदास	
	कालिदास ग्रंथावली-सम्पादक सीताराम चतुर्वेदी,		पृ० २६८
7.	चिद्विलास	डॉ० सम्पूर्णानन्द	पृ० २०९
8.	सौन्दर्यशास्त्र	डॉ० हरिद्वारीलाल शर्मा	पृ० १०
9.	'समालोचक' (सौन्दर्यशास्त्र विशेषांक)	डॉ० रामविलास शर्मा	पृ० १७६
10.	सौन्दर्य-विज्ञान	हरिवंश सिंह	पृ० ५६-५७
11.	कामायनी - लज्जा सर्ग	जयशंकर प्रसाद	पृ० १०२

सौन्दर्य के सम्बन्ध में डॉ० फतह सिंह का मानना है कि संस्कृत-भाषा-भाषियों के पूर्वजों ने उन्हीं पदार्थो के लिए सुन्दर शब्द को प्रयुक्त करना आरम्भ किया होगा जिनके सम्पर्क से उनके हृदय में 'सुम्' नामक अनुभूति उत्पन्न हुई होगी । (१) उन्होंने लिखा है कि - ''हमारा मन ही 'सुम्' अनुभूति का दाता होने से सुन्द है और जिस वस्तु या विभाव द्वारा आकर्षित होकर मन में अनुभूति विभावित होती है, उसे सुन्दर कहा जाता है, अत: उस वस्तु या विभाव के आकर्षण को ही सौन्दर्य कह सकते हैं । इसलिए मनोहारिता, मनोज्ञता आदि शब्द सौन्दर्य के पर्यायवाची समझे जाते हैं ।'' (२)

इस प्रकार साधारणत: सुन्दर और सुगठित वस्तु के मानवमन को आकर्षित करने वाले सामान्य धर्म को 'सौन्दर्य' की संज्ञा प्रदान की जा सकती है ।

(क) भारतीय दृष्टि :- भारतीय काव्यशास्त्र का इतिहास काव्य की आत्मा 'रस' की खोज का इतिहास है, पाश्चात्य सौन्दर्यशास्त्र कलाओं के प्राणबिन्दु सौन्दर्य के चिन्तन का शास्त्र है । सौन्दर्यशाास्त्र के संबंध में आलोचकों ने दो विचारधाराएं प्रस्तुत की है । एक विचारधारा के अनुसार सौन्दर्यशास्त्र कोई नई चीज नहीं है, बल्कि यह काव्य-शास्त्र का ही पर्याय है और भारतीय काव्य-शास्त्र में सौन्दर्य का जितना व्यापक चिन्तन हुआ है, उतना अन्यत्र नहीं । श्री के0एस0 रामास्वामी ने अपनी पुस्तक 'इन्डियन एस्थेटिक्स' में सशक्त ढ़ग से उन धारणाओं का खण्डन किया है जिनमें यह स्वीकार किया गया था कि भारत में सौन्दर्यशास्त्र की सत्ता नही थी । वाचस्पति गैरोला ने लिखा है कि ''सौन्दर्य-बोध का जो दृष्टिकोण पश्चिम के विचारकों का रहा है, यदि हम उसकी तुलना भारतीय विचारकों से करते हैं, तो हमें लगता है कि पश्चिम की अपेक्षा भारत की सौन्दर्य-जिज्ञासा अधिक व्यापक एवं अनुभूतिपूर्ण है ।''(३) डॉ० नगेन्द्र का कहना है कि ''भारतीय सौन्दर्य-दर्शन का मूल आधार है काव्यशास्त्र । यद्यपि दर्शन में भी विशेषकर आनन्दवादी आगम ग्रंथों में आत्मतत्व के व्याख्यान के अन्तर्गत सौन्दर्य की अनुभूति के विषय में प्रचुर उल्लेख मिलते हैं, फिर भी सौन्दर्य के आस्वाद और स्वरूप का व्यवस्थित विवेचन काव्यशास्त्र में ही मिलता है ।'' (४) डॉ० फतह सिंह सौन्दर्य-चिन्तन का प्रारम्भ वेदों से मानते हैं । डॉ० कुमार विमल का मत है कि क्षेमेन्द्र का औचित्य-सिद्धान्त भारतीय मेघा का सौन्दर्यात्मक दृष्टिकोण उपस्थित करता है ।'' (५)

दूसरा वर्ग उन विचारकों का है जो यह स्वीकार करते हैं कि यदि काव्यशास्त्र के

---

1. भारतीय सौन्दर्य शास्त्र की भूमिका : डॉ० फतह सिंह पृ० ७
2. वही, पृ० १२७
3. भारतीय चित्रकला वाचस्पति गैरोला पृ० २८
4. 'रस सिद्धान्त' डॉ० नगेन्द्र पृ० ३
5. कला-विवेचन डॉ० कुमार विमल पृ० १४०

अध्ययन की सीमा केवल काव्य तक है तो सौन्दर्यशास्त्र सभी ललित कलाओं का शास्त्र है । डॉ० सुरेन्द्रनाथ दास गुप्त का मानना है कि ''सौन्दर्य के स्वरूप तथा उसके लक्षण के सम्बन्ध में हमारे देश में अभी तक कोई विचार नहीं हुआ है । पंडितराज जगन्नाथ ने अपने ग्रंथ 'रसगंगाधर' में अवश्य ही रमणीय अर्थ के प्रतिपादक शब्द को काव्य की संज्ञा दी थी, किन्तु वह भी रमणीयता के स्वरूप के सम्बन्ध में कोई गम्भीर विचार प्रस्तुत न कर सके ।'' (१) इस वर्ग के विचारकों का मत है कि काव्य एक ललित कला है, अतः काव्य-शास्त्र भी सौंदर्य-शास्त्र की एक शाखा हैं । दोनों के पार्थक्य को स्पष्ट करते हुए डॉ बलदेव उपाध्याय कहते है कि - ''सौन्दर्य को अत्यन्त महत्वशाली मानने पर भी हमारा शास्त्र 'सौन्दर्य-शास्त्र' के नाम से अभिहित होते-होते बच गया । ऐसा होने पर यह पाश्चात्यों के 'एस्थेटिक्स' का पर्यायवाची बन गया होता । परन्तु सौन्दर्यशास्त्र का क्षेत्र साहित्य-शास्त्र के क्षेत्र से कहीं अधिक व्यापक और विशाल है । साहित्यशास्त्र तो केवल शब्द के माध्यम द्वारा निर्मित कला की ही द्योतना करता है, परन्तु सौन्दर्यशास्त्र ललित कलाओं जैसे भास्कर्म, चित्र तथा संगीत आदि में निर्दिष्ट चारूत्व को भी अपने क्षेत्र के अन्तर्गत करता है । अतः दोनो का पार्थक्य मानना न्यायसंगत ही है ।'' (२)

पाश्चात्य दृष्टिकोण से काव्य एक ललित कला है और उसका अन्य ललित कलाओं से व्यापक एवं गहन सम्बन्ध है जबकि भारतीय विचारक काव्य को कला नहीं स्वीकार करते थे । आचार्य शुक्ल काव्य को कला मानना 'बेढ़ंगी बात' कहते हैं । (३) परन्तु पाश्चात्य साहित्य-चिन्तन के प्रभाव से इस परम्परागत मान्यता में परिवर्तन हुआ । परिणामस्वरूप शुक्ल जी यह मानने पर विवश हुए कि चित्र, संगीत एवं काव्य-कला तो एक दूसरे में अन्तर्नियोजित होकर ही प्रभाव-वृद्धि करती है और आकर्षक बनती है । आचार्य शुक्ल के शब्दों में - ''काव्य एक बहुत ही व्यापक कला है । जिस प्रकार मूर्त्त-विधान के लिए कविता चित्र-विद्या की प्रणाली का अनुसरण करती है, उसी प्रकार नाद-सौष्ठव के लिए वह संगीत का कुछ-कुछ सहारा लेती है । नाद-सौन्दर्य कविता की आयु बढ़ाता है । .... अतः नाद-सौन्दर्य का योग भी कविता का पूर्ण स्वरूप खड़ा करने के लिए कुछ न कुछ अवश्यक होता है ।'' (४)

इस प्रकार काव्य में विम्बग्रहण और नाद-सौन्दर्य, चित्र और संगीत से उसके सम्बन्ध को ही व्यक्त करते हैं जोकि सौन्दर्य-शास्त्र के अध्ययन के अन्तर्गत ही समाहित हैं ।

परिवर्तन सृष्टि का नियम है, तो सृजन मानव का धर्म । सर्जना की इस कड़ी में सौन्दर्य

१.	सौन्दर्य तत्व :	डॉ० सुरेन्द्रनाथ दास गुप्ता	पृ० ६५
२.	भारतीय साहित्य शास्त्र (प्रथम खण्ड) :	डॉ० बलदेव उपाध्याय	पृ० ९
3.	चिन्तामणि, भाग-2 :	आचार्य रामचन्द्र शुक्ल	पृ० १७७-७८
4.	चिन्तामणि, भाग-1 :	आचार्य रामचन्द्र शुक्ल	पृ० १७९-८०

का अपना एक विशेष स्थान हैं । यह सौन्दर्य प्रकृति, जीवन, जगत में सर्वत्र व्याप्त हैं । प्रकृति और मानव के अभ्यान्तर और बाह्रय सौन्दर्य से प्रेरित होकर ही काव्य-सृजन होता है । भारतीय आचार्यो एवं मनीषियों ने सौन्दर्य को अपनी-अपनी दृष्टि से देखा-परखा है जिसका संक्षिप्त परिचय निम्नवत् है -

भारतीय काव्यशास्त्र के अध्येताओं में अलंकारवादी आचार्यो ने काव्य में सौन्दर्योत्पादन के सारे उपकरणों को अलंकार माना है - ''सौन्दर्यमलङ्कार:'' (१) अलंकर सम्प्रदाय के प्रवर्तक आचार्य भामह का कहना है कि जिस प्रकार कोई नारी कितनी भी सौन्दर्ययुक्त क्यों न हो, यदि अलंकार विहीन है तो शोभा सम्पन्न नहीं कही जा सकती । इसी प्रकार काव्य में चाहें कितने ही गुण क्यों न हों, यदि उसमें अलंकारों की योजना नहीं है तो वह आल्हादृकारी नहीं हो सकता - ''न कान्तमपि निर्भूषं विभाति वनितामुखम्'' (२)

दण्डी ने अलंकारो को शोभा का कारण बताया है -

''काव्यशोभाकरान् धर्मानलड.कारान् प्रचक्षते ।'' (३)

चन्द्रलोककार जयदेव पियूषवर्ष के अनुसार यदि कोई काव्य को अलंकार रहित मानता है तो अपने को पंडित मानने वाला व्यक्ति अग्नि को उष्णताहीन क्यों नहीं कहता -''अंगीकरोति य: काव्यं शब्दार्थाविन्लड.कृती । असौ न मन्यते कास्मादनुष्णमनलड.कृती ।'' (४) रीतिकालीन आचार्य केशव ने भी इसी स्वर में अपना स्वर जोड़ते हुए कहा है - ''जदपि सुजाति सुलक्षणी, सुवरन सरस सुवृत्त। भूषण बिनु न विराजई, कविता वनिता मित्त ।।'' (५) आचार्य वामन ने 'गुणों को शोभा के कारण' और 'अलंकारों को शोभा को अतिशयता देने वाला या बढ़ाने वाला' माना है - ''काव्यशोभया: कर्त्तारो धर्मा: गुणा: । तदतिशयहेतवस्त्वलंकारा: ।''(६) आचार्य विश्वनाथ ने भी 'अलंकारों को शब्द और अर्थ के अस्थिर धर्म' कहा है और उनको 'कवच आदि की भाँति शोभा बढ़ाने वाले' तथा 'रस के उपकारक' माना है - ''शब्दार्थयोरस्थिरा ये धर्मा: शोभातिशायिन:। रसादीनुपकुर्वन्तो अलंकारास्ते अंङ्ग.दादिवत् ।''(७) 'अग्निपुराण' ग्रंथ में अर्थलंकार-प्रसङ्ग. में कहा गया है- अर्थालंकार रहिता विधिवेव सरस्वती'' (८)

१.	काव्यालंकार सूत्रवृत्ति :	वामन	१/१/२
2.	काव्यालंकार :	भामह	१/१३
3.	काव्यादर्श :	दण्डी	२/१
4.	चन्द्रालोक :	जयदेव पियूषवर्ष	१/८
5.	कविप्रिया, कविता-अलंकार-वर्णन :	केशवदास	१
6.	काव्यालंड.कार सूत्रवृत्ति :	वामन	३/१/१,२
7.	साहित्य-दर्पण	विश्वनाथ	१०/१
8.	अग्निपुराण	व्यास	३४५/२

आचार्य कुन्तक वक्रोक्ति को सौन्दर्य के व्यापक अर्थ में ग्रहण करते हैं । उन्होंने वक्रोक्ति को कवि-कौशल द्वारा प्रयुक्त विचित्रता कहा है- ''वक्रोक्तिरेव वैदग्धभंगी-भणिति रूच्यते''(१) विचित्रता के लिए 'विच्छित्ति' शब्द का प्रयोग किया है । कुन्तक से पूर्व 'भामह' ने अपने 'काव्यालंकार' में इसे लोक-व्यवहार से भिन्न वक्रोक्ति की संज्ञा दी है, और इसे सम्पूर्ण अलंकारों का मूल माना है । इसके अभाव में काव्य में सौन्दर्यसत्ता आ ही नहीं सकती और न इसके बिना कोई अलंकार हो सकता है- ''सेषा सर्वत्र वक्रोक्तिरनयार्थो विभाव्यते । यत्नोऽस्यां कविना कार्यः कोऽलंकारोनयाविना ।।''(२) कुन्तक ने वक्रोक्ति को मात्र अलंकार न मानकर उसके स्वरूप को और विस्तृत बनाया है । उन्होंने 'वैदग्धभंगी भणिति' अर्थात विद्वतापूर्ण चमत्कारयुक्त कथन को वक्रोक्ति की संज्ञा प्रदान की, इसमें 'विदग्ध' शब्द का अर्थ प्रतिभा सम्पन्न कवि का काव्य-कौशल, भंगी का अर्थ चमत्कार' और भणिति का अर्थ 'कथन-शैली' हैं । कुन्तक वक्रोक्ति के विश्लेषण में औचित्य को वक्रता का जीवन मानते हैं । अतः उचित कथन वक्रता का प्राण होने से औचित्य का वक्रोक्ति में विशेष स्थान हैं ।

रीतिवादी आचार्य वामन ने रीति को काव्य की आत्मा स्वीकार किया है - ''रीतिरात्मा काव्यस्य''(३) और 'विशिष्ट पद रचना' को रीति कहा है - ''विशिष्ट पद रचना रीतिः''(४) यह विशिष्टता गुणों में है और काव्य शोभा को उत्पन्न करने वाले धर्मो को गुण कहा गया - 'काव्य शोभायाः कर्त्तारौ धर्मागुणाः'(५) गुण और रीति दोनो ही अन्त में साध्य नहीं रहते वरन् शोभा के साधन बन जाते हैं । वामन ने अलंकारों के कारण काव्य की ग्राहकता बतलाई है - ''काव्यं ग्राह्यलंकारात्' (६) किन्तु उन्होंने अलंकार को सौन्दर्य के व्यापक अर्थ में माना है - 'सौन्दर्यमलंड.कारः' ।(७) आचार्य वामन ने रीति को अध्ययन प्रसूत न मानकर उसे जन्मजात संस्कार माना है।

ध्वनि सम्प्रदाय के उन्नायक 'ध्वनि' में सौन्दर्य का प्रतिफलन देखते हैं । ध्वनि में व्यंगार्थ की प्रधानता रहती है जिसके कारण यह अर्थ का भी अर्थ है, जिसमें थोडे में बहुत का अथवा एकता में अनेकता का चमत्कार रहता हैं । इनके अनुसार क्षण-क्षण में नवीनता धारण करने वाला सौन्दर्य व स्मरणीयता का जो लक्षण है वही ध्वनि में भी दिखाई देता है । केवल हाथ-पैर,

---

1.	वक्रोक्ति जीवितम्	कुन्तक	१/११
2.	काव्यालंकार :	भामह	२/८५
3.	काव्यालंकार सूत्र :	वामन	१/२/६
4.	वही		१/२/७
5.	वही		३/१/१
6.	वही		१/१/१
7.	वही		१/१/२

नाक-कान से पूर्ण होना ही सौन्दर्य नहीं है, सौन्दर्य उससे ऊपर की चीज है । ध्वनि के स्वरूप को स्पष्ट करते हुए आनन्दवर्द्धन ने लिखा है - "प्रतीयमानं पुनरन्यदेव वस्त्वस्ति वाणीषु महाकवीनाम्। यत् तत् प्रसिद्धावयवातिरिक्तं विभाति लावण्यमिवांगनासु ।"(१) अर्थात महाकवियों की वाणी में जो प्रतीयमान अर्थ होता है वह एक भिन्न वस्तु होती है । जिस प्रकार अंगनाओं के अंगो से भिन्न उसका लावण्य अतिरिक्त तत्व के रूप में होता है । इस प्रकार ध्वनिवादियों की दृष्टि में ध्वनि उसी अवर्णनीय 'औरे कछु' में आती है ।

काव्य-विषयक-चिन्तन एवं सौन्दर्यान्वेषण के क्षेत्र में भारतीय मनीषियों का परम अवदान 'रस-तत्व' की उपलब्धि है । रसवादी आचार्य रसास्वादन में ही सौंदर्य को देखते हैं । काव्य ही क्या, आचार्य भरतमुनि के अनुसार रस के बिना किसी अर्थ की प्रवृत्ति भी नही होती - "नहिं रसादृते कश्चिदर्थ: प्रवर्तते"(२) । आचार्य मम्मट, विश्वनाथ, जगन्नाथ आदि आचार्यो ने सौन्दर्यानुभूति में रस की महत्ता प्रतिष्ठित की है । आचार्य मम्मट रस के स्वरूप को स्पष्ट करते हुए रस को अंगीरूप मानते हैं - "ये रसस्यांगिनों धर्मा: शौर्यादय इवात्मन: । उत्कर्षहेतवस्ते स्युरचलस्थितयों गुणा:।।"(३) अर्थात जिस तरह से शौर्यादि आत्मा के गुण हैं, उसी प्रकार काव्य में अंगीरूप रस के स्थायी धर्म गुण हैं और वे रस के उत्कर्ष के कारण होते हैं । आचार्य विश्वनाथ ने रस के स्वरूप पर विचार करते हुए कहा है -"विभावेनानुभावेन व्यक्त: सञ्चारिणा तथा । रसतामेति रत्यादि, स्थायिभाव: सचेतताम् ।।"(४) अर्थात विभाव अनुभाव एवं संचारी भावों के संयोग से व्यक्त होकर सहृदय के हृदय में 'रति' आदि स्थायी भाव ही 'रसत्व' को प्राप्त कर लेते हैं। इनके अनुसार रसयुक्त वाक्य ही काव्य है - 'वाक्यं रसात्मकं काव्यम् ।"(५) पण्डितराज जगन्नाथ ने "रमणीयार्थ प्रतिपादक: शब्द: काव्यम्"(६) माना है । हिन्दी साहित्य में चिन्तामणि, कुलपति, देव, श्रीपति, भिखारीदास, भारतेन्दु, मिश्रबन्धु, कन्हैयालाल पोद्दार, रामचन्द्र शुक्ल, जयशंकर प्रसाद, आचार्य नन्ददुलारे, बाजपेयी, डॉ० नगेन्द्र ने रस की सत्ता को स्वीकार किया हैं । भारतेन्दु जी की रस के सम्बन्ध में उक्ति है - "जामै कुछ रस होत है पढ़त ताहिं सब कोय । बात अनूठी चाहिए भाषा कोऊ होय ।"

डॉ० निर्मला जैन 'रस' को सौन्दर्यशास्त्र का विशिष्ट भारतीय प्रमेय मानती है, उनके अनुसार - "जिस प्रकार पाश्चात्य कला-चिन्तन की केन्द्रीय संकल्पना 'सौन्दर्य' है और सुदूर पूर्व

1.	ध्वन्यालोक	आनन्दवर्द्धन	पृ०१/४
2.	काव्यशास्त्र :	डॉ० कृष्णदत्त अवस्थी	पृ०११७
3.	काव्यप्रकाश :	मम्मट	८/६६
4.	साहित्य दर्पण :	विश्वनाथ	पृ० १२०
5.	वही,		१/३
6.	रसगंगाधर काव्यमाला सीरीज	जगन्नाथ	पृ० ४

जापान का कला-चिन्तन 'यूगेन' (जिसका शाब्दिक अनुवाद कठिन है, जो "कलाकृति के माध्यम से व्यञ्जित पदार्थगत आन्तरिक गहन सौन्दर्य" का बोधक है) पर केन्द्रित है तथा चीनी कला-चिन्तन की मुख्य अवधारणा ध्वनि बोधक है, उसी प्रकार भारतीय कला चिन्तन का अपना विशिष्ट अन्वेषण रस है । जैसा कि सुप्रसिद्ध फ्रान्सीसी प्राच्य विद्याविशारद, लुई रेनु ने कहा है - "भारत की प्रतिभा से ज्ञान की जितनी भी शाखाएं उत्पन्न हुई है', उनमें सौन्दर्यशास्त्र जितने गहरे रूप में भारतीय हैं, उतना और कोई नही ।" भारतीय सौन्दर्यशास्त्र की इस ठेठ भारतीयता का सबसे अधिक प्रबल प्रमाण रस-सिद्धान्त है ।(१)

औचित्य पर व्यापक रूप से चिन्तन-मनन करने वाले आचार्य कुन्तक, आनन्दवर्द्धन, अभिनव गुप्त, क्षेमेन्द्र ने औचित्य को सौन्दर्य का प्रधान साधन माना है । आचार्य क्षेमेन्द्र ने औचित्य की व्युत्पत्ति करते हुए लिखा है - 'उचितस्य भाव: औचित्यम् ।(२) औचित्य का तात्पर्य उचित कार्य, उचित व्यवहार या उचित आचरण है किन्तु काव्य के प्रसंग में इसका अर्थ काव्यांगों की उचित योजना से है ।क्षेमेन्द्र ने 'औचित्य विचार चर्चा' ग्रन्थ में औचित्य को इस प्रकार परिभाषित किया है - " उचितं प्राहुराचार्या: सदृशं किलयस्य यत् । उचितस्य च यो भाव: तदौचित्यं प्रचक्षते ।।"(३) अर्थात जो वस्तु जिसके सदृश हो, अनुकूल व उपयुक्त हो उसे आचार्य उचित कहते हैं । अत: उचित का भाव ही 'औचित्य' कहा जाता है । जिस प्रकार शरीर में सौन्दर्य का सर्वोपरि महत्व है, आन्तरिक और बाह्य दोनों दृष्टियों से जो व्यक्ति सुन्दर होता है उसी का सौन्दर्य पूर्ण-प्रतिष्ठा का विषय होता है । इसी प्रकार काव्य के क्षेत्र में भी भावपक्ष और कलापक्ष का समुचित सौन्दर्य अपेक्षित होता है, तभी उसमें वास्तविक सौन्दर्य आ पाता है । उचित ढंग, उचित स्थान पर विन्यस्त वस्तु ही सौन्दर्यजनक होती है । औचित्य से दूर गुण भी अवगुण बन जाते है ।" इस प्रकार 'औचित्य वह विवेक-बुद्धि है जो सत् और असत् में विवेक की प्रक्रिया को पुष्टि करती है ।"(४) आचार्य भरतमुनि ने 'नाट्यशास्त्र' में अप्रत्यक्ष रूप से औचित्य को स्वीकार कर 'वय-वेश-अनुरूपता' के अनुकरण की ओर संकेत किया है । इस प्रकार आचार्य क्षेमेन्द्र ने काव्य के भावपक्ष और कलापक्ष दोनों मे औचित्य के समन्वय की अनिवार्यता पर बल दिया है । उन्होंने रस को काव्य की आत्मा और औचित्य को काव्य का प्राण माना है तथा वे औचित्य की पूर्ण सफलता रस रूप आनन्द में मानते है "औचित्यं रससिद्धस्य स्थिरं काव्यस्य जीवितम्' (५) । इस प्रकार क्षेमेन्द्र के विचार से औचित्य, काव्य में चमत्कार-विधायक तथा काव्य का जीवित भूत (प्राण) है इसके द्वारा काव्य में

१.	रस सिद्धान्त और सौन्दर्यशास्त्र	निर्मला जैन	पृ० २०
२.	काव्यशास्त्र युग और प्रवृत्तियाँ :	कैलाशनारायण अवस्थी	पृ० ३१०
३.	सिद्धान्त और अध्ययन	बाबू गुलाबराय	पृ० ४२
४.	काव्यशास्त्र	डॉ० कृष्णदत्त अवस्थी	पृ० १३४
५.	औचित्य विचार चर्चा	क्षेमेन्द्र	पृ० ११५

सौन्दर्य की अनुभूति होती है ।

इस सिद्धान्त के सन्दर्भ में आधुनिक समीक्षक डॉ० कुमार विमल मानते हैं कि क्षेमेन्द्र का 'औचित्य सिद्धान्त' भारतीय मेधा का सौन्दर्यात्मक दृष्टिकोण उपस्थित करता है, उनके शब्दों में "औचित्य पर केवल रसाश्रित औचित्य की दृष्टि से सोचने का अभ्यास छोड़कर यदि उसे कृति के वस्तुपक्ष और कलापक्ष की व्यापकता के सन्दर्भ में देखा जाय तो 'औचित्य सिद्धान्त' आधुनिक सौन्दर्यशास्त्र के लिए भारतीय-काव्यशास्त्र का सर्वोत्तम अवदान सिद्ध हो सकता है ।"(१) औचित्य सिद्धान्त के सन्दर्भ में डॉ० बलदेव उपाध्याय का मानना है कि संस्कृत काव्यशास्त्र में क्षेमेन्द्र ने औचित्य को जो महत्व दिया है, उसे सौन्दर्य की दृष्टि ही माना जा सकता है । अरस्तू ने सम्मात्रा, (Symmetry) व्यवस्थित क्रम (orderly arrangement) तथा निश्चित आकार (certain magnitude) के रूप में सौन्दर्य के जिन अंगों का प्रतिवादन किया है, वे इसी औचित्य के अंतर्गत आ जाते हैं । संसार में सौन्दर्य की भावना इसी औचित्य तत्व के ऊपर आश्रित है । प्रत्येक वस्तु का अपना एक विशिष्ट तथ्य निर्दिष्ट स्थान है जहाँ से भ्रष्ट होने पर उसका मूल्य तथा महत्व नष्ट हो जाता है ।"(२) क्षेमेन्द्र ने औचित्य को ही सौन्दर्य का मूल तत्व माना है । यदि कोई सुन्दरी स्त्री अपने गले में करधनी, नितम्ब के ऊपर हार, हाथों में नुपुर और पैरों में केयूर पहन ले तो उसकी प्रचंड मूर्खता देखकर उस पर कौन नही हँस पड़ेगा ? यदि कोई पुरूष शरण में आये हुए प्रणत के ऊपर वीरता दिखावें और शत्रु पर करूणा करे तो उसकी कौन हँसी नहीं उड़ाएगा, सच्ची बात तो यह है कि औचित्य के बिना न तो अलंकार ही सौन्दर्य का उन्मेष करते हैं और न गुण ही प्रीति का विस्तार करते हैं ।"(३)

इस प्रकार सौन्दर्य की धारणा को किसी न किसी रूप में सभी भारतीय आचार्यो एवं विचारकों द्वारा प्रतिष्ठित किया गया है, इस सौन्दर्य-सत्ता का प्रतिषेध नहीं किया जा सकता । भरतमुनि ने इसे 'शोभा' कहा है तो वामन ने इसे 'सौन्दर्य' या 'अलंकार' नाम दिया है और आनन्दवर्द्धन 'ध्वनि' में इसी प्रकार का प्रतिफलन देखते हैं । रसवादी आचार्यो ने भी 'रस' के अन्तर्गत किसी न किसी रूप में सौन्दर्य-बोधक तत्व को सन्निविष्ट करने का प्रयास किया है । आनन्दवर्द्धन ने रसोद्बोधक तत्व को 'लावण्य' कहा है, जो सौन्दर्य का ही सूक्ष्मतम् रूप है । इसी प्रकार पण्डित राज जगन्नाथ ने रस को 'रमणीयता' का वाहक कहा है । 'लावण्य' और 'रमणीयता' दोनों ही सौन्दर्यजातीय शब्द हैं । रसवादी आचार्यो ने यद्यपि 'सौन्दर्य' शब्द का प्रयोग नही किया क्योंकि संस्कृत काव्य परम्परा में 'सौन्दर्य' शब्द का सम्बन्ध अलंकार और रीति से स्थिर हो चुका था, और उसे शरीर धर्मा ही माना जाने लगा था । इस प्रकार सौन्दर्य भाव एवं अनुभूति से रहित

१. कला विवेचन — डॉ कुमार विमल — पृ० १४०
२. भारतीय साहित्य शास्त्र : — डॉ० बलदेव उपाध्याय — पृ० ३१
३. वही — पृ० ३१

वस्तुगत गुण के रूप में स्वीकृत हो चला था । आनन्दवर्धन ने इसी कारण महाकवियों की वाणी में प्राप्त होने वाले तत्व को प्रसिद्ध अवयवों के सौन्दर्य से अतिरिक्त किसी अनिर्वचनीय सौन्दर्य तत्व के रूप में निरूपित किया और परिपाटीविहित सौन्दर्य से उसकी विशिष्टता प्रकट करने के लिए 'लावण्य' संज्ञा से अभिहित किया । इसी प्रकार पण्डित राज जगन्नाथ की 'रमणीयता' में सौन्दर्य बोधक वस्तुगत गुण के साथ हृदय के रमने का भी अर्थ निहित है, जिससे अनुभूति-तत्व का भी समावेश हो जाता है । अत: 'रस' संज्ञा में कलागत सौन्दर्य के साथ ही उसकी अनुभूति का सौन्दर्य भी निहित है ।

(ख) पाश्चात्य दृष्टि - 'एस्थेटिक' शब्द की निष्पत्ति एक से अधिक धातुओं से हुई मानी गयी है । ग्रीक भाषा के अन्तर्गत 'भोजन करने' (To eat) के अर्थ में प्रचलित ग्रीक धातु 'इस्थ' (estho) (१) तथा 'प्रतीति करने' (to feel) के अर्थ में प्रचलित धातु 'ऐस्थे' (aisthe) (२) में ics प्रत्यय के योग से एस्थेटिक शब्द की निष्पत्ति हुई है । 'एस्थेटिक' शब्द का हिन्दी अनुवाद 'सौन्दर्य' है । पाश्चात्य सौन्दर्यशास्त्र का केन्द्रीय विषय 'सौन्दर्य' होने के कारण पाश्चात्य दार्शनिकों, समीक्षकों एवं विचारकों ने सौन्दर्य को अपनी-अपनी दृष्टि से देखा-परखा है जिसका संक्षिप्त विवेचन इस प्रकार है -

ग्रीक दार्शनिक प्लेटो (४०७ - ३४७ ई०पू०) ने सौन्दर्य की अध्यात्मवादी व्याख्या करते हुए उसे ईश्वरीय शक्ति से जोड़ा है । उन्होंने सृष्टि के दो प्रकार माने हैं - चेतन (Ideal) और प्रतीयमान (Phenomenal) । प्रतीयमान जगत का मूल रूप भी चेतन जगत में है, जो अद्वैत तथा आत्यंतिक सौन्दर्य है तथा जो सदा एक रूप रहता है । प्रत्येक सुन्दर वस्तु इसी अत्यंतिक सौन्दर्य (Absolute Beauty) से ही सुन्दर है । प्लेटो के ही समान प्लाटीनस, रस्किन तथा सेंट आगस्टाइन ने भी सौन्दर्य की अध्यात्मिक रूप में व्याख्या की है । सौन्दर्य का लक्षण आत्मिक कान्ति मानने वाले दार्शनिक विचारक प्लोटिनस (२०५-२७० ई०) ने भी परमशक्ति के शिवरूप पर ही बल दिया है । उनके अनुसार इसी 'शिवत्वमय एक' से बुद्धि का उदय होता है और यही आत्यन्तिक सौन्दर्य है ।प्लेटो और प्लाटीनस दोनों ने ही यही धारणा व्यक्त की है कि सभी प्रकार का सौन्दर्य हममें सत्य और मंगल को बढ़ाता है । (३) इन दोनों का आत्यन्तिक सौन्दर्य शेफट्सबरी के उस प्रथम सौन्दर्य (First beauty) से तुलनीय है जिसे उन्होंने स्वयं ईश्वर मानकर यह बतलाया है कि उसी के प्रतिविम्ब स्वरूप सृष्टि में सारे सौन्दर्य विद्यमान है । प्लोटिनस ने सौन्दर्य के जिस गुण पर सबसे

---

3. Greek English lexicon — A lexicon — page 264
4. "Dictionary of word origins" Anaesthetlc things apprehende through the sences were to the reeks aistheta from the stem aisthe to feel, ----" page 21
   सौन्दर्यशस्त्र प्रथम खण्ड : रामाश्रय शुक्ल 'करूणेन्द्र' पृ० १८ से उद्धृत
३. 'सौन्दर्य तत्व : डॉ० सुरेन्द्रनाथ दास गुप्ता पृ० १५८

अधिक बल दिया है, वह है भास्वरता (स्प्लेण्डर) । भास्वरता से उनका तात्पर्य किसी सुन्दर वस्तु से उद्भाषित होने वाले आध्यात्मिक-तत्व की कान्ति से है । वे अन्विति को ही सत्ता का लक्षण मानते थे और इस अन्विति का विधायक घटक है 'आदर्श रूप' (आइडियल फार्म) जिसके द्वारा वस्तु के बिखरे हुए अवयवों का संयोजन होता है । अन्ततः इसी अन्विति में सौन्दर्य का निवास होता है । (१) प्लोटिनस के समान ही सेण्ट आगस्टाइन (३५३-४३०ई०) ने भी कलाकृति के सौन्दर्य का निवास उस अन्विति में ही माना है, जो उसमें खण्डों के या अनेकता के रहते भी बनी रहती है । ईश्वरीय शक्ति से जोड़ते हुए सौन्दर्य के विषय में उनकी मान्यता है कि असीम शिवत्व, सत्य एवं सौन्दर्य ईश्वर के गुण हैं और वस्तुओं को ये गुण ईश्वर ही प्रदान करता है ।

सौन्दर्य के प्रति वृस्तुपरक दृष्टि रखने वाले ग्रीक आचार्य अरस्तु (३८४-३२२ ई०पू०) ने सम्मात्रा, व्यवस्थित क्रम तथा निश्चित आकार को सौन्दर्य के अंगों के रूप में प्रतिपादित किया है। अरस्तु की विचारधारा के समान ही दिदिरो, वर्क, रिचार्ड प्राइस आदि ने भी सौन्दर्य की भौतिकवादी दृष्टि प्रस्तुत की है । वर्क ने आकार की लघुता, मसृणता, क्रमिक परिवर्तन, कोमलता, वर्ण दीप्ति और शुद्धता को सौन्दर्य के उपकरण माना है । रिचार्ड प्राइस एकरूपता, वैचित्र्य, व्यवस्था तथा सम्मात्रा में सौन्दर्य स्वीकार करते हैं । इस प्रकार वस्तु के बाह्य रूपाकार में सौन्दर्य की खोज करने वाले विचारकों ने विभिन्न गुणों को प्रमुख स्थान दिया है । यह वस्तुगत गुण किसी न किसी प्रकार कलाओं के सौदर्य मे भी महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं । 'ब्यूटी आफ यूटिलिटी' में डॉ० जेरार्ड ने यहाँ विभाव की दृष्टि से आकृति और वर्ण-सौन्दर्य को स्वीकार किया है वहाँ प्रमाता को दृष्टि में रखकर उपयोग-सौन्दर्य को भी माना है ।

लार्ड केमे, विलियम शेन्सटन तथा अब्राहम ह्यूकर ने प्रथा और स्वभाव को सौन्दर्य का हेतु माना है ।रेनाल्ड्स ने सौन्दर्य-मीमांसा में प्रकृति को महत्व दिया, उनके अनुसार प्रत्येक पौधे और प्राणी की प्रकृति उसके पूर्व निर्णीत रूप की ओर लिये जा रही है और यदि हम उनके रूपों में सौन्दर्य देखते हैं तो केवल इसलिए कि हम ऐसा करते आए हैं । हमारी यह आदत उसी प्रकार की है जिस प्रकार 'हाँ' से स्वीकृति तथा 'न' से निषेध का ज्ञान होना । (२) सौन्दर्य के विषय में ह्यूम का मानना है कि प्रकृति ने विषयों या विभावों में कुछ ऐसे गुण निहित किये हैं जो विशेष भावनाओं को उत्पन्न करते हैं । इस प्रकार उपर्युक्त मतों में सौन्दर्य के प्रति किसी न किसी प्रकार से वस्तुगत या भौतिक दृष्टि की ही प्रधानता मिलती है । भारतीय आचार्य डॉ० रामविलास शर्मा ने भी इसी पक्ष में अपना दृष्टिकोण दिया है - "सौन्दर्य की वस्तुगत सत्ता है । यह सत्ता प्रकृति में है । मानव जीवन और मनुष्य की चेतना में है । सौन्दर्य इन्द्रिय-बोध तक सीमित नहीं है, उसकी सत्ता मनुष्य के भाव जगत और उसके विचारों में भी है .... सौन्दर्य की वस्तुगत सत्ता होती है, इसलिए शुद्ध सौन्दर्य नाम की कोई चीज नहीं होती है" (३)

१.	रस सिद्धान्त और सौन्दर्यशास्त्र	निर्मला जैन	पृ० ५०
२.	भारतीय सौन्दर्यशास्त्र की भूमिका	डॉ० फतेह सिंह	पृ० ११
३.	आस्था और सौन्दर्य	डॉ० रामविलास शर्मा	पृ० ३३

रोमन विचारक लोंजाइनस (तीसरी शताब्दी) 'औदात्य' में सौन्दर्य का प्रतिफलन देखते है। उदात्त अनुभूति के आन्तरिक तत्वों को उन्होंने इस प्रकार कहा है - ''मन की ऊर्जा, उल्लास, संभ्रम और अभिभूति अर्थात उदात्त विषय हमारे हृदय को उल्लास, संभ्रम से युक्त कर आत्मा का उत्कर्ष करने वाली ऊर्जा से भर दे, इस सीमा तक कि हमारी सम्पूर्ण चेतना कृति के इस उन्नयनकारी प्रभाव से अभिभूत हो जाये ।'' (१)

सेण्ट थामास एक्वीनस ने सौन्दर्य की मुख्य विशेषताएं - पूर्णता या अखंडता तथा संगति या सामरस्य को माना है । इनकी एक अत्यन्त महत्वपूर्ण देन यह है कि आनन्द को सुन्दर की कसौटी बनाकर इन्होंने अपनी सौन्दर्य विषयक मान्यता को एक विषयिपरक रंग दिया । सुन्दर वस्तु वही है जिसकी अवधारणा आनन्दपूर्वक की जाय । इनके अनुसार सुन्दरता का ज्ञान और उसमें आनन्द की अनुभूति विषय और विषयी के मध्य एक प्रकार के समागम से उत्पन्न होती है । (२)

आनन्द को सुन्दर की कसौटी मानने की परम्परा में बुद्धिवादी विचारधारा के दार्शनिक देकार्त (१५९६-१६५०) का मानना है कि किसी विषय से हमें आनन्द की अनुभूति इस कारण से होती है, कि हमारी चेतना में इस बात का बोध होता है कि वह हमारी श्रेष्ठ सम्पदा है । उन्होंने सामान्य आनन्द और सुन्दर वस्तु से होने वाले आनन्द में भी भेद करते हुए कहा है कि वह विशुद्ध बौद्धिक आनन्द से भिन्न होता है, अतएव जब आनन्द की अनुभूति किसी सुन्दर विषय के सम्बन्ध में होती है तो उसे सौन्दर्यानुभूति या कलात्मक आनन्द कहा जा सकता है । उनके अनुसार-कलात्मक आनन्द संवेग से युक्त बौद्धिक आनन्द है और इसलिए वह ऐन्द्रिय, काल्पनिक और संवेगात्मक आनन्द के अन्य रूपों से भी युक्त होता है । देकार्त के तत्काल परवर्ती विचारक लाइवनित्स (१६४६-१७१६) ने कलात्मक आनन्द के चार सोपान स्वीकार करते हुए यह माना कि कला सार्वभौम समरसता की प्रतीकात्मक अभिव्यक्ति है ।

देकार्त और लाइबनित्स की बुद्धिवादी परम्परा के विपरीत इंग्लैण्ड में 17वी शताब्दी में हाब्स, जॉन लॉक, ह्यूम प्रभृति अनुभववादी दार्शनिकों ने ऐसे सौन्दर्यशास्त्र को जन्म दिया जिसमें कला और सौन्दर्य के ऐन्द्रिय गुणों को विशेष महत्व दिया गया ।

अनुभववादी दार्शनिकों में जॉन लॉक ने सौन्दर्य की प्रकृति का निरूपण करते हुए उसे 'जटिल' माना है । उनके अनुसार सौन्दर्य रंगों और आकारों का ऐसा संयोजन है जिससे दर्शक को सुख की अनुभूति होती है । सौन्दर्य को 'जटिल प्रत्यय' कहने के साथ ही वे उसे 'वास्तविक' मानने से भी इन्कार करते है, क्योंकि उनके विचार से केवल सरल प्रत्यय ही वास्तविक होते है । सौन्दर्य

---

१. रस सिद्धान्त और सौंदर्यशास्त्र डॉ० निर्मला जैन पृ० ४९
२. वही पृ० ५०

जटिल प्रत्यय इसलिए है कि न तो मस्तिष्क से स्वतन्त्र उसकी कोई निजी सत्ता है, न वह किसी बाह्य वस्तु की यथावत् अनुकृति ही है । उनकी दृष्टि में सौन्दर्य की जटिलता का कारण कल्पना है । अत: जॉन लॉक की चिन्तन प्रणाली में सौन्दर्य बहुत कुछ कल्पना की सृष्टि है ।

एडिसन ने यद्यपि पृथक रूप से सौन्दर्य की परिभाषा नहीं की है परन्तु उन्होंने 'कल्पना के सुख' के रूप में सौन्दर्य को निरूपित किया है । कल्पनाजन्य अनुभूति के विषय के रूप में उन्होंने महानता, नवीनता और सौन्दर्य का उल्लेख किया है । उनके अनुसार कल्पना की विशेषता यह है कि वह बाह्य वस्तुओं को विम्ब रूप में ग्रहण करती है, ये विम्ब मस्तिष्क में अनेक प्रकार से सुप्त पड़े हुए भावों को उद्‌बुद्ध करते हैं, इस भावोद्‌बोधन को ही वे सुखानुभूति कहते हैं । उनके विचार से कल्पनाजन्य अनुभूति ऐन्द्रियबोध से अधिक सूक्ष्म और बौद्धिक बोध से अधिक मांसल होती है। एडिसन के सौन्दर्यानुभूति सम्बन्धी विवेचन की एक और विशेषता है कि वे उसे नितान्त विषयनिष्ठ नहीं मानते, वे उसमें ऐन्द्रियबोध के अतिरिक्त संवेगों का महत्व भी स्वीकार करते हैं ।

सौन्दर्यशास्त्र के जनक, जर्मन विचारक अलेक्जेण्डर बाउमगार्टेन (१७१४-६२) ने अनुभववाद का अवलम्ब लेकर 'ऐन्द्रिज्ञान' के रूप में सौन्दर्यशास्त्र को प्रतिष्ठित किया । उन्होंने आस्वाद के अर्थ में 'सौन्दर्य' की अवधारणा का अविष्कार किया । उनके विचार से अनुभव सापेक्ष 'सौन्दर्य' निश्चय ही आस्वाद का दूसरा नाम है - "The Germans are the only people who currently make use of the word 'aesthic' in order to signify what others call the critique of taste. This usage originated in the avortive attempt made by Baumgarten ---------------- " (1) सौन्दर्यशास्त्र को दर्शन के गम्भीर क्षेत्र में सम्मानित स्थान दिलाने वाले प्रसिद्ध दार्शनिक काण्ट (१७२४-१८०४) ने 'निर्णय-मीमांसा' ग्रंथ में सौन्दर्य, कला, अभिरूचि आदि विषयों पर गहराई से विचार किया है । सौन्दर्यशास्त्र के इतिहास में उनकी सबसे बड़ी देन यह है कि उन्होंने अनुभववादी और बुद्धिवादी दो विरोधी धाराओं के बीच संतुलन स्थापित करने का गम्भीर प्रयास किया है । एक ओर उन्होंने सौन्दर्य-निर्णय के अन्तर्गत अनुभववादियों की 'सुखानुभूति' को ग्रहण कर उसमे से आसक्ति-तत्व को निकालकर 'आसक्तिहीन आसक्ति' के रूप में 'निर्णय' का प्रतिपादन किया। दूसरी ओर उन्होंने बुद्धिवादियों का अनुसरण करते हुए 'प्रयोजनहीन प्रयोजन' के रूप में मनुष्य की व्यवस्थापिका बुद्धि को 'निर्णय' का आधार बनाया । इस प्रकार काण्ट के सौन्दर्य-विषयक निर्णय में हृदय और बुद्धि का कठिन सन्तुलन स्थापित हुआ । उनके अनुसार शुद्ध सौन्दर्य रूपात्मक होता है और आनुषंगिक सौन्दर्य में अर्थ तथा प्रयोजन का भी योग होता है । उदात्त भावना इसकों नैतिक गरिमा प्रदान कर क्षतिपूर्ति करती है । यद्यपि काण्ट की सौन्दर्य अवधारणा मे गौणत: प्रयोजन, आसक्ति और नैतिकता का भी समावेश है फिर भी 'शुद्ध-रूप' को सर्वोपरि मानने के कारण प्राय: उनके 'सौन्दर्य' को 'अतीन्द्रिय' कहा जाता है । (२)

1- Critique of pure Reason' page 66
सौन्दर्यशास्त्र प्रथम खण्ड, रामाश्रय शुक्ल 'करूणेन्द्र' पृ० ४७ से उद्‌धृत
२. रस सिद्धान्त और सौदर्यशास्त्र डॉ० निर्मला जैन पृ० ५४

क्रोचे सौन्दर्य की वाह्य सत्ता स्वीकार नहीं करते है उनका मानना है कि समस्त रूप आदि dk clk d ey oh{ko Rc (Asthetic Activity) के व्यापार द्वारा ही हो सकता है अत: सौन्दर्य की बाह्य सत्ता नहीं होती । सौन्दर्य-बोध ही सौन्दर्य या सुन्दर होता है - "(Monuments of art, which are the stimulamts of aesthetic reproduction, are called beautiful things or the physically beautiful. This combination of words constitutes a verbal paradox, because the beautiful is not a physical fact; it doed not belong to things but to the activity of man, to spiritul energy. (१) क्रोचे के अनुसार सौन्दर्य का निर्णय किन्हीं बहिरंग नियमों से निश्चित करना सम्भव नहीं है क्योंकि सौन्दर्य वाह्य नहीं, आन्तरिक वस्तु है । सौन्दर्य केवल कल्पना मूलक अन्तर्व्यापार होता है । उनका कहना है कि हम ज्ञानमात्र को दो भागों मे बाँट सकते है - कल्पना प्रसूत विशेषावलंबी ज्ञान और अन्वीक्षा प्रसूत सामान्यावलंबी- "Human knowledge has two forms; it is either initiative knowledge or logical knowledge. Knowledge obtained through the imigination or Knowledge obtained through the intellect knowledge of the individual or knowledge of the universal." (२) कला या सौन्दर्य का सृजन 'इन्ट्यूटिव नालेज' से ही होता है । इससे ही विम्ब निर्माण सम्भव है । यह स्वयं प्रकाश ज्ञान जितना ही विशुद्ध एवं मुक्त होता है, उतनी ही कला सुन्दर होती है - "The doctrine of your intuition, makes the value of art to consist of its power of infuition in such a manner that just in so for as pure and concrete intuition are achieved will art and beauty be achieved." (३) निर्विकल्प भाव से किसी मूर्ति की अभिव्यक्ति का नाम ही स्वयं-प्रकाश ज्ञान है। जिस व्यक्ति में यह ज्ञान उत्पन्न होता है उसे कवि कहा जाता है । अभिव्यक्ति स्वयं-प्रकाश ज्ञान का ही परिणाम है । व्यापार और परिणाम दोनों ही अभिन्न है । स्वयं-प्रकाश ज्ञान होगा तो अभिव्यक्ति अवश्य ही होगी । क्रोचे की दृष्टि में अभिव्यक्ति में ही सौन्दर्य है । अत: स्वयं प्रकाश-ज्ञान और अभिव्यक्ति की अभिन्नता का सिद्धान्त क्रोचे की मौलिक देन मानी जा सकती है- "He alone who divides the unity of the spirit into soul and body can have faith in a pure act of the soul, and therefore, in an intuition, which should exist as an intuition and yet be without its body, the expression, The expression is the actuality of intuition as action is of the will; and in the same way as will not be exercised into action is not will, so intuition unexpressed is not an intuition."(4)

कला के प्रति नैतिक दृष्टिकोण रखने वाले टालसटाय का विचार है कि नैतिक विवेक

---

१. छायावादी काव्य में सौन्दर्य दर्शन सुरेश चन्द्र त्यागी पृ० २३ से उद्धृत
२. वही पृ० २३ से उद्धृत
३. वही पृ० २३ से उद्धृत
४. वही पृ० २३ से उद्धृत

जाग्रत करने वाली कला-कृति ही सुन्दर मानी जा सकती है - People have now only to reject the false theory of beauty, according to which enjoyment is considerd to be the purpose of art, and religious perception will naturally take its place as the guide of art of our time. (1) कला का उद्देश्य व्यक्तियों को जोड़ना है, वही कला उत्कृष्ट है जो यह कार्य करें । इसी प्रकार रस्किन ने सौन्दर्य का सम्बन्ध ईश्वर से जोड़ा है । वस्तु की अनन्तता, एकता, स्थिरता, सम्मात्रा, शुद्धता और संयति आदि विशेषताएं बतलाते हुए भी उन्होंने कहा है कि ईश्वर सर्वत्र अपनी महिमा व्यक्त कर रहा है । ईश्वर ही सौन्दर्य स्वरूप है । रस्किन ने अपने ग्रंथ "लेक्चर्स आन आर्ट" तथा "मार्डन पेन्टर्स" में सौन्दर्य तत्व पर विचार किया है और सर्वत्र ही नैतिकता के आलोक में अपनी परिभाषाएं व्यक्त की हैं । लेक्चर्स आन आर्ट के अनुसार-

"The great arts can have but three principal directions of purpose: First, that of enforcing the religion of men; Secondly, that of perfecting their ethical state; thirdly that of doing them material service". (2) "मार्डन पेन्टर्स" के अनुसार - "But I say that the art is the greatest which conveys to the mind of spectator, by any means what so ever the greatest number of the greatest ideas -------- He is the greatest who has embodied in the sum of his works the greatest number of the greatest ideas." (3) उन्होंने सौन्दर्य के दो भेद- वाह्य (Typical) और आन्तरिक (Vital) मानते हुए वस्तु के बाहरी गुण और आनन्दमय जीवन के साथ उत्पन्न सुख-बोध की चर्चा की है ।

ज्वायफ्रे और रीड ने भी सौन्दर्य की अध्यात्मवादी व्याख्या की है । ज्वायफ्रे ने सुन्दर, सुखद और उपयोगी को भिन्न-भिन्न मानते हुए सौन्दर्य को किसी अदृश्य शक्ति की अभिव्यक्ति माना है । वह भौतिक उपकरणों द्वारा व्यक्त होती है । रीड ने ज्ञान (Cognition) और इच्छा (Affection) को ईश्वरीय शक्तियाँ मानकर मूलतः सुन्दर माना है । रीड के अनुसार सौन्दर्य कोई वस्तुओं का गुण नहीं, वह तो ईश्वरीय शक्ति है ।

कुछ सौन्दर्य-शास्त्रियों ने मानव-व्यवहार का विश्लेषण करते हुए सौन्दर्य की मीमांसा की है । इनमें शिलर, लाउत्स, और विक्टर कजिन मुख्य हैं । शीलर ने मानव-व्यवहार के तीन क्षेत्र माने हैं - जड़जगत, नीतिजगत और क्रीड़ा जगत । क्रीड़ाजगत में जड़ और नीति जगत का समन्वय है और यही सौन्दर्य का जगत है, यही आनन्द का क्षेत्र है । लाउत्स के अनुसार सौन्दर्य, सुख (Pleasure) का ही एक विकसित रूप है और उससे भिन्न नहीं है । भेद केवल यही है कि सुख इन्द्रिय-गोचर है और वह हमारी वैयक्तिक आत्मा को आनंदित करता है, जबकि सौन्दर्य हमारी

1.	What is art	Tolstay	page 189
2.	Lectures on art	Ruskin	page 43-44
3.	Modern Painters	Ruskin	Vol 1, Page 11

व्यापक (Universal) आत्मा को प्रसन्न करता है । विक्टर कजिन ने सौंदर्य के तीन भेद स्वीकार किये हैं - भौतिक, नैतिक और मानसिक । उसकी दृष्टि में मानसिक सौन्दर्य ही प्रधान है, शेष दोनों इसी पर आधारित हैं । मानसिक सौन्दर्य ही शुद्ध आत्मन्तिक है, यही ईश्वर है ।

हीगेल ने कला को मनुष्य की सिसृक्षावृत्ति का फल स्वीकार किया है । उसकी दृष्टि में जहाँ एक ओर सौन्दर्य की बाह्य सत्ता है, वहाँ उसने यह भी माना है कि आन्तर चिदभिव्यक्ति के साथ मेल हुए बिना कोई वस्तु सुन्दर नहीं कहला सकती । विशेष रूप से उपस्थित चिदभिव्यक्ति ही सौन्दर्य कहलाती है । चिद्भिव्यक्ति के आन्तरिक रूप को सत्य और तद्रूपापन्न वाह्य वस्तु को सुन्दर कहा जाता है । (३)

अत: योरोप में सौन्दर्य की चर्चा की एक सुदीर्घ परम्परा दिखायी देती है, परन्तु इस परम्परा में वैचारिक एकता का अभाव है । सुन्दर की खोज में विद्वानों की एक लम्बी पंक्ति प्रवृत्त अवश्य हुई किन्तु सुन्दर का कोई सर्वमान्य स्वरूप निर्धारित नहीं हो सका है ।

---

१. सौन्दर्य तत्व — डॉ० सुरेन्द्र नाथ दास गुप्ता पृ० २५६-५७

(ग) हिन्दी-काव्य में क्रमागत सौन्दर्य-दृष्टि

(i) द्विवेदीयुगीन सौन्दर्य-दृष्टि :- आधुनि-काल की हिन्दी-कविता में सौन्दर्य की वस्तुवादी और अनुभूतिवादी दोनो ही धारणाएं प्रतिविम्बित हुई हैं । भारतेन्दु तथा द्विवेदी-युग में सौन्दर्य की उसके वस्तुगत रूप मे ही प्रतिष्ठा हुई है । रीतियुग के कवि की सौन्दर्य-भावना भी यद्यपि वस्तुगत ही थी और उसकी दृष्टि केवल नारी के मादक रूप-सौन्दर्य तक ही सीमित थी । उनकी विलास-लोलुप दृष्टि नारी-शरीर के नख-शिख के संसार से बाहर न जा सकी । भारतेन्दु-युग में अवश्य ही जीवन-सौन्दर्य का आयाम अधिक व्यापक हुआ, लेकिन अधिकांश में परम्परागत रूप-सृष्टि का व्यापार ही चलता रहा । द्विवेदी-युग की सौन्दर्य-दृष्टि यद्यपि नैतिकता के आतंक से सहमी हुई प्रतीत होती है फिर भी उस युग में कवियों ने अपनी सौन्दर्य-परिधि के अन्तर्गत नारी और पुरूष, देश और प्रकृति, व्यक्ति और समाज को समेट लिया । उनकी सौन्दर्य-भावना का सबसे अधिक प्रगतिशील तत्व यह है कि उन्होंने केवल 'महत' वस्तुओं में ही सौन्दर्य का दर्शन नहीं किया, बल्कि जीवन के लघुरूपों को भी उसी आग्रह और ममत्व के साथ अपनाया । निम्न जीवन के सादे चित्रों में से 'सौन्दर्य-संग्रह का कार्य' इस युग के कवियों ने विशेष उत्साह के साथ किया ।

द्विवेदीयुगीन काव्य इतिवृत्तात्मकता, उपदेशात्मकता, नैतिकता का आवरण, रीतिकालीन श्रृंगारिकता का विरोध, काव्य-विषयों का विस्तार, खड़ी बोली का संवरता हुआ रूप और परम्परागत छन्दों को त्यागकर नवीन छंदों को अपनाने का आग्रह आदि विशेषताओं से सम्बद्ध होने के कारण उसमें सौन्दर्य अपने पूर्ण-वैभव के साथ प्रकट न हो सका । इसका एकमात्र कारण अपने पूर्ववर्ती काव्य से उद्देश्य की भिन्नता है । आचार्य द्विवेदी के अनुसार - ''कविता लिखते समय कवि के सामने ऊँचा उद्देश्य अवश्य रहना चाहिए । केवल कविता के ही लिए कविता करना एक तमाशा है ।''(१) साथ ही उनका मानना है कि ''चींटी से लेकर हाथी पर्यन्त पशु, भिक्षुक से लेकर राजा पर्यन्त मनुष्य, बिन्दु से लेकर समुद्र पर्यन्त जल, अनन्त आकाश, अनन्त पृथ्वी, अनन्त पर्वत, सभी पर कविता हो सकती है, सभी से उपदेश मिल सकता है और सभी के वर्णन से मनोरंजन हो सकता है । फिर क्या कारण है कि इन विषयों को छोड़ कर कोई-कोई कवि स्त्रियों की चेष्टाओं का वर्णन करना ही कविता की चरम-सीमा समझते हैं ? केवल अविचार और अंध परम्परा ।....... .नायिका के हाव-भावादि के वर्णन का अभ्यास करने वालों पर भी सरस्वती की कृपा हो सकती है परन्तु तदर्थ उसकी उपासना न करना ही अच्छा है । ....हिन्दी काव्य की हीन दशा को देखकर कवियों को चाहिये कि वे अपनी विद्या, अपनी बुद्धि और अपनी प्रतिभा का दुरूपयोग इस प्रकार से ग्रंथ लिखने में न करें । अच्छे काव्य लिखने का उन्हें प्रयत्न करना चाहिए ।''(२)

---

१. भारतीय काव्यशास्त्र की परम्परा — डॉ० नगेन्द्र — पृ० ३७५

२. वही — पृ० ३७३-७४

सन् 1920 की 'सरस्वती' में प्रकाशित सम्पादकीय ''कविता का भविष्य'' में आचार्य द्विवेदी ने सौन्दर्य के प्रति अपना दृष्टिकोण प्रस्तुत करते हुए लिखा था - ''अभी तक वह मिट्टी में सने हुए किसानों और कारखानों से निकले हुए मैले मजदूरों को अपने काव्य का नायक बनाना नहीं चाहता था । .... परन्तु अब वह क्षुद्रों की भी महत्ता देखेगा और तभी जगत का रहस्य सबको विदित होगा । .... जो साधारण है, वही रहस्यमय है, वही अनन्त सौन्दर्य से युक्त है ।'' (१)

द्विवेदी युग के काव्य में कवियों ने अतीत के साथ ही वर्तमान जीवन को भी सदैव अपनी दृष्टि के सम्मुख रखा है । वस्तुतः उन्होंने अपने प्रबन्ध-काव्यों में भी अतीत की कथा के माध्यम से वर्तमान की समस्याओं का ही विवेचन प्रस्तुत कर भविष्य के लिए नवीन संदेश देने का प्रयत्न किया । प्रमाणस्वरूप गुप्त जी ने यदि उपेक्षिता नारियों को गौरव-मण्डित करने का प्रयास किया है तो हरिऔध जी ने 'प्रिय-प्रवास' के द्वारा 'लोक-सेवा' के आधुनिक संदेश को अनुगुंजित किया है। 'भारत-भारती' में तो कवि का मुख्य लक्ष्य वर्तमान की विभीषिका को ही प्रस्तुत करना रहा है। उन्होंने 'अतीत' का वर्णन तो वर्तमान जीवन के पतित रूप की रेखाओं को अधिक गहराई से उकेरने की दृष्टि से ही किया है । 'भारत-भारती' काव्य के 'वर्तमान खण्ड' में जीवन में व्याप्त - दारिद्रय, जन-दुर्भिक्ष, 'कृषि और कृषक' आदि की यर्थाथ-स्थिति का बड़ा ही सजीव और मर्मभेदी वर्णन हुआ है -

''भरपेट भोजन ही चरम सुख वे अकिंचन मानते,
पर साथ ही दुर्भाग्यवश दुर्लभ उसे है जानते ।
दिन दुःख के हैं भर रहे करते हुए संतोष वे,
लाचार हैं निज भाग्य को ही दे रहे हैं दोष वे ।''(२)

इस युग में कवियों की दृष्टि में शोषित वर्ग का महत्व बढ़ता जा रहा था । श्री रामनरेश त्रिपाठी तो कवीन्द्र-रवीन्द्र के समान दीन-दुःखी जनों में ही भगवान का दर्शन करने लगे । अपने 'स्वप्न' काव्य में उन्होंने लिखा है -

''पर हरि के पद्-पद्म कहाँ हैं, क्या सरिता के सुन्दर तट पर ?
नहीं, निराशा नाच रही है जहाँ भयानक भूरि भेस धर ।
निस्सहाय निरूपाय जहाँ हैं बैठे चिन्ता-मग्न दीन जन
उनके मध्य खड़े हरि के पद-पंकज के मिलते है दर्शन ।।''(३)

---

१. सरस्वती, भाग-21 संख्या 3 (१९२०) आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी
२. भारत-भारती, वर्तमान खण्ड मैथिली शरण गुप्त पृ० ९६
३. स्वप्न, राम नरेश त्रिपाठी पृ० १२

द्विवेदीयुगीन कवियों की देश-भक्ति इसी यर्थाथ चेतना से समन्वित है । वे अपने देश में व्याप्त बुराइयों का समूल नाश चाहते थे और उनकी अदम्य आकांक्षा थी कि सभी देशवासियों मे पुन: विद्या, कला, कौशल आदि के प्रति अनुराग भावना जाग्रत हो जाए, सब आलस्य-अघ का त्याग कर उद्योग के लिए तत्पर हो जाएं, सुख और दु:ख में सभी का समान भाग हो और सबके अन्त:करण में निरन्तर राष्ट्रीयता का राग गूँजता रहे -

''विद्या, कला, कौशल में सबका अटल अनुराग हो,
उद्योग का उन्माद हो, आलस्य अघ का त्याग हो ।
सुख और दु:ख में एक-सा सब भाइयों का भाग हो,
अन्तकरण में गूँजता राष्ट्रीयता का राग हो ।'' (१)

इस युग के प्राय: सभी कविगण आचार्य नन्ददुलारे बाजपेई के शब्दों में, ''सामाजिक दृष्टि से सुधारवादी थे । समाज के प्रत्येक क्षेत्र में वे सुधार करना चाहते थे - नैतिक और भौतिक दोनों ।'' (२) अपनी इस सुधार भावना से प्रेरित होकर ही उन्होंने बाल-विवाह, अन्ध-परम्परा, वर-कन्या-विक्रय, अस्पृश्यता, मदिरा-पान, आडम्बर आदि अनेक सामाजिक कुरीतियों का घोर विरोध किया और नए युग की प्रगतिशील मान्यताओं को वाणी प्रदान की । इस क्षेत्र में उनकी दृष्टि स्वामी दयानन्द के आर्य-समाज से ही विशेष प्रभावित हुई, इसलिए उनकी काव्य-चेतना हिन्दू-समाज की सीमाओं में ही परिबद्ध रही है ।

'हरिऔध' जी का प्रिय-प्रवास' इस युग की बौद्धिक-दृष्टि का प्रतिनिधित्व करता है । उनका कृष्ण और राधा को किसी दैवी शक्ति के रूप में न मानकर सामान्य पुरूष और नारी का रूप प्रदान करना तथा तृणासुर को आँधी के रूप में चित्रित करना, बुद्धिवादी प्रवृत्ति के ही द्योतक तत्व है । 'प्रिय-प्रवास' में उन्होंने अपनी मानवतावादी दृष्टि का बड़ा ही उदात्त स्वरूप प्रदर्शित किया है । लोक-सेवा तथा विश्व-प्रेम इस काव्य की मूल केन्द्रीय भावना है । 'प्रिय-प्रवास' के कृष्ण को अपने प्राणों से भी अधिक विश्व का प्रेम प्यारा है - 'प्राणों से है अधिक उनको विश्व का प्रेम प्यारा ।' (३) और कृष्ण की परम-प्रेमिका 'राधा' की भी आन्तरिक आकांक्षा यही है - ''प्यारे जीवें, जगहित करें, गेह चाहे न आवें ।'(४)

अत: अपने समग्र रूप में द्विवेदीयुग की राष्ट्रीय चेतना, साम्प्रदायिकता के घेरे में बद्ध नहीं थी, वरन् वह तो मानवता के व्यापक क्षितिज की ओर अग्रसर हो रही थी । आचार्य नन्ददुलारे बाजपेई भी उन लोगों से सहमत नही है जो उन कवियों की चेतना को मूलत: मुस्लिम विरोधी

१.	भारत-भारती, भविष्यत् खण्ड	मैथिली शरण गुप्त	पृ० १३६
२.	आधुनिक साहित्य : प्रथम संस्करण	नन्ददुलारे बाजपेई	पृ० ११
३.	प्रिय प्रवास चतुर्दश सर्ग	अयोध्या सिंह उपाध्याय	पृ० १९३
४.	वही		पृ० २५३

साम्प्रदायिकता से ग्रस्त मानते हैं । वे देश के प्राचीन वीरों और विशेषकर क्षत्रिय या राजपूत राजाओं का उल्लेख और वर्णन इसलिए करते थे कि उनके चारित्रिक गुणों, त्याग, वीरत्व, दर्शन, देश-प्रेम और रण-कौशल आदि से प्रभावित होकर नई नैतिक-प्रेरणा और उत्साह संचय करना चाहते थे ।

पूर्ववर्ती काव्य में असामान्य-ईश्वर, ईश्वरावतार, राजा, सामन्त, योद्धा या फिर अनेक विध नायिकाओं आदि को स्थान मिला था, किन्तु आलोच्य युग में सामान्य मानव को यह गौरव प्राप्त हुआ । मानव-मात्र के सुख-दुःख और परिस्थितियों का वर्णन काव्य में बड़े ही सहज भाव से किया जाने लगा । महावीर प्रसाद द्विवेदी की कविता 'सरगौ नरक ठेकाना नाहिं' में जहाँ कल्लू अल्हैत काव्य का विषय बना -

"भैसि भवानी कै तब सेवा लागे करन पढ़व गा छूटि ।
बटुवन दूध दुहा इन हाथन धार न कबहूँ दुहत माँ टूटि ।
मोटरिन कटिया भथुरा सानी कीन रोज हम बाँह चढ़ाय ।
मस्त भयन तब आल्हा गावा उपर दुहत्था हाथु उठाय ।" (१)

इस काल के कवियों ने प्रेम-सौन्दर्य के भी आदर्श स्वरूप को ग्रहण किया । 'प्रिय-प्रवास' में राधा सम्पूर्ण विश्व में कृष्ण की कान्ति के दर्शन कर विश्व-प्रेमिका और विश्व-सेविका बन जाती है । 'साकेत' की उर्मिला अपने मन को 'प्रिय-पथ का विघ्न' बनने से रोकती हैं । प्रेम-जीवन की अद्भुत शक्ति है तथा उसके बिना जीवन निस्सार है । राम नरेश त्रिपाठी के शब्दों में प्रेम-सौन्दर्य की महिमा -

"गन्ध-विहीन फूल है जैसे चन्द्र-चन्द्रिका-हीन ।
यों ही फीका है मनुष्य का जीवन प्रेम-विहीन ।
प्रेम स्वर्ग है, स्वर्ग प्रेम है, प्रेम अशंक अशोक ।
ईश्वर का प्रतिविम्ब प्रेम है, प्रेम हृदय आलोक ।।" (२)

प्रकृति भी स्वतन्त्र रूप में काव्य का विषय बनी । यद्यपि द्विवेदीयुगीन प्रकृति-चित्रण में भी पर्याप्त स्थूलता है, कल्पना-वैभव एवं सौरस्य का अभाव है, फिर भी उसमें यर्थाथता एवं ताजगी का सौन्दर्य है । 'प्रिय-प्रवास' का आरम्भ ही प्रकृति-वर्णन से हुआ है -

"दिवस का अवसान समीप था ।
गगन था कुछ लोहित हो चला ।।
तरू-शिखापर थी अब राजती ।
कमलिनी-कुल-वल्लभ की प्रभा ।।" (३)

---

१. हिन्दी साहित्य का इतिहास सं० डॉ० नगेन्द्र पृ० ४९० से उद्धृत
२. वही, पृ० ४९१ से उद्धृत
३. प्रिय प्रवास अयोध्या सिंह उपाध्याय 'हरिऔध' प्रारम्भिक छन्द

इस युग के काव्य मे भाषा और छंदों के प्रयोग में नवीन दृष्टिकोण सामने आया । जहाँ खड़ी बोली के सौन्दर्य ने समस्त जनमानस की दृष्टि अपनी ओर संकेन्द्रित की, वहीं गुप्त जी ने हरिगीतिका, हरिऔध ने वार्णिक छन्दों तथा उर्दू-शैली के चौपदों, शंकर के कवित्तों, पूर्ण जी ने कुण्डलियाँ, गोपाल शरण सिंह ने कवित्त-सवैया तथा गया प्रसाद शुक्ल 'सनेही' और भगवान दीन जी 'दीन' ने उर्दू बह्रे आदि छन्दों को चरम सौन्दर्य के साथ अभिव्यक्ति प्रदान की ।

निष्कर्ष रूप में हम कह सकते है कि आलोचकों द्वारा लगाया गया वह आक्षेप कि द्विवेदीयुगीन काव्य, रीतिकालीन सौन्दर्य-भावना के प्रति विद्रोह, इतिवृत्तात्मकता एवं नैतिकता के प्रभाव से बिल्कुल ही श्रंगार -विहीन एवं सौन्दर्य-हीन हो गया, पूर्णतः सत्य प्रतीत नहीं होता । इस युग के कवियों ने संकीर्णता के दायरे से हटकर एक स्वस्थ परम्परा को ग्रहण करते हुए श्रंगार का व्यापक दृष्टि से चित्रांकन किया साथ ही 'हरिऔध' आदि कवियों ने नायिका-भेदों का वर्णन भी किया । उन्होंने युगानुकूल नयी नायिकाओं की कल्पना की और राधा-कृष्ण के चरित्र और सौन्दर्य को नवीन भावभूमि पर प्रतिष्ठित किया । राधा-कृष्ण के स्मरण के बहाने जो कुछ रीतिकाल से होता आ रहा था, वह समाप्त हो गया । देश-प्रेम और समाज-सुधार की भावनाओं ने शारीरिक-सौन्दर्य के साथ-साथ हृदय के भीतर झांकने की भी प्रेरणा दी । उनकी दृष्टि में प्रकृति अनन्त वैभव और असीम सौन्दर्य से परिपूर्ण हो गयी है ।

(ii) छायावादी सौन्दर्य दृष्टि - द्विवेदी युगीन काव्य विषयनिष्ठ, वर्णन प्रधान और स्थूल था। इसके विपरीत छायावादी काव्य व्यक्तिनिष्ठ और कल्पना प्रधान है । प्रसाद, निराला आदि कवियों ने अधिकतर अपनी सुख-दुःखमयी अनुभूति को ही मुखर किया है । जिस प्रकार द्विवेदी युगीन कविता में सृष्टि की व्यापकता और अनेकरूपता को समेटने का प्रयास है, उसी प्रकार छायावादी काव्य में मनोजगत की गहराई को वाणी में संजोने का प्रयत्न किया गया है । मनोजगत का सत्य सूक्ष्म होता है, जिसे सर्जना द्वारा साकार करने के लिए छायावादी कवियों ने उर्वरा कल्पना-शक्ति का उपयोग किया है । कल्पना का उपयोग अनुभूति के विविधा पक्षों और प्रसंगों की उद्‌भावना में भी किया गया है और उन्हें व्यक्त करने वाले प्रतीकों तथा विम्बों की सर्जना में भी । इसीलिए छायावादी अभिव्यन्जना-पद्धति विशिष्ट और सांकेतिक हो गयी है । (१)

इसमें सन्देह नही कि छायावादी भाव-बोध स्वानुभूति और सौन्दर्य-प्रधान-कल्पना द्वारा ही निर्मित हुआ है । किन्तु छायावादी काव्य की अनुभूति केवल मन के स्तर पर ही नहीं रूक जाती - वह और भी गहरी उतरती हुई आत्मा के लोक में संचरण करने लगती है । छायावादी कवि की दृष्टि अंतर्मुखी होती हुई पहले तो मन के स्तर पर संचरण करती दिखाई देती है, किन्तु वहाँ भी उसका पूर्ण परितोष नही होता औरं वह आत्मा तक पहुँच जाती है । पहले तो छायावादी काव्य

१. हिन्दी साहित्य का इतिहास सं० डॉ० नगेन्द्र पृ० ५५१

भाव के स्तर पर अन्त: सृष्टि और बाह्य सृष्टि की एकता की स्थापना करता है और फिर आध्यात्मिकता के स्तर पर इसी ऐक्य को मूल सत्य के रूप में प्रतिष्ठित करने का प्रयास करता है । प्रसाद की अनुभूति शैव-दर्शन में परणित होती चली जाती है, निराला अद्वैत और भक्ति के क्षेत्र में साधना करते दिखाई देते हैं, पंत की काव्य-दृष्टि सृष्टि में व्याप्त- मूल अक्षर सत्य का उद्‌घाटन करती है और महादेवी निराकार, सर्वव्यापक प्रिय की भावना को ही काव्य का प्राण मानती है । इस प्रकार छायावादी चेतना की अन्तर्मुखी दृष्टि में सृष्टि का निषेध नहीं है, वरन् अध्यात्मिकता के स्तर पर सृष्टि की साग्रह स्वीकृति के साथ वह कर्मवाद से जुड़ जाती है । (१)

सौन्दर्य, प्रेम और श्रंगार की दृष्टि से छायावाद चेतना के उच्चतम धरातल को छू सका है । सौन्दर्य और प्रेम की खोज में छायावादी कवि की दृष्टि प्रकृति और नारी दोनों पर समान रागात्मक के साथ ठहरी है । श्रंगारिकता की अति होने के बावजूद छायावाद की दृष्टि रीतिकालीन कवियों के समान स्थूल शरीर नही होने पाई । आदर्शोन्मुख प्रेम, उदात्त और शिष्ट श्रंगारिकता के कारण छायावाद, रीतियुग से अपने आपको अलग कर सकनें मे समर्थ हुआ है । सौन्दर्य-चित्रण में स्थूल रूपरेखाओं का अंकन न करके सूक्ष्म छायामय चित्रों की सृष्टि में छायावादी अधिक प्रवृत्त रहता है । वह आन्तरिक प्रभाव का विश्लेषण प्रस्तुत करता है, अपने मन और कल्पना पर पड़े स्थूल के प्रभाव का सूक्ष्म विश्लेषण कर उन्हें तीव्र अनुभूतिजनक रूपरंग देकर साकार करना उसका ध्येय है । (२)

छायावादी काव्य में अनुभूति और सौन्दर्य के स्तर पर प्राय: मानव और प्रकृति के भावों और रूपों का तादात्म्य दिखाई देता है । नारी के शारीरिक सौन्दर्य के अनके मोहक चित्र प्रणय की कविताओं में बिखरे हुए मिलते हैं । यह सौन्दर्य प्रत्यक्ष रूप से नायिका के रूप वर्णन में भी दिखाई देता है, जैसे 'प्रसाद' कृत 'आँसू' तथा 'कामायनी' में प्रस्तुत किया गया नायिका का सौन्दर्य या पन्त कृत 'भावी पत्नी के प्रति' में व्यक्त नायिका का सौन्दर्य, और परोक्ष तथा सांकेतिक रूप में भी लक्षित होता है, जैसे निराला की 'जूही की कली' में । इन कवियों की सौन्दर्य भावना ने प्रकृति के विविधि दृश्यों को अनेक कोमल, कठोर रूपों में साकार किया है । 'प्रसाद' की 'बीती विभावरी जागरी' 'निराला' की 'सन्ध्या सुन्दरी' पन्त की 'नौका बिहार' आदि कविताएं प्रकृति के कोमल रूप को उजागर करती है, जबकि 'कामायनी' का प्रलय वर्णन 'निराला' की 'बादल राग' कविता तथा पन्त की 'परिवर्तन' जैसी रचनाओं में प्रकृति के कठोर रूपों का चित्रण मिलता है ।

छायावादी काव्य में अनुभूति की प्रधानता है और यह अनुभूति कवि-प्रतिभा द्वारा परिष्कृत होकर ऐसे सौन्दर्यमय रूप में व्यक्त होती है, जो सभी सहृदयों को अपने में सहसा आसक्त कर लेती है । छायावादी कवियों ने प्रधान रूप से प्रणय की अनुभूति को व्यक्त किया है । उनकी

१. हिन्दी साहित्य का इतिहास सं० डॉ० नगेन्द्र पृ० ५५२-५३
२. हिन्दी साहित्य का उद्भव और विकास श्री रामबहोरी शुक्ला और डॉ० भागीरथ मिश्र पृ० २१३

कविताओं में प्रणय से सम्बद्ध विविध मानसिक अवस्थाओं का - आशा, आकुलता, आवेग तल्लीनता, निराशा, पीड़ा अतृप्ति, स्मृति, विषाद आदि का अभिनव एवं मार्मिक चित्रण मिलता है । रीतिकालीन काव्य में श्रृंगार की अभिव्यक्ति नायक-नायिका आदि के माध्यम से हुई है, किन्तु छायावादी कवियों की अनुभूति भी अभिव्यक्ति प्रत्यक्ष है । यहाँ कवि और पाठक की चेतना के बीच अनुभूति के अतिरिक्त किसी अन्य सत्ता की स्थिति नहीं है । स्वानुभूति को कल्पना के रंग में रंगकर इस भाँति चित्रित किया गया है कि सामान्य पाठक सहज ही उसमें तल्लीन हो जाता है ।

छायावादी अभिव्यजंना अपनी सूक्ष्मता और अर्थगाम्यीर्थ के कारण चरम उत्कर्ष तक पहुँच जाती है । महादेवी की 'दीपशिखा' की निम्नलिखित पंक्तियाँ दृष्टव्य है -

झर चुके तारक-कुसुम जब
रश्मियों के रजत-पल्लव
सन्धि में आलोक-तम की क्या नहीं नभ जानता तब,
पार से, अज्ञात बासन्ती
दिवस-रथ चल चुका है ।

इन पंक्तियों में अर्थ के तीन पक्षों का एक साथ निर्वाह किया गया है । यहाँ प्रतिपाद्य तो है जीवन की साधन का वह अन्तिम क्षण, जब इस लौकिक जीवन की समाप्ति के बाद एक लोकोत्तर आनन्दमय चेतना का आभास होने लगता है, किन्तु इस अर्थ के लिए दोहरा अप्रस्तुत है या यों कहना चाहिए कि अप्रस्तुत-दर, अप्रस्तुत है। एक अप्रस्तुत तो है प्रात:काल का, जब तारे तथा चन्द्रमा की किरणें धूमिल होने लगती हैं और वासन्ती प्रकाश वाले सूर्य का रथ क्षितिज के उस ओर से आता दिखायी देता है, तथा दूसरा अप्रस्तुत है पतझर की समाप्ति की बेला का, जब कुसुमों और पल्लवों के झर जाने के बाद - बसन्त के आगमन की सूचना मिलने लगती है । आलोक और तम की सन्धि का प्रयोग मृत्यु के लिए हुआ है और नभ का चेतना के लिए । ऐसी पंक्तियों को देखकर छायावादी रचनाओं की अभिव्यजंना की सूक्ष्मता का वैशिष्ट्य अनायास स्पष्ट हो जाता है । (१)

अप्रस्तुत विधान छायावादी कविता का मूल सौन्दर्यात्मक दृष्टिकोण है, जिसका आधार है कल्पना । छायावाद - पूर्व कालों मे न तो अप्रस्तुत विधान को मूल सौन्दर्यात्क दृष्टिकोण के रूप में ग्रहण किया गया है और न ही उसका आधार कल्पना है । यही कारण है कि भारतेन्दुकालीन और द्विवेदीकालीन कविता में अधिकाशंत: बंधा-बंधाया, रूढ़ अप्रस्तुत विधान है । अप्रस्तुतों का नया विधान करने की प्रवृत्ति भी पूर्ववर्ती काव्यधाराओं में दिखती है, किन्तु नयी सौन्दर्य-दृष्टि और अन्तदृष्टिदायनी-कल्पना के अभाव में उनके ये प्रयास वैशिष्ट्यहीन रहे है । छायावादी कवियों ने

१. हिन्दी साहित्य का इतिहास संं० डॉ० नगेन्द पृ० ५५०-५१

अप्रस्तुत विधान को मूल रूप से चारूत्व-विधायक, सौन्दर्यात्मक दृष्टिकोण के रूप में स्वीकार किया है। सर्जनात्मक कल्पना और नये सौन्दर्य-बोध ने मिलकर छायावादी कविता के अप्रस्तुत विधान को नया और मौलिक रूप प्रदान किया है। (१)

छायावादी कविता के अप्रस्तुत विधान में प्रभाव साम्य को विशेष आग्रह से अपनाया गया है। छायावादी कवियों ने अपनी सूक्ष्म सौन्दर्य-भावना की अभिव्यक्ति के लिए और उसे संवेदनीय बनाने के लिए सादृश्य और साधर्म्य के साथ-साथ प्रभाव साम्य के गहन सूक्ष्म आधार को ग्रहण किया है। मूर्त और अमूर्त के लिये मूर्त अप्रस्तुतों का विधान अभ्यंतर प्रभाव साम्य पर ही आधृत है। कई बार प्रभाव साम्य का आधार इतना सूक्ष्म होता है कि यह पता ही नहीं चलता कि प्रस्तुत क्या है और अप्रस्तुत क्या है। अथवा प्रस्तुत प्रमुख है अथवा अप्रस्तुत प्रमुख है ? इस काव्य-धारा में ऐसी अनेक कविताएं लिखी गयीं हैं जिनमें प्रस्तुत-अप्रस्तुत आपस में घुले-मिले हैं-एक को दूसरे से अलगाना सम्भव नहीं है। ऐसी भी अनेक कविताएं उपलब्ध होती हैं जिनमें प्रस्तुत किसी विशदीकृत अप्रस्तुत के प्रकाश में विलीन हो जाता है। इस प्रकार का अप्रस्तुत विधान अभ्यन्तर प्रभाव-साम्य पर निर्भर रहता है। प्रतीक, विम्ब और लक्षणा रूप में जो अप्रस्तुत विधान छायावादी कविता में हुआ है, वह प्रभाव साम्य पर आधृत है। इसी के बल पर छायावादी कवियों ने पुरातन बंधे-बंधायें आलंकारिक आयोजनों और रूढ़ पद्धतियों का परित्याग कर नये-नये सौन्दर्य रूपों में नया मौलिक, लाक्षणिक और व्यंजक अप्रस्तुत विधान किया है। (२)

छायावादी कविता में नयी-पुरानी सभी महत्वपूर्ण प्रणालियों में अप्रस्तुत विधान हुआ है, किन्तु छायावादी कवियों की दृष्टि कल्पना द्वारा पुरानी प्रणालियों में नये प्राण फूंकने, प्राचीन अप्रस्तुतों का नया विधान करने और सर्वथा नूतन प्रणालियों में अप्रस्तुतों का नियोजन करने की रही है। छायावादी कवियों ने जहाँ जीर्ण-शीर्ण और रूढ़ हो गये अप्रस्तुतों का संस्कार कर उन्हें नया रूपाकार दिया है, वहाँ उन्होंने सर्वथा नये अप्रस्तुतों का मौलिक विधान भी किया है। इस कविता में यत्र-तत्र नितान्त शास्त्रीय आलंकारिक रूपों में भी अप्रस्तुत विधान हुआ है, किन्तु ऐसा करते समय इन कवियों ने नयी सौन्दर्यात्मक दृष्टि का भी परिचय दिया है। लक्षणा और व्यंजना का जैसा सौन्दर्य छायावादी कविता में है, वैसा अन्यत्र दुर्लभ है। (३)

छायावादी कवियों ने मूर्त के लिए मूर्त, अमूर्त के लिये अमूर्त, मूर्त के लिए अमूर्त, अमूर्त के लिए मूर्त तथा मूर्तामूर्त रूप में सुन्दर अप्रस्तुत विधान किया है। इनके काव्य के अप्रस्तुत विधान में साम्य-भावना के तीनों रूप - रूप साम्य, धर्म-साम्य और प्रभाव-साम्य मिलते हैं। कहीं साम्य के तीनों रूप कविता में एक साथ मिल जाते हैं, तो कहीं अलग-अलग और विशिष्ट रूप में काव्य

१. आधुनिक हिन्दी काव्य में अप्रस्तुत विधान — नरेन्द्र मोहन — पृ० १२४
२. वही, — पृ० १२६
३. वही, — पृ० १२८

के अप्रस्तुत विधान को चमत्कृत करते प्रतीत होते है । इन तीनों में से प्रभाव साम्य को इन कवियों ने विशेष आग्रह से अपनाया है, किन्तु प्रभाव साम्य के अलावा सादृश्य और साधर्म्य के आधार पर भी अत्यन्त सुन्दर अप्रस्तुत विधान छायावादी कविता में हुआ है । अमूर्त के लिए अमूर्त अप्रस्तुत विधान का एक उदाहरण निम्नलिखित पंक्तियों में देखा जा सकता है -

कुछ काल रहा यों स्तब्ध पवन
ज्यों आंधी के उठने का क्षण । (१)

आँधी के उठने के क्षण के समय जैसी स्तब्धता रहती है, वैसी ही कुछ काल के लिए पवन मे व्याप्त हो गयी । वासना से विह्वल तुलसीदास रत्नावली के अलौकिक रूप को बस देखते ही रह गये और उधर रत्नावली भी उनके इस रूप को देखकर ठिठक गयी । कवि ने इस स्तब्ध भाव की अभिव्यक्ति, आँधी के उठने के क्षण की स्तब्धता द्वारा की हैं । यह स्तब्धता कुछ समय के लिये ही थी क्योंकि इसके अनन्तर रत्नावली आँधी सी उठी और तुलसीदास को भौतिक धरातल से उठाकर - उर्ध्व लोकों की ओर ले गयी । इस अप्रस्तुत विधान द्वारा कवि ने अमूर्त स्तब्धता की स्थिति की और उससे सम्बद्ध भाव की बड़ी सार्थक और सुन्दर व्यंजना की हैं । यहाँ अभ्यन्तर प्रभाव-साम्य के अधारको तथा लक्षणा और व्यंजना के प्रगल्भ प्रयोग को भी देखा जा सकता है । (२)

(iii) छायावादोत्तर सौन्दर्य-दृष्टि :- छायावादोत्तर काव्य कई वादों और धाराओं से होकर गुजरा है ।कई-कई जीवन दृष्टियाँ तथा काव्य की वस्तु और शिल्प सम्बन्धी मान्यतायें उभरी हैं । किसी धारा में व्यक्तिगत अनुभूति का घनत्व अधिक है, तो किसी में सामाजिक अनुभूति की स्फीति। किसी में रोमानी दृष्टि की प्रधानता है तो किसी में बौद्धिक यर्थाथवादी दृष्टि की । प्रगतिवाद, प्रयोगवाद और नयी कविता सम्बन्धी धारणाएं इसी कालखण्ड की उपज हैं ।

प्रगतिवाद :- प्रगतिवादी काव्य वह काव्य है जो मार्क्सवादी दर्शन के आलोक में सामाजिक चेतना और भावबोध को अपना लक्ष्य बनाकर चला । प्रगतिवाद ने सौन्दर्य को नये दृष्टिकोण से देखा। वह वर्तमान जन-जीवन में सौन्दर्य खोजता है । सौन्दर्य का सम्बन्ध हमारे हार्दिक आवेगों और मानसिक चेतना दोनों से होता है । इन दोनों का सम्बन्ध सामाजिक सम्बन्धों से होता है । नये समाज में पलने वाला अथवा उसके साथ चलने का प्रयास करने वाला कवि नये उठते हुए समाज मे सौन्दर्य देखेंगा, वह संघर्षो से भागकर किसी अतीत लोक या कल्पना लोक के निष्क्रिय सौन्दर्य में मुँह नहीं छिपाएगा । प्रसिद्ध मार्क्सवादी दार्शनिक एन0जी0 चारनीशवस्की के शब्दों में - "मनुष्य को जीवन सबसे प्यारा है, इसलिए सौन्दर्य की यह परिभाषा अत्यन्त संतोषजनक मालूम पड़ती है - 'सौन्दर्य जीवन है ।' (३)

१.	तुलसीदास	सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला'	पृ० ४२
२.	आधुनिक हिन्दी काव्य में अप्रस्तुत विधान	नरेन्द्र मोहन	पृ० १३४
३.	हिन्दी साहित्य का इतिहास	सं० डॉ० नगेन्द्र	पृ० ६३२

प्रगतिवादी साहित्य को सोद्देश्य मानता है । सोद्देश्यता का अर्थ है - किसी विशेष अभिप्राय से, किसी विशेष दृष्टि से कला की रचना करना । इसलिए वह सामाजिक यर्थाथ का इस प्रकार चित्रण करता है कि कुरूप, शोषक, सड़ी-गली विसंगतिग्रस्त शक्तियों का पर्दाफाश हो और नई सामाजिक शक्तियों के संघर्षो, युयुत्सा और आस्था को बल मिले । प्रगतिवादी कविता चूंकि सामाजिक जीवन की वास्तविकता को लेकर चली, जनता तक पहुँचना और जनता के जीवन की ही बात कहना उसका लक्ष्य रहा, इसीलिए वह छायावाद की वायवी असमान्य रेशमी परिधान शालिनी और सूक्ष्म भाषा को छोड़कर सुस्पष्ट, सामान्य प्रचलित भाषा को अपनाकर चली । उसने प्रतीक, विम्ब, शब्द, मुहावरे, चित्र सभी जन-जीवन के बीच से लिए । इसलिए एक बहुत ही जीवन्त भाषा का उदय हुआ, जैसे रंगीन कुहासे को तोड़कर विषम यर्थाथ धरातल उभर उठा हो ।(१)

साम्यवाद से सहज सम्बन्ध होने के कारण प्रगतिवाद साहित्य को मुख्यत: सामाजिक या सामूहिक चेतना मानता है, वैयक्तिक नहीं । जिस प्रकार साम्यवाद समष्टि या समूह के हितों की चिन्ता और रक्षा करता है, व्यक्ति के नहीं, उसी प्रकार प्रगतिशील साहित्य समाज के सुख-दुःख की अभिव्यक्ति को ही महत्व देता है, व्यक्ति के सुख-दुःख की अभिव्यक्ति को नही । वह सौन्दर्य को अपने ह्दय या दूसरे की आँखों में देखने की अपेक्षा सामाजिक स्वास्थ्य में देखता है ।(२)

यर्थाथवाद प्रगतिशील सौन्दर्य चेतना का केन्द्र बिन्दु है । प्रगतिवादी कवि सौन्दर्य की तलाश महलों में नहीं, झोपड़ों में करता है । उसे सौन्दर्य का दर्शन सुविधाभोगी वर्ग के विलासितापूर्ण जीवन में नहीं, अपने श्रम से अपनी रोटी कमाने वाले मजदूर और किसानों में होता है । सर्वहारा वर्ग की जिजीविषा उसे मन्त्रमुग्ध करती है । प्रकृति की सुन्दरता भी उसे मानव जीवन के परिपार्श्व में ही आकृष्ट करती है । प्रकृति के प्रकृत-सौन्दर्य में उसकी उतनी रूचि नहीं है ।

प्रयोगवाद :- प्रयोगवादी कविता ह्रासोन्मुख मध्यवर्गीय समाज के जीवन को चित्रित करती है । प्रयोगवादी कवि मानता है कि व्यापक जीवन की बड़ी-बडी सैद्धान्तिक बातें और नैतिकता के बड़े-बड़े फलसफे ज्ञान-विज्ञान के क्षेत्र में भले ही उपादेय हो, वे कला के क्षेत्र में कलाकार के 'स्व' की आँच में तपे बिना न तो खप सकते हैं और न उपादेय ही हैं । प्रश्न यह नहीं है कि हमने कला के जीवन के कितने व्यापक अंश को समेटा है, प्रश्न यह है कि हमने लिए हुए अंश को कितना जिया है, कितना भोगा है और कितनी ईमानदारी और सच्चाई के साथ व्यक्त किया है । प्रयोगवादी कवि इसीलिए व्यापक जन-जीवन के अंकन के फेर में न पड़कर अपने जिये हुए जीवन के ही विभिन्न दर्दो को अंकित करना पसन्द करते है ।

प्रयोगवाद ने बडी-बड़ी घटनाओं, बड़े-बड़े संघर्षो, बड़े-बड़े व्यक्तियों या समुदायों, बड़े-बड़े जीवन प्रसंगों के विशाल फलक पर इतिवृत्तात्मक काव्य का निर्माण नहीं किया, उसने व्यक्ति

१. हिन्दी साहित्य का इतिहास — सं० डॉ० नगेन्द्र — पृ० ६६३
२. आधुनिक हिन्दी कविता की मुख्य प्रवृत्तियाँ — डॉ० नगेन्द्र — पृ० ९०

के अन्त: संघर्षो, क्षणों की अनुभूतियों और सूक्ष्म से सूक्ष्म, छोटी से छोटी संवेदनाओं और मन की विभिन्न स्थितियों को लेकर छोटी-छोटी तीव्र प्रभावशाली कविताएं लिखी, फलैश दिए । कला में मूल प्रश्न विषय की महत्ता या लघुता का नहीं है, मूल प्रश्न है उसे ईमानदारी के साथ जीकर व्यक्त करने का । लघु मानव को उसकी समस्त हीनता और महत्ता के सन्दर्भ में प्रस्तुत करके प्रयोगवादी कविता ने उसके प्रति सहानुभूतिमय दृष्टि से सोचने के लिए एक नया रास्ता खोला ।(१) प्रयोगवादी कवि यर्थाथवादी है । वे भावुकता के स्थान पर ठोस बौद्धिकता को स्वीकार करते हैं। ये कवि मध्यवर्गीय व्यक्ति जीवन की समस्त जड़ता, कुण्ठा, अनास्था, पराजय और मानसिक संघर्ष के सत्य को बड़ी बौद्धिकता के साथ उद्घाटित करते हैं । यों तो मध्यवर्गीय व्यक्ति-जीवन की पीड़ा के अनेक स्तर इन कविताओं में उभरे हैं, किन्तु विशेषतया दमित काम-वासना का ही प्राधान्य लक्षित होता है । फ्रायड का काम-सिद्धान्त इनका प्रधान जीवन-दर्शन है । कहीं स्पष्ट रूप से तो कहीं बारीक प्रतीकों तथा विम्बों के माध्यम से दमित काम-वासनाओं और उलझी हुई संवेदनाओं को इन कवियों ने रूपायित किया है । (२)

प्रयोगवादी कवियों ने भाषा का सर्वथा वैयक्तिक प्रयोग किया है । प्रयोगवादी कवि शब्द की प्रचलित अर्थव्यंजना को सामान्यत: ग्रहण करना पसन्द नहीं करता । अपने विशिष्ट अनुभव को व्यक्त करने के लिए वह साधारण शब्दार्थ को असमर्थपाता है, इसलिए उसका विशिष्ट प्रयोग करता है - अर्थात शब्द के साधारण अर्थ से बड़ा अर्थ उसमें भरना चाहता है, इसके लिए वह तरह-तरह के प्रयोग करता है, एक तो विज्ञान, दर्शन, मनोविज्ञान, मनोविश्लेषण-शास्त्र, बाजार, गाँव, गली-कूचे सभी जगह से शब्द एकत्र करता हुआ अपने शब्द-भण्डार को व्यापक बनाता है, दूसरे, शब्दों का विचित्र और सर्वथा अनर्गल प्रयोग करता है, और तीसरे, अपने अप्रस्तुत विधान को अत्यन्त असाधारण रूप देने का प्रयत्न करता है । (३)

प्रयोगवाद सौन्दर्य को केवल मधुर-कोमल में सीमित कर देने के पक्ष में नही हैं । उसका मानना है कि सौन्दर्य-चेतना एक अत्यन्त व्यापक चेतना है और गत्यात्मक भी-जो परिस्थिति के अनुसार विकसित होती रहती है । जिस प्रकार मधुर-कोमल उसका एक रूप है, उसी प्रकार अनगढ़ और परूष भी । आज के जीवन में अनगढ़ और भदेस हमारे अधिक निकट है, इसलिए उसकी चेतना हमारे लिए अधिक वास्तविक और स्कभाविक है । आज का जीवन सर्वथा विश्रंखलित और अव्यवस्थित है, जीवन-मूल्यों की इतनी भयंकर अराजकता पहले शायद ही कभी सामने आई हो। राजनीतिक और आर्थिक दुर्व्यवस्था के साथ सांस्कृतिक और दार्शनिक उलझनों ने मिलकर जीवन में अगणित गुत्थियाँ डाल दी हैं । ऐसी अवस्था में किसी स्थिर रोमानी सौन्दर्य-बोध को ग्रहण कर लेना

१. हिन्दी साहित्य का इतिहास — सं० डॉ० नगेन्द्र — पृ० ६३६-३७
२. वही — पृ० ६३६
३. आधुनिक हिन्दी कविता की मुख्य प्रवृत्तियाँ — डॉ० नगेन्द्र — पृ० १०३

असम्भव है ।यदि ऐसा किया जाता है, तो वह वास्तविक और हार्दिक नहीं है ।अतः आज के आच्छन्न जीवन के अनुकूल संकुल सौन्दर्य-बोध को ही वास्तविक और हार्दिक मानकर स्वीकार किया जा सकता है । (१)

नयी कविता :-नयी कविता भारतीय स्वतंत्रता के बाद लिखी गयी उन कविताओं को कहा जाता है, जिसमें परम्परागत कविता से आगे नये भावबोधों की अभिव्यक्ति के साथ ही नये मूल्यों और नये शिल्प-विधान का अन्वेषण किया गया है । यह कविता अपनी वस्तु-छवि और रूप-छवि दोनों में पूववर्ती प्रगतिवाद और प्रयोगवाद का विकास होकर भी विशिष्ट है । नयी कविता ने जीवन को उपर्युक्त धाराओं की कविताओं की तरह न तो एकांगी रूप में देखा, न केवल महत्व रूप में, उसने जीवन को-वह चाहे किसी वर्ग का हो, चाहे व्यक्ति का हो, चाहे समाज का हो-जीवन के रूप में देखा-इसमें कोई सीमा नहीं निर्धारित की । मनुष्य किसी वर्गीय चेतना, सिद्धान्त अथवा आदर्श की बैसाखी पर चलता हुआ इसके पास नहीं आया, वह अपने सम्पूर्ण सुख-दुःख, राग-विराग के परिवेश से संयुक्त शुद्ध मनुष्य के रूप में आया । अभिप्राय यह है कि नयी कविता कोई वाद नहीं है, जो अपने कथ्य और दृष्टि में सीमित हो । कथ्य की व्यापकता और सृष्टि की उन्मुक्तता नयी कविता की सबसे बड़ी विशेषता है ।

नयी कविता जीवन के एक-एक क्षण को सत्य मानती है और उस सत्य को पूरी हार्दिकता और पूरी चेतना से भोगने का समर्थन करती है । क्षण-बोध शाश्वत-बोध का विरोधी नहीं, उसे प्राप्त करने की यर्थाथ प्रक्रिया है । क्षणों में दिखायी पड़ने वाला जीवन-सौन्दर्य, क्षणों में अनुभूत होने वाली जीवन की व्यथा या उल्लास, क्षणों में लक्षित होने वाली मनः स्थिति या वाह्य व्यापार, क्षणों की सीमा में स्फूर्जित हो जाने वाला कोई सत्य छोटा नहीं है । अनुभूति-शून्य, व्यथा-रिक्त इतिहास असत्य है, निरर्थक है । इसलिए नयी कविता अनुभूतिपूर्ण गहरे क्षण, प्रसंग, व्यापार या किसी भी सत्य को उसकी आन्तरिक मार्मिकता के साथ पकड़ लेना चाहती है । इस प्रकार जीवन के सामान्य-से-सामान्य दिखने वाले व्यापार या प्रसंग नयी कविता में नया अर्थ पा जाते है । (२)

नयी कविता की यर्थाथवादी दृष्टि काल्पनिक या आदर्शवादी या भावुकता मिश्रित मानववाद से संतुष्ट न होकर जीवन का मूल्य, उसका सौन्दर्य, उसका प्रकाश जीवन में ही खोजती है । वर्तमान की गहन निराशा और बिखराव के बीच भी वह अनागत ज्योति के लिए प्रतीक्षमान है । नयी कविता द्विवेदी कालीन कविता, छायावाद या प्रगतिवाद की तरह अपने बने-बनाये मूल्यवादी नुस्खे नहीं पेश करती, वह तो उसे जीवन की सच्ची व्यथा के भीतर पाना चाहती है । इसलिए नयी कविता में व्यंग के रूप में कहीं पुराने मूल्यों की अस्वीकृति है, तो कहीं दर्द की सच्चाई के भीतर से उगते हुए नये मूल्यों की सम्भावना के प्रति आस्था ।

---

१. आधुनिक हिन्दी कविता की मुख्य प्रवृत्तियाँ डॉ० नगेन्द्र पृ० १००-१०१
२. हिन्दी साहित्य का इतिहास सं० डॉ० नगेन्द्र पृ० ६३७-३८-३९

लोक संम्पृक्ति नयी कविता की एक खास विशेषता है । वह सहज लोक-जीवन के करीब पहुँचने का प्रयत्न करती है । लोक-जीवन के प्रति उसकी उन्मुखता प्रगतिवाद का प्रभाव कही जा सकती है, किन्तु प्रगतिवाद में एक आन्दोलन का स्वर था, सहजता नहीं थी, और उसने अपने विशिष्ट दृष्टिकोण के कारण लोक-जीवन का एक विशिष्ट अर्थ लगा लिया था । प्रयोगवाद लोक-जीवन से कट गया था । नयी कविता ने लोक-जीवन की अनुभूति, सौन्दर्य-बोध, प्रकृति और उसके प्रश्नों को एक सहज और उदार मानवीय भूमि पर ग्रहण किया । साथ ही साथ लोक जीवन के विम्बों, प्रतीकों, शब्दों और उपमानों को लोक-जीवन के बीच से चुनकर उसने अपने को अत्यधिक संवेदनापूर्ण और सजीव बनाया । नयी कविता अपनी अन्तर्लय, विम्बात्मकता, नवप्रतीक योजना, नये विशेषणों के प्रयोग, नव उपमान-संघटना में कविता के शिल्प की मान्य धारणाओं से काफी अलग दिखती हैं । उसमें जीवन के नये सन्दर्भो में उभरने वाली अनुभूतियों, सौन्दर्य-प्रतीतियों और चिन्तन-आयामों से सम्पृक्त विम्बों का चयन किया गया है । (१)

१. हिन्दी साहित्य का इतिहास सं० डॉ० नगेन्द्र पृ० ६४०-४१

अध्याय- २

आलोच्य कवि एवं उनकी सौन्दर्य-चेतना

१ (क) केदार : व्यक्तित्व एवं कृतित्व

जीवन परिचय- केदारनाथ अग्रवाल का जन्म चैत्रमास, शुक्लपक्ष द्वितीया, सम्वत् १९६८ वि० तदनुसार ०१ अप्रैल, सन् १९११ को बांदा जनपद में बबेरू तहसील के अन्तर्गत 'कमासिन' ग्राम मे हुआ था, किन्तु शैक्षिक प्रमाण-पत्रों के आधार पर इनका जन्म ६ जुलाई, १९११ ई० मान्य है ।(१) कमासिन उत्तर-प्रदेश के बाँदा-जनपद में नगर से ६४ किलोमीटर दूर पूर्वोत्तर दिशा में स्थित है । आपके पिता का नाम श्री हनुमान प्रसाद अग्रवाल था । परिवार का प्रधान व्यवसाय व्यापार था । ग्राम की प्रमुख आवश्यकताओं की पूर्ति इनकी दुकान से होती थी । समय-समय पर ऋणादि देने की भी व्यवस्था थी । पिता जी को साहित्य एवं संगीत में विशेष रूचि थी । उन्हें साधु-सन्तों की संगति एवं सेवा से भी विशेष आनन्द प्राप्त होता था । घर के सामने रामलीला होती थी, जिसकी व्यवस्था इन्हीं के परिवार के सदस्य करते थे, स्वयं पिता जी भी अभिनय में भाग लेते थे। गाँव में पिता जी ने पुस्तकालय की व्यवस्था की थीं, जिसमें कलकत्ता से निकलने वाला 'स्वतन्त्र दैनिक' और बम्बई का 'वेंकटेश्वर' समाचार भी आता था । इस प्रकार आपको अध्ययन का अच्छा वातावरण प्रारम्भ से ही मिला । चाचा श्री मुकुन्दलाल जी अग्रवाल इलाहाबाद में पढ़ते थे । अत: वहाँ की नागरिक सभ्यता का प्रभाव धीरे-धीरे घर पर भी हो रहा था । बाबा के भाई तहसील में खजांची थे । माता जी फतेहपुर जनपद के किशुनपुर ग्राम की निवासिनी थीं । वे स्वभाव से एकदम भोली-भाली और सरस थीं जिनका अमिट प्रभाव केदार पर आज भी देखा जा सकता है।

केदार के चाचा श्री मुकुन्दलाल अग्रवाल वकालत की डिग्री लेकर बाँदा में वकालत करने लगे । धीरे-धीरे वे ख्यातिलब्ध वकीलों में गिने जाने लगे । केदार भी १९३८ ई० में अपनी वकालत की डिग्री लेकर बाँदा आये और उन्होंने भी अपने पूज्य चाचा जी के संरक्षण में वकालत का कार्य प्रारम्भ किया और कुछ ही समय में वे भी अपनी बुद्धि एवं प्रतिभा से एक ख्यातिलब्ध एड्वोकेट हो गये ।

केदार का विवाह सन् १९२५ ई० में नैनी (इलाहाबाद) में हुआ था । उस समय वे कक्षा ७ में पढ़ते थे । नैनी में उनकी पत्नी के मामा बाबू बेनी प्रसाद अग्रवाल त्रिवेणी सुगर मिल्स के मालिक थे। उन्होने ही अपनी भांजी पार्वती देवी का शुभ विवाह केदार के साथ किया । केदार का दाम्पत्य-जीवन प्रारम्भ से ही सुखमय रहा है । जब तक पढ़ते रहे, तब तक पारिवारिक बोझ एवं दायित्व का अहसास ही नही हुआ और शिक्षा समाप्त करने के उपरान्त वे स्वयं कमाने लगे। केदार जब इण्टरमीडिएट के विद्यार्थी थे, तभी उनको पुत्री-रत्न के रूप में श्याम कुमारी की प्राप्ति

---

१. केदार : व्यक्तित्व एवं कृतित्व, सं० श्री प्रकाश पृ० १२५

हुई, जो आज प्रयाग में विवाहित जीवन यापन कर रही है । इसके बाद द्वितीय पुत्री-रत्न के रूप में किरण की प्राप्ति हुई जिनका पुनर्विवाह दिल्ली में हुआ । तीसरी एवं अन्तिम संतान के रूप में श्री अशोक कुमार प्राप्त हुये । वर्तमान में वे मद्रास में सिनमेटोग्राफर के रूप में कार्य कर रहे है। केदार की पत्नी का देहावसान २८जनवरी १९८६ को सायंकाल सवा छैः बजे मद्रास में हुआ । आजकल श्री केदारनाथ अग्रवाल अपने पैतृक आवास सिविल लाइन्स, रोड्वेज बस स्टैण्ड के पीछे बांदा में सुखमय ज़ीवन व्यतीत कर रहे हैं । उनकी सुख-सुविधा एवं भोजन का ध्यान उनके परिवार के अन्य सदस्यों की ओर से रखा जाता है, फिर भी बहुत पुराने सेवक श्री रामस्वरूप, बाबूजी का हर पल छाया की भाँति ध्यान रखते हुए सेवा का दायित्व संभाले हुए हैं ।

केदार की शिक्षा का शुभारम्भ उनके पैतृक गाँव कमासिन की प्राइमरी पाठशाला से ही हुआ । उन्होने चौथी से छठी कक्षा रायबरेली से, सातवीं कक्षा म्यूनिसिपल स्कूल कटनी एवं आठवीं कक्षा मॉडल मिडिल स्कूल जबलपुर से पास की । हाईस्कूल एवं इण्टरमीडिएट परीक्षा ईविंग किश्चन इण्टर कालेज इलाहाबाद से उत्तीर्ण कर प्रयाग विश्वविद्यालय से १९३४ ई0 में स्नातक की परीक्षा उत्तीर्ण की। बी0ए0 उत्तीर्ण करने के उपरान्त अपने डी0ए0वी0 कालेज कानपुर से सन् १९३८ ई0 में एल0एल0बी0 की डिग्री प्राप्त की और वकालत के माध्यम से जीविका के क्षेत्र में उतर आये।

बाँदा में इनके पूज्य चाचा जी श्री मुकुन्दलाल अग्रवाल पहले से ही वकालत करते थे और अपने क्षेत्र में ख्यातिप्राप्त थे । अतः उनके संरक्षण में ही आपने वकालत का शुभारम्भ किया और कुछ ही वर्षो में अपने अथक परिश्रम और ईमानदारी से कार्य करते हुए उन्होने भी इस क्षेत्र में प्रतिष्ठा प्राप्त की । आप दीवानी, फौजंदारी एंव माल- तीनों के अच्छे वकील के रूप में विख्यात रहे हैं । आपकी प्रतिभा एवं विद्धत्ता के कारण ही आपको सन् १९६२ ई0 में डी0जी0सी0 का पद प्राप्त हुआ और अपने जीवन के साठ वर्ष पूर्ण करने पर ६जुलाई १९७० को इस पद से अवकाश ग्रहण किया । आपने लूट-खसोट ओर बेईमानी से कोसें दूर रहकर वकालत जैसे व्यवसाय को अपनी जीविका का आधार बनाये रखा । विगत डेढ़ दशक से वकालत का व्यवसाय बंद कर आप अब एकान्त काव्य-साधना में रत है ।

केदार की रूचि बाल्यकाल से ही कविता में रही है । इसीलिए वे अपने प्रारम्भिक वर्षो में हिन्दी के तमाम नये कवियों की कवितायें पढ़ते रहे है । जयदेव के 'गीत-गोविन्द' को पढ़कर उसके स्वर-प्रवाह एवं संगीत-ध्वनियों से वे अभिभूत हो जाते थे, पद्माकर के कवित्त और सवैये उन्हें बेहद पसन्द आते थे । काव्य के ऐसे संस्पर्शो से उनमें साहित्यिक रूचि विकसित होती चली गयी ।

''बस यहीं से मै कविता के फेर में पड़ गया और उसको पुस्तकों एवं पत्रिकाओं में से पकड़ने लग गया और मेरी यह तलाश दिनोदिन बढ़ती ही गयी और नौबत यह आयी कि मै

२८-२९ तक कविता के लिए बुरी तरह से भूखा रहने लगा और उसके न बनने पर भी ब्रज-भाषा के कवित्त और सवैयें बनाने लगा और बच्चों के लिए खड़ी बोली की छोटी-छोटी कवितायें लिखने में समय और श्रम लगाने लगा ।(१)

सन् ३०-३१ तक पहुँचते-पहुँचते इनके कुछ कवित्त और सवैये लखनऊ के 'माधुरी' पत्रिका में प्रकाशित होने लगे । इलाहाबाद से प्रकाशित होने वाली स्काउटों की पत्रिका 'सेवा' में उनके खड़ी बोली के छन्द छपने लगे ''फलत: मैं और मेरी कविता घनिष्ठ हो गये और मुझे संसार में सबसे अधिक प्रिय कविता ही लगने लगी । मैं तो यही कहूँगा कि पहले-पहले इस वाह्य-जगत ने मुझे कविता नहीं दी, बल्कि कविता ने ही मुझे यह दृष्टि दी, जिसे पाकर मैं संसार के सुख-दुख और उसके संघर्ष एवं सौन्दर्य को देखने-सुनने समझने और पकड़ने लगा, और उनको यथाशक्ति से छन्दबद्ध करने लगा, वैसे ही, जैसे कि कोई कागज में एक इंच के स्पेश में आकाश को कैद करने लगे ।'' मुझे यह कहने मे जरा भी संकोच नहीं है कि इस यात्रा के दौरान में ही मेरा इंद्रियबोध विकसित हुआ और मेरी चेतना में काव्यबोध आया और मैं मानवीय-सौन्दर्य, प्राकृतिक-सौन्दर्य तथा काब्य के सौन्दर्य में अत्यधिक आकृष्ट और प्रभावित होने लगा । शायद कविता न होती या मेरी उससे घनिष्ठता न होती तो प्रकृति के रागरंग में इतना आत्मविभोर न हो पाता ।''(२)

बी0ए0 में पढ़ते समय केदार भारतेन्दु हरिश्चन्द्र की साहित्य-साधना से अत्यधिक प्रभावित हुये हैं । उन्होंने स्वयं स्वीकार किया कि मुझे भारतेन्दु जी के जीवन में वह सब कुछ मिलता दिखता था जो एक अच्छे आदमी के जीवन में होना चाहिए । बात यह थी कि उनके साहित्य में ब्रजभाषा का भी माधुर्य था और खड़ी बोली की उनकी रचनाओं में यथार्थोन्मुखी संरचना की भी शुरूआत हो चुकी थी । जीवन के प्रति उनका अनुराग, सार्वजनिक-जीवन में डूबकर बना था । वह प्राचीन-काव्य परम्परा की शास्त्रीयता से बाहर निकलकर, काव्य-धारा को देश की जीवन-धारा से जोड़ते थे । इसके अतिरिक्त वह सामाजिक उत्सवों और पर्वो में सक्रिय सहयोग देते थे और स्वयं भी अपनी मानसिकता को उसी के अनुरूप बनाते रहते थे । ....आज, इस समाचार में, आप सबके समक्ष मुझे यह बतलाते हुए हर्ष हो रहा है कि मैंने भारतेन्दु जी से तब इतनी बातें अपने आदमी होने और कवि होने के लिए पायी थीं । .... इसलिए मैंने परम्परा को नकारा नहीं, बल्कि उसके ऋण को स्वीकार करने में गर्व का अनुभव किया ।(३)

कवि की काव्य-यात्रा, जीवन-यात्रा से बिल्कुल जुड़कर चलती रहीं । सन् १९३८ में वे अपने वकालत के पेशे में प्रविष्ट हुए और फिर संघर्ष करते हुए आदमी के जीवन को निरखने-परखने लगे । केदार ने स्वयं स्वीकार किया है कि मुझे इसी जमाने में थोड़ी-बहुत रूचि राजनीति से होने

१. मेरी कविता यात्रा, केदार, संस्मरणात्मक वार्ता
२. मेरी कविता यात्रा, संस्मरणात्मक वार्ता, केदार (रेड़ियों-वार्ता, अप्रकाशित)
३. साक्षात्कार-अंक अगस्त- नवम्बर १९८६, पृ0 १२०

लगी । मैंने इसी सिलसिले में ऐतिहासिक द्वन्दात्मक भौतिकवाद के सिद्धान्त को भी बड़े मनोयोग से पढ़ा । मैंने पाया कि जीवन का लक्ष्य यह होना चाहिए कि कवि स्वयं अच्छा आदमी बने और समाज के दूसरे लोग भी ऐसा जीवन जियें जो सबको अवसर प्रदान कर सके कि वे शोषित, पराजित और पीड़ित जीवन-जीने के लिये बाध्य न रहें, अपितु उस मानवतावाद को ग्रहण किये हुए, उस ओर अग्रसर होते रहें जहाँ पहुँचकर वे इस संसार को सुख और समृद्धि से सजा सकें और तमाम प्रकार की धर्मान्धता, रूढ़ियों, अन्धविश्वासों और असमानताओं को तोड़ सकें और उन्हें त्यागकर दायित्वपूर्ण मानवीय जीवन जियें, जिससे मनुष्य की आत्मोन्नति होती चले ।............ इसीलिए मैं सन् ३६ में बने प्रगतिशील लेखक-संघ की ओर उन्मुख हुआ । मैंने अपने को और अपनी कविता को उसी ओर ले जाना श्रेयस्कर समझा ।(१)

मार्क्सवादी सौन्दर्य दृष्टि से प्रभावित होकर केदार अपने युग और यथार्थ से सही अर्थो में परिचित हो सके और उसके सामाजिक एवं राजनीतिक स्तरों में प्रवेश कर सके । जो-जो बातें वैचारिक रूप से पहले वे नहीं जान पाते थे, अब वे उन्हें उनके युगीन संदर्भों में उनके पूरे तीखेपन से पकड़ने में समर्थ हुए और उनकी कविता में और उनकी सौन्दर्य-दृष्टि में जो अन्तर आया, उसे उन्होंने इस प्रकार अभिव्यक्त किया कि 'पहले की मेरी सौन्दर्य धारणा कुछ नीचे दब गयी और मेरी कविता में किसान-मजदूर के जीवन के कठोर संघर्षमय बिम्ब दैनिक भाषा में रूपायित होने लगे । मैं मार्क्सवादी जीवन-दर्शन से प्रभावित होने लगा और देश-प्रेम के आवेश में भौतिकवादी और प्रगतिवादी हो गया। मैंने जनजीवन के निकटतम पहुँचकर वहाँ से, जीवन से जुड़ी हुयी कविता को नयी निगाह से उठाना शुरू किया' ।(२) मार्क्सवादी दर्शन, भारतीय दर्शन की आध्यात्मिकता को खंडित करने वाला था इसीलिए उसका विरोध भी तत्कालीन सामाजिक-राजनीतिक परिस्थितियों में हुआ। ऐसा माना जाता था कि मार्क्सवादी दर्शन विदेशी है और भारतीय चिन्तन पद्धति के सर्वथा विपरीत है । इसके आरोपण से आध्यात्मिकता का विनाश होगा, ऐसे ही वातावरण में प्रगतिशील काव्य-धारा को संघर्ष झेलना पड़ा और केदार को भी विरोध इस सीमा तक झेलना पड़ा कि उनकी कविता को कोरी नारेबाजी कहा जाने लगा । इन सबसे आहत होकर भी वे अनाहत बने रहे और बार-बार उस जीवन-दर्शन को मनोयोग से पढ़ते रहे और चिन्तन करते रहे कि क्या वास्तव में यह जीवन-दर्शन अमानवीय है, मानवतावाद का विरोधी है ? क्या यह अध्यात्मिकता का भंजक है ? केदार कहते हैं कि 'जब इस पर सोचता तो लगता कि यह अध्यात्मिकता सच्ची मानवतावादी आध्यात्मिकता नहीं है । क्योंकि ऐसी आध्यात्मिकता मानवीय गुणों से वंचित रहकर केवल शून्यवादी मानवता हो जाती है । इसलिए धार्मिक प्रतिष्ठानों से, आयोजनों से मैं बचने लगा, अपने को आदमी बनाने और सामाजिक-जीवन जीने में रूचि लेने लगा और कथनी तथा करनी के ऐक्य होने के महत्व

१. साक्षात्कार-अंक अगस्त- नवम्बर १९८६, पृ० १२१
२. रेड़ियो वार्ता, मेरी कविता यात्रा : केदार (अप्रकाशित)

को कभी नकार नहीं सका । इसलिए मुझे ऐसी कवितायें लिखने की आवश्यकता महसूस हुयी जो ऐसी आध्यात्मिका को तोड़े, मानवीय सत्य को जीवन के यथार्थ से प्राप्त सत्य को उद्‌घाटित करें, जन-जीवन की सच्ची मानवीयता से लैस करे और भारतीयता को सही अर्थो में सच्चे मानववाद का स्वरूप प्रदान कर सके ।'(१)

बाँदा में रहते हुए कवि का सम्बन्ध महाप्राण निराला, डॉ0 रामविलास शर्मा, नागार्जुन, शमशेर आदि साहित्यकारों से बराबर बना रहा है । कवि की प्रारम्भिक कविताएँ 'माधुरी' 'सेवा', 'वीणा' और 'सरस्वती' में प्रकाशित हुई । तदुपरान्त उनकी प्रगतिशील कवितायें धड़ाधड़ अनेक पत्रों में प्रकाशित होने लगीं । कुछ कविताताएँ शमशेर ने 'रूपाभ' में छापीं । 'नया साहित्य' बम्बई में बहुत-सी कवितायें प्रकाशित हुई । बनारस से प्रकाशित 'हंस' पत्र तो इनकी ख्याति का मुख्य पत्र है। हंस ने कवि के अपने अनेक प्रशंसकों और पाठकों को तैयार किया। बहुत से किसान भाई तो उन्हें सिर्फ इसलिए याद किये हुए है कि 'वह एक हथौड़ावाला घर में और हुआ' के कवि हैं। बम्बई के नौसैनिकों के विद्रोह पर आल्हा लिखा जो हंस में छपा । अज्ञेय जी की साहित्यिक स्थापनाओं के विरोध में इनके तीन लेख 'हंस' में प्रकाशित हुये । इलाहाबाद से प्रकाशित 'नया साहित्य' में भी इनकी रचनायें प्रकाशित हुई । 'नयापथ' एवं 'जनयुग' (लखनऊ) में भी इनकी कुछ कवितायें छपतीं रहीं । ये सभी साहित्यिक-पत्र भी कवि को संबल, प्रेरणा और प्रोत्साहन देते रहे जिसके प्रतिफल के रूप में कवि का सहज विकास एवं कविता-यात्रा आज भी विभिन्न आपत्तियों, विरोधों की दुर्गम अपत्यकाओं को लांघती हुई सतत प्रवहमान है । कवि के विचारों से प्रभावित होकर भारत और रूस की मैत्री का प्रतीक सोवियत लैण्ड नेहरू पुरस्कार सन् १९७३ में उन्हें प्रदान किया गया । जिसमें दो सप्ताह की रूस यात्रा एवं आठ हजार रूपये नगद मिले । कवि को रूस जाने का सौभाग्य मिला, वहाँ से लौटने पर अपने यात्रा-संस्मरणों को कवि ने 'बस्ती लिखे गुलाबों की' पुस्तक में प्रकाशित किया है ।

कवि की विभिन्न कविताओं को लेकर अब विश्वविद्यालय स्तर पर शोध कार्य प्रारम्भ हो गये है और उनकी ढेर-सी कविताओं को कई जगह पाठ्यक्रमों में स्थान मिलने लगा है और इनकी विभिन्न कविताओं का अनुवाद भी रूस, अमेरिका, चेकोस्लोवाकिया और जर्मनी में हुआ है। केदार के समस्त काव्य एवं आलोचना साहित्य के प्रकाशन का अति गुरूतर एवं अर्थ-साध्य दायित्व परिमल प्रकाशन, १९४ सोहबतिया बाग, इलाहाबाद-६ के संचालक श्री शिवकुमार सहाय ने संभाला और निरंतर निर्वाह करते चले आ रहे हैं । यहां तक कि प्रतिवर्ष केदार के जन्मदिवस पर बाँदा में अनेक कवियों, समीक्षकों, साहित्यकारों को आमंत्रित कर साहित्यिक मेले जैसा वातावरण देते है।

इसके अतिरिक्त वर्ष १९८१ में हिन्दी संस्थान पुरस्कार उत्तर प्रदेश के द्वारा, वर्ष १९८६

---

१. साक्षात्कार - अगस्त - नवम्बर अंक १९८६, पृ0 १२२

में साहित्य-अकादमी पुरस्कार दिल्ली से, वर्ष १९८६ में ही "तुलसी पुरस्कार" मध्य प्रदेश साहित्य परिषद, भोपाल द्वारा एवं वर्ष ९०-९१ में मैथिली शरण गुप्त पुरस्कार मध्यप्रदेश शासन द्वारा प्रदान किये गये वर्ष १९९० में ही हिन्दी साहित्य-सम्मेलन प्रयाग द्वारा उन्हें 'साहित्य वाचस्पति' की मानद उपाधि से अलंकृत किया गया और वर्ष १९९५ में बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय, झाँसी अपने दीक्षान्त समारोह में उन्हें डी0लिट् की मानद उपाधि से विभूषित किया है ।

कृतित्व :

केदारनाथ अग्रवाल के उन्नीस कविता-संग्रह, दो उपन्यास, तीन निबन्ध-संग्रह, दो अनूदित कविता-संग्रह, एक यात्रा-संस्मरण और एक पत्र-संग्रह, इस प्रकार कुल अब तक अट्ठाईस पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी है । प्रकाशित ग्रन्थों का विवरण निम्न प्रकार है -

कविता संग्रह :१. युग की गंगा (१९४७), २. नींद के बादल (१९४७), ३. लोक और आलोक (१९५७), ४. फूल नही रंग बोलते है (१९६५), ५. आग का आईना (१९७०), ६. बम्बई का रक्त स्नान (१९७५), ७. गुलमेंहदी (१९७८), ८. पंख और पतवार (१९७९), ९. मार प्यार की थापें (१९८१), १०. हे मेरी तुम (१९८१), ११. कहें केदार खरी-खरी (१९८१), १२. अपूर्वा (१९८४), १३. जमुन जल तुम (१९८४), १४. बोले बोल अबोल (१९८५), १५. जो शिलायें तोड़ते है (१९८६), १६. आत्मगंध (१९८८), १७. अनहारी हरियाली (१९९०), १८. खुली आँखें खुले डैने (१९९३), १९. पुष्पदीप (१९९४), २०. वसन्त में हुई प्रसन्न पृथिवी ।

उपन्यास :

१. पतिया (१९८५), २. बैल बाजी मार गये

निबन्ध संग्रह :

१. समय-समय पर (१९७०), २. विचार बोध (१९८०), ३. विवेक विवेचन (१९८१)।

पत्र साहित्य : मित्र सम्वाद (१९९१)

अनूदित साहित्य :

१. रेल भंजको को जगने दो (१९५०)

२. देश-देश की कवितायें (१९७०)

यात्रा संस्मरण :१. बस्ती खिले गुलाबों की (१९७५)

(ख) नागार्जुन : व्यक्तितत्व एवं कृतित्व

जीवन परिचय - नागार्जुन जी को स्वयं ही अपनी जन्मतिथि की प्रमाणिक जानकारी नहीं है। माँ का असमय देहान्त हो जाने से तथा पिता की लापरवाही के कारण, काफी कोशिश करने पर भी सही जानकारी वे न पा सकें । नजदीकी सम्बन्धियों से प्राप्त जानकारी के अनुसार वह अपनी जन्मतिथि जून (ज्येष्ठ माह की पूर्णिमा) सन् १९११ ई० बताते हैं ।

नागार्जुन का जन्म अपने ननिहाल बिहार राज्य के सतसरवा ग्राम जिला मधुवती के मध यमवर्गीय सम्पन्न कुलीन परिवार में हुआ था । इनका पैतृक गाँव तरौनी जिला दरभंगा है । इनके पिता का नाम श्री गोकुल मिश्रा था । वे स्वभाव से बहुत ही लापरवाह, घुमक्कड़, दायित्वहीन और मस्त व्यक्ति थे । नाजार्गुन की माँ का नाम श्रीमती उमा देवी था । वे सीधी-सादी ग्रामीण महिला थीं ।(१) इनके पितामह श्री छत्रमणि मिश्र तथा प्रपितामह श्री पारसमणि मिश्र एक ईमानदार और अल्पपठित व्यक्ति थे । नागार्जुन अपने माता-पिता की छः सन्तानों में से अकेले बचे थे, शेष संताने असमय में कालकवलित हो गयीं थीं । इनका गोत्र 'वत्स' तथा कुल 'शाखा पड़िवाल' है।(२) नागार्जुन को अपनी माँ का स्नेह अधिक दिनों तक नहीं मिल पाया । जब वे मात्र छः वर्ष के थे उनकी माँ का देहान्त हो गया ।

गोकुल मिश्र और उमा देवी की लगातार चार संतानों का असमय देहान्त हो जाने से वे लोग निराशापूर्ण जीवन में रह रहे थे । भगवान वैद्यनाथ की यथाशक्ति उपासना से नागार्जुन पाँचवी संतान के रूप में उन्हें प्राप्त हुए, तो उनके मन में यह आशंका भी पनपी कि चार संतानों की तरह ये भी कुछ समय में ठगकर चल बसेगा। अतः इसे 'ठक्कन' कहा जाने लगा । काफी दिनों के बाद इस ठक्कन का नामकरण हुआ और बाबा वैद्यनाथ की कृपा-प्रसाद मानकर इस बालक का नाम 'वैद्यनाथ मिश्र' रखा गया । यही ठक्कन मिसर उर्फ वैद्यनाथ मिसर आगे वैदेह, यात्री-नागार्जुन और बाबा नामक रचनाकार होते है ।(३)

नागार्जुन का विवाह अठारह वर्ष की अवस्था में १९३२ ई० में कुछ पैसे देकर बारह वर्षीया कन्या अपराजिता के साथ हरिहरपुर गाँव में हुआ था, पर उनकी पत्नी सन् १९३४ में पहली बार गौना होने पर तरौनी आयीं । नागार्जुन का एक भरा-पूरा परिवार है, उनके कुल छः संताने है जिनमे चार बेटे, दो बेटियाँ हैं ।

पिता की असमर्थता के कारण बालक नागार्जुन का पालन-पोषण तो दूर रहा इन्हें सही मार्ग निर्देश भी न मिला । इन्हें बचपन में असहाय बालक के समान विकट गरीबी का सामना करना पड़ा । दारिद्रय को उन्होंने जीवन भर झेला है अपनी इस दरिद्रता का उल्लेख नागार्जुन ने स्वयं

१. नागार्जुन 'जीवन और साहित्य' : डॉ० प्रकाश चन्द्र भट्ट पृ० १९
२. कल के लिये, नागार्जुन अंक-1 : साहित्यिक/वैचारिक त्रैमासिकी वर्ष-3 अंक-12 अक्टूबर-दिसम्बर ९५, पृ०
३. नागार्जुन : मेरे बाबू जी : शोभाकान्त, पृ० १५

ही अनेक स्थानों पर किया है -

''मै दरिद्र हूँ
पुश्त-पुश्त की यह दरिद्रता
कटहल के छिलके जैसी-जीभ से
मेरा लहू चाटती आयी ।''(१)

धनभाव नागार्जुन के विकास-पथ पर सदैव रूकावट डालता रहा । इनकी आरम्भिक शिक्षा गाँव में ही संस्कृत परम्परा में हुयी । उस समय अग्रेजी एवं आधुनिक शिक्षा का प्रचार-प्रसार था, लेकिन गरीबी के कारण उनके पिता उन्हें ऐसी शिक्षा देने में अक्षम थे ।१९२५ ई0 में नागार्जुन ने ''लघुसिद्धान्त कौमुदी'' लेकर संस्कृत पाठशाला से ''प्रथमा'' किया । गाँव की संस्कृत पाठशाला से ''प्रथमा'' उत्तीर्ण करने के उपरान्त गोनौली संस्कृत पाठशाला से व्याकरण में ही ''मध्यमा'' किया। पुन: एक वर्ष तक पचगछिया (सहरसा) में शिक्षा ली । उच्च शिक्षा के लिए संस्कृत अध्ययन के पारम्परिक केन्द्र वाराणसी चले गये । वाराणसी में चार वर्ष तक रहकर साहित्याचार्य की डिग्री ली। उसके बाद एक वर्ष तक कलकत्ते में रहकर काव्यतीर्थ किया । वाराणसी में ही आधुनिक शिक्षा के सम्पर्क से तथा अखबारों और पत्रिकाओं के माध्यम से देश-विदेश के यथार्थ को जानने और समझने का अवसर मिला । बामपंथी विचारधारा में उनकी दिलचस्पी यहीं से बढ़ने लगी जो बाद में कलकत्ता और अन्य स्थानों की भाषाओं से पुष्ट हुई । साहित्याचार्य के बाद उनकी शिक्षा आगे नहीं बढ़ पाई । इसके बाद वे जीवन की वास्तविक शिक्षा लेने हेतु जीवन-संग्राम में कूद पड़े।

नागार्जुन ने काशी निवास के दौरान प्राकृत, मागधी और पालि भाषाओं का भी अध्ययन किया। १९३६ई0 में सिंघलद्वीप श्रीलंका की यात्रा की, जहाँ उन्होने प्रख्यात ''विद्यालंकार परिवेण'' में बौद्ध धर्म की दीक्षा ली और बौद्ध नाम 'नागार्जुन' ग्रहण किया। यहीं से महापण्डित राहुल सांकृत्यायन, भदन्त आनन्द कौशल्यायन और आचार्य जगदीश कश्यप ने भी दीक्षा ग्रहण की थी। यहाँ पर सारा समय अध्ययन और अध्यापन में व्यतीत हुआ ।श्रीलंका में रहते हुए इन्होने सामान्य अंग्रेजी की जानकारी भी प्राप्त की ।

नागार्जुन को संस्कृत, पालि, प्राकृत आदि प्राचीन भारतीय भाषाओं के अतिरिक्त मैथिली, बंगला और हिन्दी, गुजराती आदि आधुनिक भारतीय भाषाओं का पर्याप्त ज्ञान है, वे इन भाषाओं को पढ़ ही नहीं लेते अपितु उनके नवीनतम साहित्य और कविता शैलियों से अपने आपको परिचित भी कराते हैं । डॉ0 प्रभाकर माचवे ने उनकी इस साधना के विषय में लिखा है कि : ''बाबा के पास कल के भोजन के लिए पैसे नहीं है, पर दिल्ली में 'सेन्ट्रल न्यूज एजेन्सी' से दस नयी बंगाली, मराठी, पंजाबी पत्र-पत्रिकाएं खरीद कर ले आ रहे है, ऐसा भी मैने देखा है । ऐसी ज्ञान-साधना

---

१. नागार्जुन : मेरे बाबू जी : शोभाकान्त मिश्र, पृ0 २३

एक शरीर से रोगग्रस्त(बहुत पुराना दमा उन्हे हैं) और निरन्तर चिन्ताकुल व्यक्ति में दुर्लभ पायी जाती है। उनका जीवन अद्‌भुत है।"(१)

सन् १९३८ई0 में नागार्जुन श्रीलंका से वापस आये। घर लौटने पर ब्राह्मण मण्डली द्वारा उन्हें अस्वीकार किया गया। अस्वीकार के तीन मुख्य कारण थे- प्रथम- सन्यास से गृहस्थ जीवन की ओर वापसी, द्वितीय- समुद्र पार की यात्रा और तृतीय- बौद्ध धर्म में दीक्षित होना, किन्तु युवा ब्राह्मणों ने नागर्जुन को अन्ततः स्वीकार कर लिया। (२) सन् १९३८ में ही विहार सरकार की ओर से तिब्बत जाने वाले अनुसंधान कार्यकर्ताओं के प्रतिनिधि मण्डल के साथ तिब्बत की यात्रा की । जहाँ उन्हें महापंडित राहुल सांकृत्यायन का सानिध्य मिला । सन् १९३८ ई0 में ही किसान आंदोलन के नेता स्वामी सहजानन्द और नेताजी सुभाष चन्द्र बोस से सम्पर्क हुआ,इसके साथ ही नागार्जुन देश की राजनीति में हिस्सा लेने लगे। १९३९ई0 में उमवारी (जिला छपरा) में किसानों के संघर्ष का नेतृत्व किया, परिणामस्वरूप छपरा और हजारी बाग के सेन्ट्रल जेल में दस माह की सजा पायी ।

१९४०ई0 में जेल से बाहर आने पर पंजाब-सीमा प्रान्त हिमांचल और पश्चिमी तिब्बत की गुप्त यात्रायें की। १९४१ई0 में उन्हें पुनः गृहस्थाश्रम में प्रवेश के लिये बाध्य किया गया ।जहाँ पिता ने उनको जीविका के लिए स्थायी व्यवस्था करने के लिए प्रेरित किया।१९४२ई0 में वे फरारी हालत में पुनः पंजाब सिन्ध के प्रवास पर चले गये। वहाँ उपाध्याय बालाराम जी महाराज (जैनमुनि) ने अपने साहित्यिक कार्यो के लिये नियुक्त कर लिया ।(३) वहाँ भी उनका मन नहीं रमा। इसी बीच सन् १९४३ में इनके पिता का स्वर्गवास हो गया। गृहस्थी का सम्पूर्ण कार्यभार पत्नी अपराजिता पर आ गया ।

सन् १९४८ ई0 में नागार्जुन द्वारा गाँधीवध पर लिखी कविता शासन द्वारा जब्त कर ली गयी और इन्हें जेल यात्रा भी करनी पड़ी । उन्होने १९५१ ई0 में वर्धा में राष्ट्रभाषा प्रचार समिति में भी कार्य किया तथा १९५२-५३ ई0 में इलाहाबाद की गतिविधियों में सकिय भागीदारी का निर्वाह किया।सन् १९६३ई0 में भारत-चीन युद्ध के पश्चात् उपजी मानसिकता के कारण कम्युनिष्ट पार्टी से अनबन हो गयी। सन् १९७१ई0 में वे रूस के आमंत्रण पर रूस की यात्रा पर गये। सन्१९७४में जयप्रकाश नारायण के आंदोलन में समग्र क्रांति के सिपाही बने और जेल की यात्रा की।(४)

इस प्रकार विभिन्न प्रकार की कठिनाइयों को झेलते हुए भी उन्होने साहित्य-सेवा के अतिरिक्त कोई दूसरा विकल्प नहीं चुना । स्वतंत्र लेखन से जो कमाई होती थी, वही उनकी जीविका का मूल आधार रहा है। कुछ दिनों इन्होंने प्रकाशन का धंधा भी किया किन्तु सफलता न मिल सकी।

---

१. आज के लोकप्रिय हिन्दी कवि 'नागार्जुन' : सम्पादक डॉ0 प्रभाकर माचवे, पृ0 ४-५
2. कल के लिए 'नागार्जुन' अंक-१ साहित्यिक/वैचारिकी त्रैमासिकी वर्ष-३ अंक-१२ अक्टूबर-दिसम्बर ९५,पृ0 ६
३. नागार्जुन जीवन और साहित्य : डा0 प्रकाश चन्द्र भट्ट पृ0 २६-२७
४. कल के लिए:नागार्जुन अंक-१,साहित्यिक/वैचारिक त्रैमासिकी वर्ष-३, अंक-१२ अक्टूबर-दिसम्बर९५पृ0 ६

नागार्जुन का सम्बन्ध संस्कृत, पालि, प्राकृत प्राचीन भारतीय भाषाओं से रहा है। इन भाषाओं के कवियों ने इन्हें साहित्य-सृजन की ओर प्रेरित किया । इसके अतिरिक्त नागार्जुन के कवि व्यक्तितत्व ने जहाँ से रस ग्रहण किया वे हैं- परिवार, प्रकृति, विशिष्ट व्यक्तियों से सम्पर्क, सामाजिक-राजनीतिक परिस्थितियाँ प्रगतिशील आन्दोलन इत्यादि ।

नागार्जुन का दृष्टिकोण मुख्यत: दो रूपों में दिखाई देता है। पहला समाज के प्रति, दूसरा साहित्य के प्रति। साधारणतया नागार्जुन समाज को मार्क्सवादी दृष्टिकोण से देखते हैं। आज के वर्ग विभक्त समाज में व्याप्त शोषण व उत्पीडन से उनका हृदय क्षुब्ध है। वे समाज में आमूल परिवर्तन चाहते हैं और उसके स्थान पर साम्यवादी समाज की रचना का स्वप्न देखते हैं वे सामाजिक कार्यकर्ता की तरह खुलकर घोषण करते हैं कि ''शोषक और तानाशाही शक्तियों के खिलाफ जनमत तैयार करना मेरा पहला काम हो जाता है।''(१)समाज में व्याप्त अंधविश्वासों और धार्मिक रूढियों का नागार्जुन मखौल उडाते हैं । वे मूर्तिपूजा और भगवान की काल्पनिक सत्ता के प्रति नकारात्मक दृष्ठिकोण अपनाते हैं, 'बाबा बटेसरनाथ' के रूप में इन्होने दकियानूसी विचारों और जर्जर परम्पराओं का खुलकर विरोध किया है।(२)उनकी दृष्टि में स्वस्थ विवेकशील व्यक्ति ही समाज का भला कर सकते हैं। वे सुखी जन-जीवन के लिए बुद्धि और वैभव दोनों की संतुलित समायोजना चाहते है-

''बुद्धि और वैभव यदि साथ रहेंगे
जन-जीवन का यान तभी आगे निकलेगा।'(३)

नागार्जुन साहित्य के प्रति किसी तटस्थ दृष्टि के पक्षपाती नही है । उनकी समझ में प्रत्येक साहित्यकार को पक्षधर की भूमिका का निर्वाह करना चाहिए । समाज के कमजोर वर्ग अर्थात सर्वहारा की तारीफ में लिखा गया साहित्य ही सच्चा साहित्य हो सकता है। वे साहित्यकार की कोरी भावुकता पर विश्वास नहीं करते क्योंकि साहित्कार किसी आलौकिक जगत का प्राणी न होकर इसी समाज का प्राणी है ।

राजनीति और साहित्य के विषय में नागार्जुन का स्पष्ट मत है कि आज के युग में जबकि जीवन राजनीति से ओतप्रोत है तब साहित्य को उसके प्रभाव से कैसे अलग रख सकते है। इनका अधिकांश साहित्य राजनीतिक उथल-पुथल की ही साहित्यिक अभिव्यक्ति है। कोई राजनीति घटना उनकी कलम से छूट नही पाती है। वे स्वयं भी राजनीति में सक्रिय भाग लेते है तथा सदैव सर्वहारा के कल्याण के लिये संघर्षशील रहे है।

डॉ० प्रकाशचन्द्र भट्ट के इन शब्दों में नागार्जुन की आकृति एवं प्रवृत्ति सम्बन्धी अनेक विशेषताएं एक साथ प्रकट हो रहीं है - ''दुबला-पतला शरीर, मोटे खद्दर का कुर्ता पैजामा, मझोला

१. हिन्दी के राजनीतिक उपन्यासों का अनुशीलन :डॉ0 ब्रजभूषण सिंह 'आदर्श' पृ0 ४०६
२. बाबा वटेसरनाथ :नागार्जुन, पृ0 ५२
३. तालाब की मछलियाँ : नागार्जुन पृ0 ११६

कद, आँखों पर ऐनक, पैरों में चप्पलें, चेहरे पर उत्साह और पीड़ित वर्ग के प्रति व्यथा की मिली-जुली प्रतिक्रिया के भाव-यही नागार्जुन है।(१) प्रथम साक्षात्कार से ही नागार्जुन परिचित से लगते है । इनकी हास्य-व्यंग्य मिश्रित बातचीत का तरीका सहज ही मन को मोह लेता है। अपने घुमक्कड़ स्वभाव के कारण ही उन्होने मैथिली में 'यात्री' नाम स्वीकार किया हैं। पर उनकी यात्रायें निरूद्देश्य नहीं होती हैं। 'कुम्भीपाक' के राय साहब के चोले में इस बात की पुष्टि नागार्जुन का यह कथन करता है - ''मै बहुत घूमा-फिरा हूँ सभी प्रान्तों के स्त्री पुरूष देखे हैं, उनके बीच रहने का अवसर मिला हैं, बार-बार बातें की है, सुख-दुख में उनके मूड मालूम किये हैं ।'' (२)नागार्जुन का भरा पूरा परिवार है, चार पुत्र दो पुत्रियाँ हैं । उनकी आर्थिक स्थिति इतनी जीर्ण-शीर्ण थी कि चाहते हुए भी वे परिवार को सुदृढ़ व्यवस्था नहीं दे पाये। फिर भी उन्होने कभी किसी के सामने आत्मसमर्पण नहीं किया। उनका व्यवहार हमेश विवेक द्वारा संचालित होता रहा है। यही कारण है कि उन्होंने बिना किसी लोभ के निर्भीकता पूर्वक युग के अत्याचारों के विरूद्ध आक्रोश व्यक्त किया है और देश के एवं समाज के जिम्मेदार लोगों को खरी-खोटी बातें सुनाने से भी नहीं डरे। पीड़ित और उपेक्षित जन समुदाय के प्रति आत्मीयता नागार्जुन का विशेष गुण सदैव रहा है। बचपन से ही उन्हें रूढ़ियों, आडम्बरों और विषमताओं से टकराने की आदत रही है। ये सदैव असहाय, पद दलित और गरीब लोगों के साथ रहे हैं। उनकी यह विशेषता है कि उन्होंने जिन मानवीय मूल्यों को महत्वपूर्ण माना है उन्हे अपने आचरण में भी उतारा हैं। जाति-पाँति और छुआछूत जैसी सामाजिक बुराइयों से नागार्जुन को बहुत घृणा रही है उन्होंने इन भेदभावों को कभी अपने जीवन में नही माना है। वे निश्च्छल भाव से हर जाति के लोगों के साथ उठते-बैठते हैं ।

नागार्जुन के स्वभाव में एक खास बात यह है कि वह अत्यन्त भावुक और साफ सुथरे हृदय के व्यक्ति हैं। जब वे किसी की बुराई करने बैठते है तो वह दूसरो की ही बुराई नहीं करते, अपितु अपनी, अपने परिवार की कमजोरियों को उछाल-उछालकर सामने रख देते हैं। वे अपनी प्रतिष्ठा हनन से नही डरते हैं। नागार्जुन का जीवन प्रारम्भ से ही संघर्षपूर्ण रहा है इसी कारण विद्रोह की भावना उनमें कूट-कूटकर भरी है। इसी कारण उन्होनें किसान आन्दोलन का नेतृत्व किया और जेल भी गये। द्वितीय विश्वयुद्ध के समय कुछ विरोधी परिपत्र छपवाने और उन्हें बेचने के आरोप में कई महीने जेल में रहना पड़ा । नागार्जुन काफी समय तक कम्युनिष्ट पार्टी के सक्रिय सदस्य रहे हैं । लेकिन सन् १९६२ में चीनी आक्रमण के समय उन्होंने चीन विरोधी जो तीखी कविताएं लिखी उन्हें लेकर पार्टी के नेताओं के साथ अनबन हो गयी । अत: उन्हें पार्टी से अलग होना पड़ा परन्तु इसकी उन्हें फिक्र नही है वे सबसे पहले अपने देश की जनता के प्रति वफादार है उसके बाद किसी पार्टी के बारे में सोचा जा सकता है ।

१. नागार्जुन : जीवन और साहित्य, डॉ० प्रकाशचन्द्र भट्ट, पृ० ३८

२. कुम्भीपाक : नागार्जुन पृ० १३१

राजनीतिक अस्थिरता के युग में नागार्जुन किसी पार्टी से एकनिष्ट भाव से जुड़े नही रहे, किन्तु राजनीतिक दृष्टि से निष्क्रिय हो गये हों, यह बात भी नही रहीं । जहाँ कभी भी तानाशाही शक्तियों का जोर दिखायी पड़ा उससे टकराने के लिए मैदान में कूद पड़े । नागार्जुन के व्यंग्य का निशाना बनने से शायद ही कोई नेता बचा हो ।

नागार्जुन के साहित्य को उनके व्यक्तित्व से अलग नहीं किया जा सकता है । उनका व्यक्तित्व और साहित्य एक दूसरे में अन्तर्भूत हो गये है । एक साहित्यकार की हैसियत से उन्होंने विपुल साहित्य सृजन किया है । साहित्य की विपुल विधाओं में उनकी सहज गति देखी जा सकती है । पर काव्य-जगत में जो हलचल नागार्जुन के कारण मची है, वह उन्हें अन्य साहित्यकारों से अलग कर देती हैं । वे अपने तरह के अकेले ही कवि हैं, जिसने बिना किसी लागलपेट के निर्भीकता के साथ अपनी अन्तर्ध्वनियों को सीधे-सीधे अभिव्यक्त किया है चाहे इसके कारण उन्हें कितना भी कष्ट क्यों न उठाना पड़ा हो । उन्होंने अपने भोगे हुए सत्य को ही अंकित किया है । जीवन के संघर्ष से ही उनके साहित्य की कोपलें फूटीं हैं ।

नागार्जुन के साहित्य में मार्क्सवादी विचारधारा व्याप्त है, पर उनके दृष्टिकोण में निरन्तर परिष्कार होता गया है जैसा कि डॉ० प्रभाकर माचवे ने उल्लेख किया है ''उनके सारे रचना संसार में अन्त:सूत्र की तरह क्लासिकी मार्क्सवादी अवश्य मौजूद हैं । यह भी उनके बौद्ध-दर्शन के अध्ययन संस्कारों के कारण करूणा, मैत्री और शान्तिप्रियता की मानवतावादी अन्त:धारा से बराबर जीवन्त बनता रहा है ।(१)

नागार्जुन के जीवन का एक-एक क्षण साहित्य के नाम पर समर्पित है । उनके साहित्य का एक-एक शब्द जनता के दुखों और द्वन्दों की अनुगूँज है, जिसे उन्होने जन-सागर में गहराई में जाकर प्राप्त किया है । डॉ० कृष्णलाल हंस (२), उमेशचन्द्र मिश्र (३),तथा डॉ० कमला प्रसाद पाण्डेय (४)उन्हें प्रगतिवादी खेमे के प्रतिनिधि कवि के रूप में मान्यता देते हैं । जब नागार्जुन को 'दूसरा सप्तक' में सहयोगी कवि बनने के लिए आमंत्रित किया गया तो उन्होंने दो टूक शब्दों में सहयोग देने से इंकार कर दिया ।(५) डॉ० कान्तिकुमार ने यद्यपि यह स्वीकार किया है कि प्रगतिवादी काव्य के स्वरूप निर्धारण में नागार्जुन का स्थान अन्यतम है पर उन्हें धीरे से 'नयी कविता के पुराने कवि' की श्रेणी में खींच ले जाते हैं । डॉ० हरिचरन शर्मा ने भी अपनी पुस्तक 'नये प्रतिनिधि-कवि' में नागार्जुन को पहला स्थान दिया है ।(६) नागार्जुन का व्यक्तित्व इतना निराला है कि पूरी तरह से किसी बाद के संकीर्ण घेरे मे समा नही सकता है ।

---

१. आज के लोकप्रिय हिन्दी कवि नागार्जुन : सं० डॉ० प्रभाकर माचवे, पृ० ०७
२. प्रगतिवादी काव्य साहित्य - डॉ० कृष्णलाल हंस पृ० ७१
३. प्रगतिवादी काव्य - उमेशचन्द्र मिश्र पृ० १६८
४. छायावादोत्तर हिन्दी कविता की सामाजिक और सांस्कृतिक पृष्ठभूमि : डॉ० कमला प्रसाद पाण्डेय पृ० १५४
५. केदार - व्यक्तित्व एवं कृतित्व : सं० श्री प्रकाश पृ० ५६
६. नये प्रतिनिधि कवि (तलाशे हुए मूल्य) : डॉ० हरिचरण शर्मा पृ० ७

नागार्जुन जी को अपनी साहित्यिक रचनाओं के लिए अनेक पुरस्कार मिले है -

१. १९६९ ई० में 'पत्रहीन नग्नगाछ' पर साहित्य अकादमी का पुरस्कार दिया गया और इसी के तहत १९७१ में रूस भ्रमण के लिए भी आमंत्रण मिला और वह वहाँ गये भी ।

२. जून १९८२ ई० में बिहार सरकार द्वारा राजेन्द्र शिखर सम्मान पुरस्कार ।

३. मई १९८३ ई० में श्रीमती इंदिरा गाँधी के हाथों उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान का पुरस्कार ।

४. २३ जनवरी १९९० में दिल्ली में उत्तर प्रदेश सरकार द्वारा 'भारत भारती' पुरस्कार प्रदान किया गया । इसी अवसर पर उत्तर प्रदेश के शिक्षा मंत्री श्री सच्चिदानन्द बाजपेयी ने नागार्जुन को एक 'प्रशस्ति पत्र' प्रदान किया।

५. १९९४ ई० में साहित्य अकादमी के सर्वोच्च सम्मान मानद फेलोशिप से अलंकृत ।

नागार्जुन ने साहित्य-सृजन के साथ-साथ प्रकाशन का भी कार्य किया । प्रकाशक बनने के पीछे दो उद्देश्य थे - एक तो साहित्य को स्वनिर्भर बनाना और दूसरा जीविका का निश्चित बन्दोबस्त करना किन्तु वह इस कार्य में सफल न हो सके ।

कृतित्व :-

नागार्जुन के प्रकाशित ग्रन्थों का विवरण निम्न प्रकार है -

काव्य-संग्रह -

१. युगधारा (१९५३), २. सतरंगे पंखों वाली (१९५९), ३. प्यासी पथराई आँखें (१९६२), ४. तालाब की मछलियाँ (१९७५), ५. आज के लोकप्रिय हिन्दी कवि - नागार्जुन (१९७७), ६. खिचड़ी विप्लव देखा हमने (१९८०), ७. तुमने कहा था (१९८०), ८. हजार-हजार बाहों वाली (१९८१), ९. पुरानी जूतियों का कोरस (१९८३) १०. रत्नगर्भ (१९८४), ११. ऐसे भी हम क्या ! ऐसे भी तुम क्या (१९८५)

लघु-काव्य पुस्तिकाऐं -

शपथ (१९४८), चना जोर गरम (१९५२), खून और शोले (१९५६), प्रेत का बयान (१९५७), अब तो बंद करो हे देवि यह चुनाव का प्रहसन (१९७१)

खण्ड-काव्य -

१. भस्मांकुर (१९७०)

आलोचनात्मक साहित्य - एक व्यक्ति : एक युग (१९६३)

अनुवाद कार्य -

मेघदूत (१९७९), गीत गोविन्द (१९७९), विद्यापति के गीत (१९७९)

इनके अतिरिक्त बंगला, संस्कृत, गुजराती आदि भाषाओं की दर्जनों कृतियों का हिन्दी रूपान्तरण ।

मैथिली काव्य-संग्रह -

चित्रा (१९४९), पत्रहीन नग्नगाछ (१९६७)

मैथिली उपन्यास

पारो, बलचनमा, नवतुरिया

संस्कृत काव्य -

देश दशकम्, कृषक दशकम, श्रमिक दशकम

बाल साहित्य -

मर्यादा पुरूषोत्तम (१९५७), प्रेमचन्द, तीन अहदी (१९७९), सयानी कोयल (१९८०), आसमान में चन्दा तैरे (१९८२)

हिन्दी-उपन्यास -

रतिनाथ की चाची (१९४९), वलचनमा (१९५२), बाबा बटेसर नाथ (१९५४), वरूण के बेटे (१९५७), दुखमोचन (१९५७), नई पौध (१९५७), कुम्भीपाक (१९६०), हीरक जयन्ती (१९६२), उग्रतारा (१९६३), इमरतिया (१९६८), पारो (१९७५) ।

सम्पादन -

१. १९३५ ई० में पंजाब से प्रकाशित "दीपक" का संपादन ।

२. लाहौर से प्रकाशित साप्ताहिक "विश्वबन्धु" का संपादन ।

३. १९४२-४३ में हैदराबाद से प्रकाशित "कौमीबोली" का संपादन ।

शोध प्रबन्ध पूर्ण होते-होते श्री नागार्जुन जी के निधन के समाचार से साहित्यिक-जगत के साथ-साथ सारा राष्ट्र शोक में डूब गया । दिनांक 05 नवम्बर 1998 को उनका निधन हुआ और उनके पैतृक गाँव तरौनी मे उनका अन्तिम संस्कार किया गया । दूरदर्शन, रेडियो, समाचार पत्रों एवं अनेक साहित्यिक पत्रिकाओं ने उनके व्यक्तितत्व और कृतित्व को याद करते हुए उन्हें अपनी भावभीनी श्रद्धाजंलि अर्पित की । मैं परमात्मा से उनकी आत्मा की मुक्ति हेतु प्रार्थना करती हूँ और उनके परिवार के प्रति शोक संवेदना प्रकट करती हूँ ।

(ग) त्रिलोचन : व्यक्तित्व एवं कृतित्व

जीवन परिचय - त्रिलोचन शास्त्री का जन्म आश्विन भद्रपद शुक्ल तृतीया सोमवार विक्रम संवत १९७४ तद्नुसार २० अगस्त १९१७ ई० में उत्तर प्रदेश के सुल्तानपुर जनपद के चिरानी पट्टी, कटघरा पट्टी ग्राम में हुआ । इनके पिता का नाम श्री जगरदेव सिंह तथा माता का नाम श्रीमती मनवताँ देवी था । इनकी ग्रामीण शिक्षा दोस्तपुर में और उच्च शिक्षा बनारस में हुई । उन्होंने हिन्दू विश्वविद्यालय से एम०ए० (अग्रेजी) पूर्वार्द्ध तक अध्ययन किया ।

आपने १९३० से १९३५ तक अध्यापकीय जीवन व्यतीत किया और पत्रकारिता भी की। १९३९ से १९४१ के मध्य इन्होंने बनारस की मासिक पत्रिका 'कहानी' का सम्पादन किया । १९४३ से १९४६ तक 'हंस' के भी आप सम्पादक रहे । १९४६ से १९५० तक 'चित्ररेखा' मासिक पत्रिका के सहायक सम्पादक रहे ओर 'ज्ञान मण्डल मंत्रालय' से वृहत हिन्दी कोश के सम्पादन में भी योगदान दिया । १९५२ से १९५३ तक 'गणेशराय इण्टर कालेज' में अग्रेजी के प्राध्यापक पद पर कार्य करते रहे । वे १९५३ से १९५४ तक 'हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग' से प्रकाशित होने वाले 'हिन्दी-अंग्रेजी मानक-कोश' का सम्पादन करते रहे और १९५४ से १९५९ तक 'हिन्दी शब्द सागर' के सम्पादन में संलग्न रहे । शास्त्री जी १९५९ में 'राची राष्ट्रीय प्रेस' में मैनेजर रहे । १९६० से १९६७ तक 'हिन्दी शब्द सागर' के संशोधित एवं परिवर्धित संस्करण में संलग्न रहे । १९६८ से १९७२ तक विदेशी छात्रों को संस्कृत, हिन्दी एवं उर्दू की शिक्षा दी तथा १९७२ से १९७५ तक 'जनवार्ता' दैनिक के सहायक सम्पादक रहे। १९७५ से १९७८ तक इन्होंने 'हिन्दी ग्रन्थ अकादमी भोपाल के भाषा सम्पादक के रूप में कार्य किया । १९७८ से १० मार्च १९८४ तक आपने दिल्ली विश्वविद्यालय के उर्दू विभाग में 'उर्दू-हिन्दी द्वैमासिक कोश' का सम्पादन किया और २८ मार्च १९८४ से २८ जुलाई १९९० तक डॉ० हरिसिंह गौर विश्वविद्यालय सागर के "मुक्तिबोध सृजन पीठ" में अध्यक्ष रहे। ११ नवम्बर १९९२ से ३१ मई १९९२ तक अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय में हिन्दी-विभाग में बिजिटिंग प्रोफेसर के रूप में कार्य किया । इसके पश्चात १९९२ से अगस्त १९९५ तक दिल्ली विश्वविद्यालय के उर्दू विभाग द्वारा निर्माणाधीन 'फारसी-हिन्दी' कोश में कार्यरत रहे ।अब पुनः २८ दिसम्बर १९९५ से आज तक डॉ० हरिसिंह गौर विश्वविद्यालय सागर के "मुक्तिबोध सृजन पीठ" में अध्यक्ष पद को सुशोभित कर रहे हैं । इस प्रकार आपका कार्यक्षेत्र बहुत व्यापक रहा है ।

त्रिलोचन जी का मूलनाम वासुदेव सिंह है जो घर वालों द्वारा दिया गया है । त्रिलोचन नाम गाँव के संस्कृत गुरू श्री देवदत्त ने दिया था । इस प्रकार शास्त्री की उपाधि और त्रिलोचन के साहित्यिक नाम से जुड़कर वे त्रिलोचन शास्त्री हो गये । आपके दादा श्री बलिराज सिंह और दादी श्रीमती रजासी (राज्यश्री) थीं । त्रिलोचन की दादी एवं उनके पिता उनको पढ़ाने के पक्ष में थे किन्तु उनकी स्नेहमयी माता यह कभी नही चाहती थी कि पढ़-लिखकर उनका भविष्य बिगड़

जाय, वह चाहती थीं कि वासुदेव घर सम्भालना सीख ले और भविष्य के कटु जीवन के लायक बने । वह उन्हें फौलाद की तरह मजबूत एवं शक्तिमान बनाना चाहती थीं । उनके पिता श्री जगरदेव सिंह की लम्बाई ७ फिट ३ इंच थी, वे भी हृष्ट-पुष्ट शरीर के थे । जबकि माँ छोटे कद की थी । इनके दो बड़ी बहनें मर्यादा, नन्हका एक छोटी बहन उरेहा थी तथा दो बड़े भाई रामसरन सिंह ओर रामफेर सिंह (जिनका असमय ही निधन हो गया था) एक छोटे भाई भगवती सहाय वर्मा थे ।

त्रिलोचन का विवाह श्रीमती जयमूर्ति देवी के साथ ११ वर्ष की उम्र में हुआ था । पत्नी बड़ी सात्विक एवं दृढ़ स्वभाव की ग्राम्या हैं । यद्यपि वे पढ़ी लिखी नही हैं, पर बहुत गुणवती देवी है । इस कारण त्रिलोचन जी पर उनका अच्छा नियंत्रण है । इनके दो पुत्र हैं- डॉ जय प्रकाश सिंह (पुत्रवधु-ऊषा, जोरहट, आंसाम, पौत्री-गायत्री, मृगांका, पौत्र-रिपुजय सिंह) और श्री अमित प्रकाश सिंह (पुत्रवधु-ज्वालापुर हरद्वार पौत्र-अद्रीश, पौत्री-पंखुडी) है ।

जीविका के लिए ये कई वर्ष बाहर रहे और जब काशी में उन्हें सम्पादक का कार्य मिल गया तो, वे १९३९ के लगभग सपत्नीक काशी में ही रहने लगे । इनका दाम्पत्य जीवन आदर्श था । इनके जीवन के विकास में पत्नी का महत्वपूर्ण स्थान रहा है । इनके घुमक्कड़ एवं फक्कड़ स्वभाव के कारण कभी इनकी पत्नी संतुष्ट नही रहती थीं । इनके कविता लिखने पर इनकी पत्नी बिगड़ती थी, क्योंकि वह सोंचती थी कि इससे समय का अपव्यय होता है । आर्थिक अभाव में भी दोनो पति-पत्नी सुखी रहते थे । इनका दाम्पत्य जीवन अधूरा रहा, क्योकि इनकी पत्नी जयमूर्ति देवी असमय में स्वर्गवासिनी हो चुकी है (निधन- 'सागर में १९ दिसम्बर १९८८)। अत: जीवन का बहुत बड़ा अभाव इनके समक्ष है फिर भी इस अभाव को इन्होंने अपने कृतित्व के समक्ष आड़े आने नहीं दिया । यद्यपि आपके सुशिक्षित पुत्र भी हैं किन्तु स्वतंत्र चेता त्रिलोचन अपने में स्वतंत्र है। उनका अखण्ड व्यक्तित्व साहित्य-साधना में संलग्न है। यद्यपि त्रिलोचन को लोक कवि के रूप में ही अधिक जानते है, परन्तु ये कविता के अतिरिक्त कहानियाँ, उपन्यास, गद्य, गीत, निबन्ध और समीक्षा जैसी विधाओं में भी सक्रिय रहे हैं । इनके स्वभाव के विषय में एक आलोचक का कथन है - ''सदा सौम्य निष्कपट और सहज लगने वाले त्रिलोचन भीतर से अपनी कविता की तरह गहरें है और अपनी कविता की तरह ही ये आपके ऊपर बड़ा गहरा और अमिट संस्कार छोड़ते हैं ।''(१)

त्रिलोचन को काव्य रचना की मुख्य प्रेरणा कहाँ से मिली यह कहना कठिन है । ''उनके बचपन के गुरू पिता जी के मित्र स्वामी जी के साहचर्य, प्रभुकृपा ने ही उनमें काव्य-रूचि का बीजारोपण किया । काव्य-संस्कार परम्परा से मिला है यह मानना भी कठिन है क्योंकि माँ-बाप दोनो ही अनपढ़ थे ।''(२) त्रिलोचन की दादी इन्हें विद्वान बनाना चाहती थीं । बचपन से ही इनमें कवित्व

१. ऋतुगंध पत्रिका, राधाबल्लभ त्रिपाठी, १९८९-९० अंक-९ पृ० ९
२. त्रिलोचन के काव्य, राजू एम० फिलिप पृ० ३७

का बीजारोपण था और १९३९ तक कवि रूप में इनकी विशेष ख्याति हो गयी । इन्होने अनेक खण्डकाव्य लिखे जो मित्रों के पास पड़े हैं और २०० कहानियाँ लिखी है । इनके पाँच नाटक और पाँच एकांकी भी है । इन्होंने बाल साहित्य भी पर्याप्त मात्रा में लिखा है जो अप्रकाशित है । इन्होंने गजलें, रूबाइयाँ, और सानेट लिखकर हिन्दी के लिये एक नया कार्य किया । प्रारम्भ में इन पर छायावादी काव्य शैली का प्रभाव था किन्तु आगे चलकर प्रगतिवादी हुए । इनका प्रगतिशील व्यक्तित्व किसी वाद विशेष से समझौता नही कर सकता । इस प्रकार इन्होंने निरन्तर समकालीन बने रहने की क्षमता विकसित की ।

त्रिलोचन जी ने हिन्दी में 'शैक्सपियर' की शैली के आधार पर अनेक 'सानेट' लिखे है । इसमें उनकी प्रवृत्ति सन् १९३४ से जागृत हुयी थी । त्रिलोचन के काव्य के विषय में "ऋतुगन्ध" के सम्पादक 'अशोक गुप्त' का मत है - 'त्रिलोचन का काव्य सबका अपना आकाश है, सबकी अपनी धरती है, इसमें गुलाब और बुलबुल है, दिगंत और अरधान है, ताप के ताए हुए दिन है, तो चैती भी । उसमें कुछ कहनी है, कुछ करनी है तो कुछ अनकहनी भी । उनके यहाँ काव्यरूप की विवधता है, गीत, गजल, रूबायी, सानेट, काव्य, नाटक, प्रबन्ध, कविता अनेक काव्यरूपों का इस्तेमाल करते हुए त्रिलोचन शब्द के जादूगर नहीं, किसी जनपदीय कवि की निजता और स्वर वैशिष्ट्य का उदाहरण बनते है, पर सीमित नहीं । वे कटघरे के कवि नहीं है, इसलिए सम्प्रेषण की समस्या से उनका कोई सरोकार नहीं । अत्यन्त सहज, अर्थयुक्त त्रिलोचन का काव्य मानवीय अनुभूतियों का फिराया हुआ पर संघनित रूप है । मुक्तिबोध की माने तो त्रिलोचन की वाणी का बोध उनके हृदय की व्यथा नहीं है, यह अमर मानवता की पुकार है ।"(१) त्रिलोचन उस बिन्दु से बोलते हैं जो कालातीत है पर काल को अपने में समेटे हुए ।

त्रिलोचन बड़े ही ईमानदार और संघर्षशील कवि है । उनके विषय में एक आलोचक का विचार है कि जिस युग में राजनीति से लेकर साहित्य तक में ईमानदारी दुर्लभ है, इस युग में यह कवि अपनी रचनात्मक ईमानदारी की लौ जलाये चल रहा है, कठिन से कठिन परिस्थितियाँ उसे प्रकम्पित नहीं कर पातीं तो इसका कारण यह है कि यह केवल रचना के शब्दों की सतह तक सायास प्रकट ईमानदारी ही नहीं, बल्कि यह ईमानदारी रचना में सीधे जीवन से आयी है । वास्तव में ईमानदारी कवि का जीवन दर्शन है जो उसे जीवन से भी अधिक प्रिय है । उनका धैर्यशाली गंभीर व्यक्तित्व संघर्ष का अथक पुजारी है । इस संघर्ष में उनका व्यक्तित्व पूरी तरह खरा उतरता है । वे संघर्ष में भी नैतिकता को नही भूलते ।

इस प्रकार उनके जीवन दर्शन को दो बातों ने विशेष प्रभावित किया है । प्रथम है सामाजिक लक्ष्य के प्रति ईमानदारी और दूसरा है नैतिकतामूलक चिंतनधारा । वे संघर्षो में घुटने नहीं

---

१. ऋतुगंध, २ अक्टूबर १९८९ सम्पादकीय पृ० ९

टेकते अपितु उसे पराजित करते है । जीवन की विजय के प्रति उनकी आस्था है । अपनी इस बात को उन्होंने अपने ग्रंथों मे यथा स्थान व्यक्त किया है । अन्य प्रगतिशील कवियों की भाँति समकालीन जीवन की कुरूपताओं ओर विसंगतियों पर ही अधिक बल नही देते अपितु ये मानवीय संवेदन के कवि है और उसी की प्रभावपूर्ण व्यंजना करना उन्हें अधिक रूचिकर लगता है । वह नारेबाजी पर विश्वास नहीं करते, वे मानव मात्र को इतना शक्तिशाली और प्रबुद्ध बना देना चाहते है कि वह स्वत: क्रान्तिकारी बन जायें । यदि स्पष्ट शब्दों में कहा जाये तो हिन्दी कविता में जिस प्रकार जीवन-संघर्ष और जीवन-सौन्दर्य निराला के साहित्य में है लगभग उसी प्रकार का चित्रण त्रिलोचन की काव्य रचनाओं में पाया जाता है । छायावाद के प्रभावों से मुक्त होकर उन्होंने प्रगतिशील -धारा में मानवीय गुणों तथा लोक-जीवन को प्रतिष्ठित करने का प्रयत्न किया । कविवर केदारनाथ सिंह ने उन्हें विषमधारा का कवि माना है और उनके रचनात्मक व्यक्तित्व में विचित्र विरोधाभास भी देखा है "एक ओर यदि उनके यहाँ गाँव की धरती का ऊबड़-खाबड़पन दिखायी पड़ेगा तो दूसरी ओर कला की दृष्टि से एक अद्भुत क्लासिकी कसाव या अनुपालन भी । सृजनात्मक अनुशासन का सबसे विलक्षण और रंगारंग रूप उनके सानेटों में दिखायी पड़ता है । शब्दों की जैसी मितव्ययता और शिल्पगत कसाव उनके सानेटों में मिलता है वैसा निराला को छोड़कर आधुनिक हिन्दी कविता में अन्यत्र दुर्लभ है ।"(१)

त्रिलोचन की कविताएं अन्य प्रगतिशील कवियों की भाँति कोरा सामाजिक यथार्थ ही नहीं व्यक्त करतीं, अपितु समाज की जीवनी शक्ति को पहचानती है और उसके मूलस्रोत को अन्तस्तल मे जाकर पहचानती है । वे लोक-जीवन से सम्बद्ध धरती के कवि है ।

वे प्रकृति के सुन्दर और माँसल रूप के पुजारी है, चमत्कार उनकी विशेषता है उनमें आधुनिकतावाद की विसंगतियाँ नहीं है । ये प्रकृति को उपदेशक के रूप में भी देखते है । इस प्रकार त्रिलोचन का व्यक्तित्व अनूठा है और उनके उसी अखण्ड व्यक्तित्व का निर्दशन बन गया है । वे लोकभाषा, लोकजीवन और लोकानुभव को प्रबल आश्रय देते है । अत: हम कह सकते है कि प्रगतिशील काव्यधारा में त्रिलोचन अपने ढ़ग के अकेले कवि है ।

त्रिलोचन जी को अपनी साहित्यिक रचनाओं के लिए अनेक पुरस्कार प्राप्त हुए -

१. १९८१ में साहित्य अकादमी से 'ताप के ताए हुए दिन' पर पुरस्कार प्राप्त हुआ ।

२. १९८३-८४ में उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान द्वारा 'दिगंत' और 'गुलाब और बुलबुल' इन पुस्तकों पर सम्मान पुरस्कार प्राप्त हुआ ।

३. ९ फरवरी १९९० में मध्य प्रदेश शासन द्वारा 'मैथिली शरण गुप्त' सम्मान पुरस्कार प्राप्त हुआ।

४. १९८९-९० हिन्दी अकादमी द्वारा दिल्ली का शलाका सम्मान प्राप्त हुआ (मार्च १९९२ में प्रदत्त)

---

१. त्रिलोचन, प्रतिनिधि कविताऐं पृ० ६

कृतित्व -

काव्य-संग्रह

१. धरती : (१९४५)

२. गुलाब और बुलबुल : (१९५६)

३. दिगन्त : (जनवरी १९५७)

४. ताप के ताए हुए दिन : (१९८०)

५. शब्द : (१९८०)

६. उस जनपद का कवि हूँ : (१९८१)

७. अरधान : (१९८३)

८. तुम्हें सौंपता हूँ (१९८५)

९. फूल नाम है एक : (१९८५)

१०. अनकहनी भी कुछ कहनी है : (१९८५)

११. प्रतिनिधि कविताएं (त्रिलोचन) : (१९८५) सम्पादक - केदारनाथ सिंह

१२. सबका अपना आकाश : (१९८७)

१३. चैती : (१९८७)

१४. अमोला : (१९९०)

काव्येतर-साहित्य

१. रोजानामचा (डायरी) : (१९९३)

२. देशकाल (कहानी संग्रह)(१९८६)

2 आलोच्य कवियों की सौन्दर्य-दृष्टि

केदार, नागार्जुन और त्रिलोचन की आरम्भिक काव्य-यात्रा में छायावादी सौन्दर्य दृष्टि का प्रभाव दिखाई देता है । केदार के 'नींद के बादल' काव्य-संग्रह में संकलित अनेक कविताओं का स्वर और शिल्प सुमित्रानन्दन पंत्र का अनुगमन करता है । नागार्जुन की 'बादल को घिरते देखा है' - कविता में छायावादी कल्पना की छाया स्पष्ट है । त्रिलोचन मे भी छायावादी काव्य-संस्कार उपस्थित हैं । किन्तु यह प्रभाव अधिक दिनों तक नही रहता । अखिल भारतीय प्रगतिशील लेखक संघ की स्थापना के साथ ही इन कवियों का रूझान मार्क्सवादी जीवन-दर्शन की ओर हो जाता है । परिणामत: इनकी सौन्दर्य दृष्टि में भी उसका असर दिखाई देने लगता है ।

व्यक्तित्व के निर्माण में पारिवारिक और सामाजिक परिस्थितियों का महत्वपूर्ण योगदान होता है । जो कवि जिस परिस्थिति में जन्म लेता है, पलता-बढ़ता है, उसी के अनुरूप उसकी मानसिकता भी आकार लेती है। इसमें कोई सन्देह नही है कि केदार का जीवन नागार्जुन और त्रिलोचन की अपेक्षा अधिक सुख-सुविधा सम्पन्न वातावरण में बीता और इसीलिये केदार की दृष्टि में रूमानियत का समावेश तुलनात्मक रूप से अधिक है । नागार्जुन और त्रिलोचन की रूमानियत भिन्न प्रकार की है । वहाँ सामाजिक और नैतिक प्रतिबन्धों का दबाव साफ दिखाई देता है ।

केदार, नागार्जुन और त्रिलोचन का व्यक्तित्व एवं कृतित्व प्रधानत: मार्क्सवादी सौन्दर्य चेतना से अनुप्रमाणित है । किन्तु इस दृष्टि का विकास जहाँ केदार में सैद्धान्तिक स्तर पर अधिक हुआ है, वहाँ नागार्जुन और त्रिलोचन ने यह दृष्टि अपने जीवन-संघर्ष से प्राप्त की है । केदार में मार्क्सवादी सौन्दर्य दृष्टि का उन्मेष पुस्तकीय ज्ञान से हुआ है, जबकि नागार्जुन और त्रिलोचन ने यह दृष्टि जीवन से जूझकर और परिस्थितियों से भिड़कर पाई है । यही कारण है कि केदार की आरम्भिक कविताओं में मार्क्सवादी सिद्धान्तों का प्रतिपादन प्रचार के स्तर पर पहुँच गया है किन्तु नागार्जुन और त्रिलोचन की कविताओं में मार्क्सवाद घटनाओं और क्रियाओं के विशेष सन्दर्भ में प्रस्फुटित हुआ है । स्वभाव से जुझारू होने के कारण नागार्जुन की कविताओं में अभिव्यक्ति का तेवर जितना आक्रामक है, उतना केदार और त्रिलोचन में नहीं है । त्रिलोचन का नैतिकता बोध बड़ी-से-बड़ी चोट को भी संयत तरीके से व्यक्त करने की प्रेरणा देता है ।

आलोच्य कवि मानवीय सौन्दर्य के पुजारी है । मनुष्य ही इनकी दृष्टि में सर्वोपरि है । मनुष्य के अतिरिक्त किसी अन्य पारलौकिक शक्ति पर इन्हें विश्वास नहीं है । इसीलिए मनुष्य की गरिमा और उसके विविध जीवन-प्रसंगों को इन कवियों ने पूरी रूचि के साथ अंकित किया है । मनुष्यों में भी सुविधा-भोगी वर्ग के प्रति इनके मन मे कोई आकर्षण नहीं है । सर्वहारा की अनन्त जीवनी-शक्ति और उसकी उदात्त जीवन-दृष्टि ही उन्हें अधिक लुभाती है । किसान और मजदूरों के शुभ-सम्पुष्ट सौन्दर्य को उसकी भिन्न-भिन्न मुद्राओं में चित्रित किया गया है ।इनकी कविताओं

में दाम्पत्य प्रेम की अकुंठ अभिव्यक्ति हुई है । केदार की आरम्भिक कुछ कविताओं को (जिनमें निर्बन्ध प्रेम की आकांक्षा की गई है) छोड़कर शेष परवर्ती कविताओं में प्रेम को पारिवारिक-सामाजिक पृष्ठभूमि में स्वीकार किया गया है । नागार्जुन को प्रवास का एकान्त जब काटने दौड़ता है, तो उन्हें भी पत्नी का 'सिन्दूर तिलकित भाल' ही याद आता है । त्रिलोचन तुलनात्मक रूप से सामाजिक और नैतिक मूल्यों के प्रति अधिक जागरूक हैं, इसलिए उनकी प्रेम-चर्चा कही भी अमर्यादित नहीं होने पाती ।

आलोच्य कवि प्रकृति के प्रति सहज भाव से आकृष्ट होते है और उसकी सुन्दरता से मुग्ध होकर उसे अपने काव्य का विषय बनाते हैं । प्रकृति के सामान्य रूपों की अपेक्षा इन्हें उसके विशिष्ट रूप अधिक रूचिकर लगते हैं । केदार को बाँदा की केन और टुनटुनिया पहाड़ अपनी ओर खीचतें है, तो नागार्जुन को मिथिलांचल के रूचिर भू-भाग । प्रकृति-चित्रण करते समय भी ये कवि मानव-जीवन के हर्ष-विषाद को नही भूल पाते । फलत: मानव-जीवन के परिपार्श्व में ही इन्होंनें प्रकृति-सौन्दर्य को अधिक उद्घाटित किया है । मानव-निरपेक्ष प्रकृति का चित्रण तुलनात्मक रूप से कम हुआ है ।

केदार और नागार्जुन कविता की विषय-वस्तु के प्रति अपेक्षाकृत अधिक सजग है, शिल्पगत सौन्दर्य इनकी प्राथमिकता नहीं है । रस-छन्द, अलंकार की परम्परागत मान्यताओं से ऊपर उठकर इन्होंने अभिव्यक्ति को अपने ढ़ग से प्रभावपूर्ण बनाने का प्रयास किया है । त्रिलोचन का कथ्य और शिल्प के प्रति समान आदर भाव रहा है । वे कथ्य के साथ-साथ शिल्प को सँवारने में भी सतत जागरूक दिखाई देते हैं । 'सानेट' और 'रूवाई' जैसे शास्त्रीय छन्द-विधान को उन्होंने अपनी स्वीकृति प्रदान की है और हिन्दी में 'सानेट' विधा को मजबूती के साथ स्थापित किया है ।

अध्याय-३
आलोच्य कवियों का वस्तुगत सौन्दर्य

(1) केदार का वस्तुगत-सौन्दर्य-

(क) मानवीय-सौन्दर्य, नारी-सौन्दर्य

(ख) प्रकृति-सौन्दर्य

(2) नागार्जुन का वस्तुगत-सौन्दर्य-

(क) मानवीय-सौन्दर्य, नारी-सौन्दर्य

(ख) प्रकृति-सौन्दर्य

(3) त्रिलोचन का वस्तुगत-सौन्दर्य

(क) मानवीय-सौन्दर्य, नारी-सौन्दर्य

(ख) प्रकृति-सौन्दर्य

तुलनात्मक निष्कर्ष

अध्याय-३

आलोच्य कवियों का वस्तुगत-सौन्दर्य

कविता के मूलतः दो पक्ष है विषय और शिल्प । कलात्मक-सौन्दर्य की सृष्टि करने के लिए कवि शिल्प-सौन्दर्य पर अपना ध्यान अधिक केन्द्रित करता है । ऐसे कवि कविता के बनाव-श्रंगार में ही उलझे रह जाते है । उनके लिए कला कला है, बस इतना ही सत्य होता है, किन्तु जो कवि कला की सोद्देश्यतावादी विचारधारा का समर्थक होता है, वह विषय को ..प्रधानता देता है । शिल्प उसके लिए दूसरे स्थान पर आता है । छायावादोत्तर हिन्दी कविता में विषय की ही प्राथमिक महत्ता है, इसलिए शिल्प की शिथिलता चाहे आ भी जाय, किन्तु विषय की उदात्तता कभी कम नही होने पाती । यही कारण है कि छायावादोत्तर हिन्दी कविता में वस्तुगत-सौन्दर्य अपने चरम उत्कर्ष में दिखायी देता है ।

आलोच्य कवियों ने काव्य-सृजन के लिए मुख्यतः दो क्षेत्रों का चयन किया है- मानव-जीवन और प्रकृति । अपनी प्रगतिशील दृष्टि के कारण वे दृश्य-जगत से परे किसी काल्पनिक-जगत का चित्रण नहीं करते । मानवीय-सौन्दर्य में भी उन्हें शोषित मनुष्यों का सौन्दर्य अपनी ओर अधिक खीचता है । वे सर्वहारा के भिन्न-भिन्न चरित्रों को पूरी आत्मीयता और लगाव के साथ कविता का विषय बनाते है । मनुष्य-समाज पुरूष और स्त्री इन दो वर्गो से मिलकर बना है। आलोच्य कवि प्रमुख रूप से श्रमशील स्त्री-पुरूषों का सौन्दर्य चित्रित करने में रूचिशील दिखायी देते है । उन्होंने पुरूष पात्रों में किन्ही विशिष्ट पुरूषों या महापुरूषों का सौन्दर्य अंकित नही किया, सामान्य रूप से जीवन-यापन करने वाले किसान-मजदूर के श्रम-सम्पुष्ट सौन्दर्य के ही वे पारखी है । नारी-सौन्दर्य का चित्रण करते समय भी प्रायः उसके आंगिक-सौन्दर्य से अलग हटकर उसके कर्मशील सौन्दर्य को अधिकतर उद्घाटित किया गया है। जहाँ कहीं स्त्री के रूप का भी वर्णन है, वहाँ इस बाता का भरसक ध्यान रखा गया है कि वह कोई परकीया नायिका न हो ।

मानवेतर सौन्दर्य-चित्रण के अन्तर्गत प्रकृति-सौन्दर्य को रखा जा सकता है। प्रकृति के भिन्न-भिन्न रूपों ने आलोच्य कवियों को अपनी ओर खींचा है, पर उन्होने प्रकृति के नैसर्गिक सौन्दर्य से अधिक उसका मनुष्य की विभिन्न भाव स्थितियों को चित्रित करने के लिए उपयोग किया है, अर्थात प्रकृति का सौन्दर्य प्रायः मनुष्य-जीवन के परिपार्श्व में ही उद्घाटित हुआ है। मानव-निरपेक्ष प्रकृति का चित्रण तुलनात्मक रूप से कम हुआ है। इसीलिए प्रकृति के सामान्य रूपों की अपेक्षा उसके विशिष्ट रूपों ने कवियों को अधिक प्रेरित किया है। अपने आस-पास के सुपरिचित नदी, पहाड़, खेत, खलिहान, पशु-पक्षी, पेड़-पौधे कविताओं में बार-बार आये है । प्रकृति के सामान्य रूपों जैसे-सूरज, चाँद, बादल, तारे, दिन, रात, हवा, ऋतुयें इत्यादि का चित्रण उनकी नैसर्गिक-सुन्दरता के कारण कम और वे सब मनुष्य जीवन को सुन्दर बनाते है, इस कारण अधिक हुआ है।

(१) केदार का वस्तुगत-सौन्दर्य

केदार ने जितनी रूचि मानवीय-सौन्दर्य चित्रित करने में ली है, लगभग उतना ही प्रकृति-सौन्दर्य से वे आन्दोलित हुए हैं । उनके वस्तुगत सौन्दर्य का सम्यक अनुशीलन करने के लिए उस मानवीय सौन्दर्य और प्रकृति सौन्दर्य - इन दो भागों में विभाजित किया जा सकता है -

(क) मानवीय-सौन्दर्य -

केदार ने समग्र मनुष्य-समाज को अपनी कविताओं का विषय बनाया है । उनका समाज मुख्यत: दो वर्गों में बँटा हुआ है-पूँजपति और सर्वहारा । वे समाज की सारी विसंगतियों और विद्रूपताओं के लिए पूँजीपतियों को जिम्मेदार मानते हैं, इसलिए पूँजीपति वर्ग का कोई भी पात्र उन्हें फूटी आँखों नहीं सुहाता। उनकी सहानुभूति उन लोगों के साथ है, जो पूँजीवादी व्यवस्था के कारण शोषण और उत्पीड़न का शिकार हुये हैं ।ऐसे लोगों में मुख्य रूप से किसान, मजदूर, कुली, मछुआरे और अन्य पिछड़े तथा निम्न-वर्ग के लोग आते हैं । केदार मूलत: ग्राम्य-जीवन से आये हैं । काफी दिनों तक उन्होंने गाँव में रहने का सुयोग पाया है । इसलिए गाँव के मेहनतकश किसानों और किसान-मजदूरों के जीवन को उन्होंने नजदीक से देखा है और उनके श्रम का मूल्य समझा है । उनकी कविताओं में इसीलिए ग्रामीण किसानों, मजदूरों और गन्दी-बस्तियों में रहने वाले निम्न वर्गो के पात्रों के प्रति विशेष आकर्षण रहा है । उन्होंने अपनी कविताओं में इन सबकी भूरि-भूरि प्रशंसा की है और उन्हें उनके मनुष्य होने का बोध कराया है । जब वे देखते है कि किसानों के खून-पसीने की कमाई से धरती फसल से लहराने लगती है, तो वे प्रसन्नता से आत्मविभोर हो उठते है । उन्होंने किसानों की मेहनत उनकी ताकत, लगन, और जीवन्तता का ह्रदय खोलकर सौन्दर्य चित्रित किया है-

खेत काटने की इच्छा से
 खेतिहर प्रिय जन साथ समेटे
काछा मारे-देह उघारे
 आ धमका है आज सवेरे
सबके हाथों में हँसिया है
 सबकी बाहों में ताकत है
जल्दी-जल्दी साँसे लेते
 सब जन मन से काट रहे हैं
एक लगन से, एक ध्येय से
 जीवन का श्रम सफल हुआ है
जिन्दा दिल होकर उठने को
 खाने को भरपूर मिला है ।(१)

---

१. जो शिलायें तोड़ते हैं केदारनाथ अग्रवाल पृ० १५२

किसान हर ऋतु में जी तोड़ मेहनत करता है, उसका सारा ध्यान काम पर केन्द्रित रहता है । भरी बरसात मे जब वह खेतों पर काम करने जाता है, तो वह अत्यधिक उत्साहित होता है।सावन की रिमझिम में वह खुले खेतों पर काम करता है । प्रकृति उसके जीवन का एक ऐसा हिस्सा है जिसे वह पल-पल अपने साथ लिये रहता है । सावन के महीने में जब गुदगुदाने वाली नम हवा चलती है, तो किसान का हृदय खिल उठता है और वह स्वर्णिम भविष्य की कल्पनाओं में डूब जाता है । केदार ने महुये के पेड़ तले बैठे सावन का आनन्द लेते हुये एक किसान का सौन्दर्य-चित्र इन पंक्तियों में अंकित किया है -

सावन की गुदगुदी हवा से,
मस्त हुआ पट्ठे का चोला ।
पेड़ तले महुये के बैठा,
लगा बजाने मउहर मन की ।(१)

कवि जानता है कि किसान की मेहनत पर पलने वाला यह तथाकथित सभ्य समाज इतना स्वार्थी हो गया है कि उसे किसान-मजदूरों की दुरवस्था का कोई अनुभव ही नहीं होता । वह जिसकी मेहनत पर ऐश करता है, उसी का शोषण करने पर उतारू है । केदार किसान की श्रम-शक्ति से परिचित है । वे जानते हैं कि अन्न उत्पादन की जिम्मेदारी किसान पूरी निष्ठा के साथ निभाता है । फिर भी वह उसी जमीन का मालिक नही होता । जमीन किसी जमीदार के नाम होती है और किसान केवल खेतों पर काम करने के लिए ही जाता है । कवि ने किसान के श्रम-सौन्दर्य को उद्घाटित करते हुये यह अनुभव किया है कि खेत पर उस किसान का अधिकार होना चाहिए, जो वास्तव में उसे जोतता-बोता है-

यह धरती है उस किसान की
जो बैलों के कंधों पर
बरसात घाम में
जुआ भाग्य का रख देता है,
खून चाटती हुयी वायु में,
पैनी कुसी खेत के भीतर,
दूर कलेजे तक ले जाकर,
जोत डालता है मिट्टी को,
पाँस डाल कर,
और बीज फिर बो देता है,

१. गुलमेंहदी केदारनाथ अग्रवाल पृ० २२

नये वर्ष में नयी फसल के ।
ढेर अन्न का लग जाता है ।
यह धरती है उस किसान की ।(१)

केदार को किसान-मजदूरों की श्रम-श्लथ सुन्दरता बार-बार अपनी ओर आकृष्ट करती है। मजदूर उन्हें इसलिए भी अच्छे लगते हैं क्योंकि वे सामाजिक विकास में अपना महत्वपूर्ण योगदान करते हैं । वास्तव में आज की सभ्यता का सारा ठाठ-बाठ मजदूरों के श्रम का ही प्रतिफल है। जाड़ा-गर्मी बरसात की परवाह किये बिना मजदूर रात-दिन काम करता है और इस दुनिया को अपने श्रम से सुन्दर बनाता हैं । इस दुनिया की सुन्दरता का मूल स्रोत मजदूर का निश्च्छल श्रम ही है। केदार ने ऐसे श्रम-शील मजदूरों की सुन्दरता को आदर के साथ शब्द-बद्ध किया है -

आदमी का बेटा
गर्मी की धूप में भाँजता है फडुवा ।
हड्डी को, देह को तोड़ता है ।।
खूब गहराई से धरती को खोदता है ।
काँखता है, हाँफता है, मिट्टी को ढ़ोता है ।।
गन्दी आबादी के नाले को पाटता है । (२)

केदार को जिन पुरूषों के सौन्दर्य ने सबसे अधिक आकृष्ट किया है, वे किसी न किसी रूप में श्रम-शक्ति से जुड़े हुये हैं । उनके पास अगर कोई सौन्दर्य है, तो वह वस्तुतः श्रम का ही सौन्दर्य है । कवि गंगा तट के मछुआहों को देखकर अत्यधिक आनंदित होता है, क्योकि वे जरूरत पड़ने पर मगर जैसे शक्तिशाली जल-जीव को भी घेर कर मार सकते हैं । प्रायः अपने पेट की भूख मिटाने के लिए मछुआहों के पास यही मगरमच्छ होते हैं । कवि सोचता है कि अगर इन मछुआहों को सही नेतृत्व मिल जाये, जो इन्हें इनके अधिकारों के प्रति जागरूक कर सके, तो वे बहादुर मछुआहे और इन जैसे तमाम श्रम-जीवी मजदूर एकजुट होकर आर्थिक, सामाजिक और राजनीतिक गुलामी को दूर कर सकते है । कवि ने मछुआहों की शक्ति और साहस का एक सुन्दर चित्र इन पक्तियों में खीचा है -

अर्राती चौगुनी धार को
सहज चीर कर बढ़ने वाले,
गंगा तट के ये मछुआहे
नैया पार लगाने वाले,
आदमखोर मगर को घेरे

---

१. गुलमेंहदी, केदारनाथ अग्रवाल पृ० ५५
२. वही, पृ० ५५

बल विक्रम से मार रहे है,
क्रूर कुल्हाड़ी की चोटों से
मांस काट कर रौंध रहे हैं ।
और गरम ही गरम चबा के
भूख पेट की मिटा रहे हैं ।
काश इन्हें आजादी की भी
ऐसी उत्कट भूख सताती ।।(१)

केदार जितना गाँव से सम्बद्ध रहे है, उससे कहीं अधिक उनका सम्बन्ध नगर से रहा है । यह बात अलग है कि वे जिस नगर के नागरिक हैं, वह ग्राम्य परिवेश के साथ गहन रूप से संयुक्त है । बाँदा में रहने वाले और बाँदा के साथ रोज के आने-जाने का सम्बन्ध रखने वाले अधिकतर लोग किसान और मजदूर जीवन से सम्बद्ध है । कवि इन भोले-भाले किसान मजदूरों के प्रति सच्ची आत्मीयता का भाव रखता है । वह गाँव के लोगों की दयनीय अवस्था से बहुत क्षुब्ध है और इस अवस्था के लिये सीधे-सीधे महाजनी सभ्यता को दोषी मानता है । उन्होंने किसानों और मजदूरों के प्रति अपनी सहानुभूति और उनकी बेबसी का एक रेखांकन निम्न पंक्तियों में किया है -

रामपदारथ, रामनिहोरे,
बेनी पण्ड़ित, वासुदेव, बल्देव, विधाता,
चन्दन, चतुरी और चतुर्भुज,
गाँवों से आ-आकर गहने गिरवी रखते,
बढ़े ब्याज के मुँह में बरबस-बेबस घुसते,
फिर भी घर का खर्च नही पूरा कर सकते,
मोटा, खाते, फटा पहनते,
लस्टम-पस्टम जैसे-तैसे मरते-खपते ।(२)

शहर में बड़ी-बड़ी मिलें और कारखाने है जिनका मालिक तो कोई धन्ना सेठ होता है, लेकिन काम करते है दीन-हीन मजदूर । आठ-आठ घण्टे लगातार अलग-अलग शिफ्टों में ये मिल मजदूर मेहनत करते है और उसके बदले उन्हें इतना भी नही मिलता, जिससे वे अपनी आवश्यक, आवश्यकताएँ पूरी कर सकें । कवि को मजदूरों के प्रति सहानुभूति है और वह उनके श्रम का आदर करता है । इसी आदर भाव के कारण उन्होंने मजदूरों की दिनचर्या को अपनी एक कविता में इस प्रकार अंकित किया है -

---

१. गुलमेंहदी, केदारनाथ अग्रवाल पृ० ६२
२. फूल नही रंग बोलते है, केदारनाथ अग्रवाल पृ० ८५

हम सब मजदूर
बड़ी कड़ी मेहनत में पिसते हैं ।
भोंपू के बजते ही
भिंसारे फाटक में घुसते हैं,
काम कर आधा दिन,
चूर हो हड्डी से, पसली से, मुरदा हो
दो तक
फिर साँसे भर छाती में
सूरज के डूबे तक,
पंजों को, पावों को, पीठ को, पेट को,
कुत्तों से बदतर हम, घिसते है रोटी के दीवाने,
पाते है छः आने-दस आने ! (१)

गाँव या शहर में जिन लोगों ने केदार की सहानुभूति पायी है और जो उन्हें अच्छे लगते हैं वे मूलतः श्रमिक हैं । श्रमिकों के अलग-अलग कई नाम हो सकते है, लेकिन सबका काम एक ही है मेहनत करना । शहरों में न जाने ऐसे कितने मजदूर हैं, जो दैनिक मजदूरी के बल पर जीवन-यापन करते हैं । ठेला खीचने वाला एक ऐसा ही मजदूर है, जो कठिन परिश्रम करता है, फिर भी दैनिक जीवन की आवश्यकतायें पूरा करने भर को मजदूरी नही पाता । एक ऐसे ही ठेला मजदूर के श्रम से आकृष्ट होकर केदार उसके कर्म की भूरि-भूरि प्रशंसा करते हैं और उसके प्रति अपनी सहानुभूति व्यक्त करते हुये उसका एक सौन्दर्य-चित्र निम्नलिखित शब्दों में प्रस्तुत करते हैं-

भरा ठेला खीचता हूँ
हाथ में गट्ठे पड़े हैं
पाँव में ठट्ठे पड़े हैं
और इस पर तर पसीने से अकेले खीचता हूँ
भरा ठेला खीचता हूँ
कर्म की सच्ची लगन है
पेट का ऐसा जतन है
आदमी हूँ आदमी का भार भारी खीचता हूँ
भरा ठेला खीचता हूँ ।(२)

पूँजीवादी समाज में बहुसंख्यक लोग ऐसे होते है जो मेहनत-मजदूरी करके ही अपना

---

१. गुलमेंहदी, केदारनाथ अग्रवाल पृ० ४४
२. जो शिलायें तोड़ते है, केदारनाथ अग्रवाल पृ० ११२

निर्वाह करते हैं । मेहनत करना उनकी विवशता भी है और उनके जीवन का आदर्श भी । कुली मजदूर थोड़े पैसों में भारी बोझा अपने कंधों पर लादकर चल देते हैं । उनका यह कार्य कवि को अत्यन्त मूल्यवान प्रतीत होता है, क्योंकि उनकी सहायता के बिना मनुष्य-समाज आगे नहीं बढ़ सकता। वह कुली मजदूरों के श्रम-सौन्दर्य से अभिभूत होकर उनकी दयनीय अवस्था के प्रति चिन्ता व्यक्त करता है और पैसे वालों के प्रति अपने मन का आक्रोश व्यक्त करता है -

जो कुली पीठ पर बोझ लिये चलता है
हाड़ो पर अपने भार लिये चलता है
कंकड़ पत्थर रोड़ों पर पग धरता है
हरदम आगे ही आगे को बढ़ता है
चलते-चलते तलुवे एड़ी घिसता है
रूकने टिकने को जो मरना कहता है
लम्बे पथ की पूरी दूरी हरता है
सूरज की किरनों में तपता तचता है
श्रमजल में जो डूबा-डूबा रहता है
आँखे खोले बेहद अंधा रहता है
मुँह खोले बेहद गूंगा रहता है
वह राही की यात्रा हलकी करता है
वह खोटी दुनिया में बरबस बिकता है
कम दामों में - कम आनों में पिसता है
जब तक जीता है तिल-तिल कर घिसता है
शोषक के पैरों के नीचे मिटता है ।(१)

कानपुर जैसे महानगर की तड़क-भड़क पर भी जब कवि दृष्टिपात करता है, तो उसे सबसे पहले उन श्रमिकों की याद आती है जिनके पौरूष के कारण यह शहर इतना भव्य रूप धारण कर सका है । कवि की सौन्दर्य-दृष्टि वस्तु के बाह्य रूप में नही उलझती, वह उसे चीर कर उसके गर्भ में प्रवेश करती है, जहाँ से सौन्दर्य की वास्तविक ऊर्जा का सूत्रपात्र होता है । बड़े-बड़े भवन, लम्बी-चौड़ी सड़कें, रात-दिन उत्पादन के काम में लगी मिलें, इन सबके पीछे मजदूरों की श्रम-शक्ति अन्तर्निहित है । कवि उसकी श्रम शक्ति के सौन्दर्य से आन्दोलित होता है और यह अनुभव करता है कि भौतिक सभ्यता का पूर्ण ढ़ाँचा वस्तुतः इन्ही श्रमिकों के श्रम पर टिका हुआ है और इसलिए वे श्रमिक कवि को सुन्दर लगते है -

---

१. जो शिलायें तोड़ते है, केदारनाथ अग्रवाल पृ० १५३

चोटों पर चोटें जो धन की
खा कर कभी नहीं तड़की है,
उस हड्डी पर - उस पसली पर,
श्रमजीवी की उस छाती पर,
कानपूर का शहर सजीला,
कई मील के लम्बे-चौड़े
मिलों-कारखानों को घेरे
घण्टाघर ले बसा हुआ है ।

....

कानपुर की सारी सत्ता -
श्रमजीवी की ही सत्ता है !
कानपुर की सारी माया
श्रमजीवी की ही माया है ।। (१)

कवि को वस्तु-जगत में जिन लोगों का सौन्दर्य सबसे अधिक रूचिकर लगता है वे दीन-हीन शोषित जन हैं, फिर चाहे वे गाँव की धरती से जुड़े हों या शहर की । अलग-अलग क्षेत्रों में जाकर कवि ने कभी किसानों का, तो कभी मजदूरों का सौन्दर्य दर्शन किया है और उसे पूरी आत्मीयता के साथ कविता में ढ़ालकर प्रस्तुत किया है । वह शोषित जनों के प्रति इसलिए भी आश्वस्त है, क्योंकि उसे विश्वास है कि धीरे-धीरे इस वर्ग में अधिकार चेतना जाग रही है और एक-न-एक दिन वह पूरे वेग से क्रान्ति का रूप लेकर सामने अवश्य आयेगी । ऐसे ही एक दीन कुनबा का यह चित्र कवि की कलम से इस रूप में अंकित हुआ है -

दीन-दुखी यह कुनबा,
जाड़े की थरथर में कँपता
अपनी चौपारी में बैठा,
ताप रहा है कौड़ा ।।
लकड़ी कण्डे सुलग रहे है,
आग लगी है । (२)

नारी-सौन्दर्य -

केदार की काव्य-यात्रा नारी के सौन्दर्य-चित्रण से आरम्भ होती है । 'नींद के बादल' में संकलित कवितायें इस बात का प्रमाण है कि कविता की मूल प्रेरणा उन्हें नारी से ही प्राप्त हुयी

१. फूल नही रंग बोलते है, केदारनाथ अग्रवाल पृ० ७१-७२
२. गुलमेंहदी, केदारनाथ अग्रवाल पृ० ५४

है । उन्होंने स्वयं स्वीकार किया है कि -

कविता यों ही बन जाती है
बिना बनाए,
क्योंकि ह्रदय में तडप रही है
याद तुम्हारी । (१)

कवि का ह्रदय जिसकी याद में तड़पता है, वस्तुत: वह कोई और नही, उसकी अपनी धर्म पत्नी है । केदार का विवाह बहुत छोटी अवस्था में हो गया था । विवाह के बाद उन्हें कई वर्षो तक पढ़ाई के सिलसिले में पत्नी से दूर रहना पड़ा । पर कवि का युवा-मन पल भर के लिए भी पत्नी के रूप-सौन्दर्य को भुला नही पाता । कवि को ऐसा लगता है कि उसकी प्रियतमा का सौन्दय,अपने आप में अद्‌भुत है । सौन्दर्य के सारे उपमान उसके सामने फीके लगते है -

मेरी प्यारी सबसे सुन्दर
दिन से सुन्दर, निशि से सुन्दर,
सुन्दरतर रवि-शशि से सुन्दर
मेरी प्यारी सबसे सुन्दर । (२)

कवि अपनी प्रियतमास की रूप-राशि से इतना भाव-विभोर है कि वह प्रतिफल उसे देखते रहने की कामना करता है । वह उसकी केवल कायिक सुन्दरता पर ही मुग्ध नहीं है, अपितु उसके सरल और लज्जाशील स्त्रीजनोचित स्वभाव से भी आह्लादित होता है । प्रियतमा के बोलने में उसे मधुवर्षा का-सा आनन्द मिलता है । उसकी चाल में तो मानों कोमलता ही मूर्तिमान दिखायी देती है । उसके ह्रदय का निश्च्छल प्रेम उसके सौन्दर्य को स्वयमेव द्विगुणित कर देता है । कवि ने अपनी प्राण-प्यारी के सौन्दर्य का ह्रदय खोलकर वर्णन किया है -

रूप की राशि प्राण प्यारी ।
प्रेम की पूनों अति उत्तम
लालसा की मधुऋतु सस्मित !
लाज की ऊषा है अनुपम !
देह निर्मल है छवि-दर्पण !
रूप में नव-नव आकर्षण !
बोल में अविल मधु-वर्षण !
चाल में कोमलता नर्त्तन ! (३)

---

१. गुलमेंहदी, केदारनाथ अग्रवाल पृ० ७३
२. वही,
3. वही,

केदार मूलतः पत्नी-प्रेमी रहे हैं, इसलिए उन्हें पत्नी के सामाजिक सन्दर्भो से जुड़े हुए रूप ने सबसे अधिक प्रभावित किया है । जब वे देखते हैं कि उनकी पत्नी अपनी मांग में सिन्दूर भरकर और माथे में लाल बिन्दी लगाकर अपना श्रंगार प्रसाधन करती है, तो उसका सौन्दर्य अपनी सामाजिक प्रतिबद्धता से ओतप्रोत होकर अद्वितीय रूप धारण कर लेता है । विवाहिता नारी का यह रूप, जिसमें अपने पति के प्रति निश्च्छल-प्रेम की मौन अभिव्यक्ति होती है, केवल भारत की नारियों में ही दिखायी देता है कवि अपनी पत्नी के इस रूप की जी खोलकर प्रशंसा करता है-

मैं मगनमन देखता हूँ,
केश लम्बे कुंडलित हैं-
माँग में सिन्दूर अभय है-
माथ में अरूणाभ टीका दमदमाता-
नाचता है
बड़ी आँखों में उजाला
आन्तरिक आह्लाद से, उत्फुल्ल-
राग-रंजित मंद मुसकाते अधर
जग जीतते है - (१)

केदार नारी की देह-यष्टि मात्र के पुजारी नही है । यही कारण है कि उन्होंने नारी के नख-शिख सौन्दर्य-चित्रण से अधिक उसके साथ अपने चिरकालिक सम्बन्धों से उपजी सौन्दर्य-दृष्टि का परिचय दिया है । देह का सौन्दर्य तो समय के साथ-साथ फीका पड़ जाता है, लेकिन साहचर्य से उपजा सौन्दर्य-बोध जीवन-पर्यन्त ह्रदय को उद्वेलित करता रहता है । पत्नी के साथ कवि एक लम्बे समय तक सुख-पूर्वक जीवन यापन करता है और उसकी सौन्दर्य-दृष्टि स्थूल को पार करते हुए सूक्ष्म जगत में प्रवेश करती जाती है । पत्नी बूढ़ी हो जाती है, उसके दाँत उखड़ जाते हैं, चेहरे पर झुर्रियाँ पड़ जाती है, तो भी कवि जब उसे मुस्कुराता हुआ देखता है, तो हर्षातिरेक से झूम उठता है -

फिर मुस्काई
प्रिया पोपले मुँह से अपने
कई दिनों के बाद,
बड़े सवेरे,
हर्ष-हर्ष से फूल उठा मेरा अस्तित्व,
मैं हो गया निहाल । (२)

१. आत्मगंध, केदारनाथ अग्रवाल पृ० ६३
२. वही, पृ० १९

केदार के गाँव कमासिन में घर के सामने एक कुआँ था जहाँ गाँव की अधिकांश औरतें पानी भरने आती थीं । कवि का किशोर-मन उन पनिहारिनों के नैसर्गिक सौन्दर्य को देखकर इस प्रकार की आन्तरिक प्रफुल्लता का अनुभव करता है और उन पनिहारिनों को रोज-रोज छिपकर देखने का क्रम बन जाता है । पनघट पर भिन्न-भिन्न मुद्राओं में नवयुवतियों को पानी भरते देखना कवि की दिनचर्या में शामिल हो जाता है । कभी किसी नव युवती का पाँव फिसल जाता है, उसकी गागर टूट जाती है और वह पानी से पूरी तरह भींग जाती है, तो कवि को सद्य: स्नाता नायिका का सौन्दर्य-दर्शन भी हो जाता है ।ऐसा ही एक सौन्दर्य चित्र निम्नलिखित पंक्तियों में देखा जा सकता है -

चुलबुल पनघट के ऊपर चढ़
नौजवान देहाती लड़की
हाव-भाव की चिकनी सिलपर
रपटी ऐसी, धोती उघरी
नहीं नेवासी कोरी गागर
टुकड़े-टुकड़े होकर टूटी,
गहरे अन्ध पताल कुएँ में
उसकी पूरी देही डूबी ।। (१)

कवि के नारी सौन्दर्य का पैमाना नारी का केवल आंगिक उत्कर्ष नहीं है, अपितु वह श्रमशील नारियों के सौन्दर्य से अभिभूत होता दिखायी देता है । प्रगतिशील चेतना सम्पन्न होने के कारण कवि उन दीन-हीन, शोषित नारियों के जीवन पर दृष्टिपात करता है, जिन्हें आज की सामाजिक व्यवस्था में एक अनचाहा अभिशप्त जीवन जीने के लिए विवश होना पड़ता है । आज न जाने कितनी स्त्रियाँ ऐसी हैं, जो रात-दिन काम करती है पर उन्हें समाज की ओर से जीवन की मूलभूत सुविधाएं भी नही मिल पातीं । उनके साथ घोर अन्याय होता है, अत्याचार होता है, फिर भी वे अपने सपनों को मिट्टी में मिलाकर, मन मारकर अपना कर्म करती रहती हैं । कवि इन सर्वहारा नारियों के श्रम-सौन्दर्य से मुग्ध होकर इन शब्दों में अपनी भावना व्यक्त करता है -

वह
समाज में
न्याय न पाकर
अन्यायों की चोट दबाकर
भरी देह का

---

१. जो शिलायें तोड़ते है, केदारनाथ अग्रवाल पृ० १०८

नेह सुखा कर,
खाकर ठोकर -
रोम दुखा कर,
अपने सपने
धूल बनाकर,
कर से कर पर की मजदूरी,
पग से
हर,पल-पल की दूरी,
जीवन जीती है
अनचाहा,
दुख-दारिद पीती अनथाहा । (१)

कवि का गाँव से निकट का सम्बन्ध रहा है । उसने वहाँ की औरतों को विपरीत परिस्थितियों में काम करते और रात-दिन जी तोड़ मेहनत करते अपनी आँखो से देखा है । कवि को उन कामकाजी औरतों के प्रति सच्ची संवेदना है और वह उनके दुख को भली-भाँति महसूस भी करता है । वह उन औरतों की अदम्य जिजीविषा को देखकर मुग्ध हो जाता है । अपनी व्यक्तिगत सुख-सुविधाओं से बेखबर ये स्त्रियाँ अपने कर्म के प्रति जितनी समर्पित होती हैं, उतना समाज का कोई अन्य वर्ग नहीं । केदार जब इन ग्रामीण महिलाओं को अपनी कविताओं का विषय बनाते हैं, तो इनके शारीरिक-सौष्ठव के साथ-साथ उनके श्रम-सौन्दर्य को अंकित करना नहीं भूलते। 'सीता मैया' कविता में उन्होंने वर्तमान सामाजिक व्यवस्था पर तीखा व्यंग्य करते हुए नारी के श्रम-सौन्दर्य को इन शब्दों में उद्घाटित किया है -

मूसल, चक्की, कुटना-पिसना,
सब तड़के से करती है ।
खपरे-छाये कच्चे घर में
रामराज्य में रहती है ।।
भेड़ों को बकरी को लेकर,
हार चराने जाती है ।
'घम-घम' घाम हवा खाती है,
दिन छिपते फिर आती है ।। (२)

---

१. बोले बोले अबोल, केदारनाथ अग्रवाल पृ० १९

२. जो शिलायें तोड़ते है, केदारनाथ अग्रवाल पृ० १५१

(ख) प्रकृति-सौंदर्य- प्रकृति मनुष्य की आदिम सहचरी है । अनादिकाल से मनुष्य प्रकृति के न केवल सौन्दर्य से आह्लादित होता रहा है बल्कि उसके साथ अपना सुख-दुख भी बाँटता रहा है। यही कारण है कि दुनिया के प्राय: हर बड़े कवि ने अपनी कविताओं में प्रकृति को महत्वपूर्ण स्थान दिया है । हिन्दी की प्रगतिशील कविता यद्यपि सामाजिक जीवन की कविता है और उसमें मनुष्य की सर्वोच्च महत्ता प्रतिपादित की गयी है, फिर भी प्रकृति से कवि दूर नही जा सका । हाँ इतना अन्तर अवश्य आया है कि प्रगतिशील दौर के पहले हिन्दी कवियों का ध्यान विशेष रूप से प्रकृति से सामान्य रूपों तक सीमित था, जबकि प्रगतिशील कविता में प्रकृति के सामान्य रूपों की अपेक्षा उसके विशिष्ट और सुपरिचित रूपों का चित्रण अधिक हुआ है । साथ ही प्रकृति का केवल कोरा सौन्दर्य मात्र चित्रित नहीं हुआ, अपितु उसके प्रेरणादायी रूप की ओर प्रगतिशील कवियों का ध्यान अधिक गया है ।

केदार ने अपनी काव्य यात्रा के आरम्भ से ही मनुष्य-जीवन और प्रकृति दोनो को समान रूप से अपनी कविता का विषय बनाया है । उनकी आरम्भिक रचनाओं में प्रकृति के नैसर्गिक रूपों को अधिक चित्रित किया गया है, जबकि उनकी परवर्ती कविताओं में प्रकृति एक प्रेरक शक्ति के रूप में आयी है । प्रकृति-सौन्दर्य से सम्बन्धित केदार की कविताओं में प्रकृति मानव-जीवन के हर्ष-विषाद को रूपायित करने के लिए अधिक चित्रित हुयी है । कवि प्रकृति की भिन्न-भिन्न मुद्राओं से जीवन का सन्देश प्राप्त करता है और इसीलिए प्रकृति उसे सुन्दर लगती है । प्रकृति के सामान्य रूपों जैसे हवा, पानी, चाँद-सितारे, सूर्योदय, सूर्यास्त, दिन-रात, पेड़-पौधे, फूल-फल, नदी-पहाड़ तथा विभिन्न ऋतुएँ इत्यादि का चित्रण तो कवि ने किया ही है, पर उसे प्रकृति के उन रूपों ने अधिक आकृष्ट किया है, जो उसके आस-पास बिखरे हुये हैं और जिनके साथ उसका नित्य-प्रति का संग-साथ है । प्रकृति के इन विशिष्ट रूपों में केन नदी, टुनटुनिया पहाड, कवि के दरवाजे पर खड़ा नीम का पेड़, आँगन की क्यारी में उगे बोगनबेलिया और गेंदा के फूल, बाँदा की जमीन पर फसलों से लहलहाते खेत आदि विशेष रूप से उल्लेखनीय है ।

केदार जब प्रकृति के किसी रूप का सौन्दर्य-चित्र अंकित करते है, तब वे किसी तटस्थ दृष्टा की भूमिका नही निभाते, बल्कि प्रकृति के उस रूप के साथ आत्मवत् संवेदना अनुभव करते हुये हँसते-गाते, अठखेलियाँ करते नजर आते हैं । अपनी काव्य-यात्रा के आरम्भिक दौर में जब वे आशिंक रूप से छायावादी मानसिकता से प्रभावित थे, उन्होंने हवा को उसकी गत्यात्मक भूमिका में विभिन्न क्रियायें करते हुए देखा और एक मनमौजी स्वच्छन्द विचारधारा वाले कवि की तरह उसकी हर गतिविधि का एक चलचित्र जैसा अंकित किया है -

चढ़ी पेड़ महुआ, थपाथप मचाया,
गिरी धम्म से फिर, चढ़ी आम ऊपर,
उसे भी झकोरा, किया कान मे 'कू'

उतर कर भगी मैं हरे खेत पहुँची -
वहाँ गेहुँओं में लहर खूब मारी,
पहर दो पहर क्या, अनेकों पहर तक
इसी में रही मैं ।
खड़ी देख अलसी लिये शीश कलसी,
मुझे खूब सूझी !
हिलाया-झुलाया, गिरी पर न कलसी !
इसी हार को पा
हिलायी न सरसों, झुलायी न सरसों,
मजा आ गया तब,
न सुध-बुध रही कुछ
बसन्ती नवेली भरे गात में थी । (१)

यह हवा केदार को कभी तो एक अल्हड़ लड़की के रूप मे स्वच्छन्द विचरण करते हुये दिखायी देती है, तो कभी एक आक्रामक अन्धड़ का रूप धारण कर लेती है, जो अपने वेग से देखते-ही-देखते बड़े-बड़े वृक्षों को भी उखाड़ फेकता है । कवि हवा की सुन्दरता से भी प्रभावित है और उसकी असीम शक्ति से भी । प्रकृति के कोमल और परूष दोनों रूप कवि का ध्यान आकृष्ट करते हैं । प्रकृति का कोमल रूप जहाँ हृदय में रागात्मकता का संचार करता है, वहीं उसका परूष रूप यह संकेत करता है कि उसमें शक्ति का अक्षय भंड़ार है जो किसी भी समय बड़े-बड़े अवरोधों को भी नष्ट कर सकता है । प्रकृति के भीषण रूप से कवि को मानवीय शक्ति-संचय की प्रेरणा मिलती है ओर वह अपने लक्ष्य की ओर सरपट भागने लगता है -

मैं घोड़ो की दौड़
बनों के सिर पर तड़-तड दौड़ा,
पेड़ बड़े से बड़ा
चिरौटे-सा चिल्लाया, चौका
पत्तों के पर फड़-फड़ फड़के -
उल्टे, उखडे, टूटे,
मौन अँधेरे की डालों पर
साँड़ पठारी छूटे । (२)

केदार को उगता हुआ सूरज और दिन का उजाला बहुत प्रिय है । उनकी कविता

१. फूल नही रग बोलते है, केदारनाथ अग्रवाल पृ० २१
२. वही, पृ० ९५

अन्धकार से प्रकाश की ओर चलती है । उन्होंने अपनी कविताओं में मुख्यत: सूर्यादय और सूर्य के प्रकाश का अभिनन्दन किया है । सूर्योदय वस्तुत: जागरण का प्रतीक है । सूर्य के आते ही अंधेरा भाग खड़ा होता है । जीवन और जगत से जड़ता समाप्त हो जाती है, हर तरफ स्फूर्ति और उमंग दिखायी देने लगती है सूर्य के निकलने पर कवि स्वयं इतनी जीवन्तता का अनुभव करता है कि उसे लगता है मानो सारी दुनिया का पल भर में नक्शा ही बदल गया हो -

रवि-मोर सुनहरा निकला,
पर खोल सबेरा नाचा,
भू-भार कनक-गिरि पिघला,
भूगोल यही का बदला ।
नवजात उजेला दौड़ा,
कन-कन बन गया रूपहला ।
मधुगीत पवन ने गाया ,
संगीत हुई यह धरती,
हर फूल जगा मुसकाया । (१)

केदार के प्रकृति-चित्रण की सुन्दरता का एक महत्वपूर्ण पक्ष यह है कि उन्होंने प्रकृति के सामान्य रूपों को भी प्राय: लोक संस्कृति के साथ जोड़कर चित्रित किया है । कवि प्रकृति-सौन्दर्य से बार-बार आकृष्ट होता है, किन्तु वह उसके सौन्दर्य-जाल में इतना नहीं डूब जाता कि मनुष्य-जीवन को सर्वथा भूल बैठे । प्रकृति का लगभग हर दृश्य उसे गाँव, घर, खेत, खेतों पर लहलहाती फसल और वहाँ काम करती स्त्रियों को अपने साथ लेकर चलता है और सभी मिलकर एकरूप हो जाते हैं -

धीरे से पाँव धरा धरती पर किरनों ने,
मिट्टी पर दौड़ गया लाल रंग तलुओं का ।
छोटा-सा गाँव हुआ केसर की क्यारी-सा,
कच्चे घर डूब गये कंचन के पानी में ।
डालों की डोली में लज्जा के फूल खिले,
ऊषा ने मस्ती से फूलो को चूम लिया ।
गोरी ने गीतों से सरसों की गोद भरी,
भौरों ने गोरी के गालों को चूम लिया । (२)

रात की सुन्दरता चाँद से होती है जब आकाश में चन्द्रमा अपने सम्पूर्ण दीप्ति के साथ

---

१. फूल नहीं रग बोलते है, केदारनाथ अग्रवाल पृ० ३०
२. वही, पृ० ३३

प्रकाशित होता है, तो धरती पर एक विलक्षण सौन्दर्य की वर्षा होने लगती है । केदार जब चन्द्रमा को उसकी समग्रता में देखते है, तो उन्हें ऐसा लगता है मानों चाँद न केवल धरती की ओर ताकता है, बल्कि मनुष्य जाति की इस वास-स्थली को अपने अंक में भर लेने की कामना भी करता है। कवि चन्द्र दर्शन करते समय केवल आकाश पर ही दृष्टि नहीं रखता, वल्कि वह धरती को भी बराबर अपनी नजर में रखता है । चाँद और चाँदनी का रास-रंग कवि के सौन्दर्य-बोध को जगाता है और वह उसे कविता में ढ़ालकर एक सुन्दर सा चित्र खड़ा कर देता है -

विश्व के
वट-वृक्ष के ऊँचे शिखर पर
चाँद चढ़ कर,
चाव से नीचे निरख कर,
दूध की बाहें पसारे,
मानवी मधुरा धरा को भेटता है,
और
यौवन-यामिनी की-
चाँदनी का-
फूल फेनिल चूमता है । (१)

केदार ने प्रकृति के सामान्य रूपों में ऋतुओं का सौन्दर्य बहुत रूचि के साथ अंकित किया है । बसन्त उनकी प्रिय ऋतु है । बसन्त के अनेक चित्र उनकी कविताओं में भिन्न-भिन्न रूपों में आये हैं । बसन्त राग-रंग की ऋतु है । बसन्त के आते ही न केवल प्रकृति अपितु मनुष्य भी उल्लिसित हो उठता है । वसन्त की मोहक छटा मनुष्य को एक नई स्फूर्ति देती है । वह बासन्तिक वैभव से उद्वेलित होकर अपने व्यक्तिगत जीवन में एक गुदगुदी-सी अनुभव करने लगता है और नये उत्साह और उमंग के साथ जीवन-जीने की कामना करने लगता है -

यह बसन्त जो
धूप, हवा, मैदान, खेत, खलिहान, बाग में
निराकार मन्मथ मदान्ध-सा रात-दिवस साँसे लेता है,
जानी-अनजानी सुधियों के कितने-कितने संवेदो से
सरवर, सरिता,
लता गुल्म को, तरू-पातों को छू लेता है
और हजारों फूलों की रंगीन सुगन्धित सजी डोलियाँ

---

१. फूल नहीं रग बोलते है, केदारनाथ अग्रवाल पृ० २९

यहाँ-वहाँ चहुँ ओर खोल कर मनोमोहनी रख देता है
वही हमारे
और तुम्हारे अन्त:पुर में
आज समाये
हमको - तुमको
आलिंगन की तन्मयता में एक बनाये । (१)

बसन्त ही नहीं शरद् भी कवि के मन में जीवन-रस पीने की आकंठ प्यास जगाती है। शरद ऋतु का समय वसंत से कम मादक नहीं होता, न अधिक गर्मी न अधिक जाड़ा, सारा वातावरण समशीतोष्ण रहता है । आकाश निर्मल होता है और तालाबों में कमल अपने सौन्दर्य से सम्पूर्ण परिवेश को दर्शनीय बना देते हैं । कवि शरद् के सौन्दर्य से मुग्ध होकर एक नई स्फूर्ति और उमंग का अनुभव करता है -

मुग्ध कमल की तरह
पाँखुरी-पलकें खोले,
कन्धों पर अलियों की व्याकुल,
अलकें तोलें,
तरल ताल से
दिवस शरद के पास बुलाते
मेरे मन में रस पीने की
प्यास जगाते ! (२)

प्रकृति के खजाने में इतना कुछ है कि मनुष्य आजीवन उसे निहारता रहे, तो भी जी नहीं भरता । आकाश में बादल छाते हैं तो सारी दुनिया प्रसन्न हो जाती है । बादलों को जीवन-दाता कहा जाता है क्योंकि वे सम्पूर्ण पृथ्वी को जल देते हैं । इसीलिए वर्षा-ऋतु आते ही मनुष्य, पशु-पक्षी और वनस्पतियाँ आकाश में बादलों की टोह लेने लगते हैं । बादल जब अपने पूरे यौवन में आता है, तो ऐसा लगता है, मानो कोई नट आकाश में रास-लीला रचा रहा हो । बादल और बिजली का एक दूसरे के साथ क्रीड़ारत रूप कवि को बार-बार अपनी ओर खींचता है और वह उसकी अद्भुत छटा को देखकर दाँतो तले उँगली दबा लेता है -

श्यामकाय
प्रभु विष्णु मेघ जो प्राकृत नट है,
धीर, वीर, गम्भीर, और नि:शंक निपट है,

---

१. फूल नहीं रंग बोलते है, केदारनाथ अग्रवाल पृ० ३९
२. वही, पृ० ६२

महाभूत

उस पूर्ण पुरूष से विद्युत-बनिता
हेर-फेर मुख, लिपटी - छूटी, क्षण-क्षण चकिता । (१)

प्रकृति के विशिष्ट रूपों में बाँदा की धरती को अपने निर्मल जल से वर्षपर्यन्त सीचने वाली केन (कर्णवती नदी) के सर्वाधिक चित्र केदार ने खीचे है । केन के भिन्न-भिन्न रूपों ने केदार को अपनी ओर आकृष्ट किया है । कभी वह एक कोमलांगी नायिका के रूप में कवि का ध्यान आकृष्ट करती है, तो कभी एक वीरांगना की तरह हाथ में तलवार लिये दिखायी पड़ती है । नदी के साथ कवि आत्मगत संवेदना का अनुभव करता है और घण्टों रेती पर पाँव पसारे बैठा रहता है । नदी के सौन्दर्य-चित्रो में से एक चित्र उदाहरण के रूप में प्रस्तुत है -

नदी म्यान से खिंची एक तलवार है
जो मैदान में लगातार चलती है
जिसकी धार तेज
और बिजली से भरी है
जिसने बला की चचंलता पायी है !
कूल है कि इसको पास ही रखते हैं
जी-जान से इसे प्यार ही करते हैं
जैसे बड़े कुशल समर-शूर सैनिक है ! (२)

केन का रूप वर्ष-पर्यन्त एक जैसा नही रहता । बरसात में जब वह जल-राशि से आपूरित होकर इठलाती है और चारों तरफ अपनी बाहें फैलाती है तो आस-पास के लोग भले ही त्राहि-त्राहि कर उठते हों, लेकिन कवि उसमें एक और ही सौन्दर्य देखता है । उसे लगता है, मानों यह नदी का विनाशक नहीं, बल्कि प्रेम-प्रदर्शन का एक अभिनव प्रयोग है ।वह जब बाढ़ में पागल हुयी शहर की ओर बढ़ती है, तो भी केदार का मन नि:शंक रहता है । उन्हें केन की लहरों में मंगलस्त्रोत सुनायी पड़ते हैं और उसके शहर की तरफ बढ़ने में टुनटुनियाँ पहाड़ से उसके प्रेम-पूर्ण मिलन का अद्भुत दृश्य दिखायी देता है । वस्तुत: कवि नदी को इतना चाहता है कि उसका रौद्र रूप भी उसे प्रेम का सन्देश देता हुआ प्रतीत होता है -

दूर खड़ा टुनटुनियाँ पत्थर पास बुलाता
केन नदी की बाह पकड़ने को ललचाता
चौमासे में चढ़ी जवानी में मदमाती

---

१. गुलमेंहदी, केदारनाथ अग्रवाल पृ० १८५
२. फूल नहीं रंग बोलते हैं, केदारनाथ अग्रवाल पृ० [illegible]

केन नदी इठलाती गाती मिलने आती

बम-भोले की पूजा में जल-फूल चढ़ाती

लहरों से पहरों तक मंत्रोच्चार कराती

कर्णवती फिर लौट किनारे पर आ जाती

आँचल में वरदान लिये शिव का लहराती । (१)

यही केन जो वर्षा ऋतु में चारों तरफ इठलाती फिरती है, ग्रीष्म में तन-मन से इतनी दूर जाती है कि कवि से उसकी तड़प देखी नही जाती । कवि को लगता है कि जैसे कोई तन्वंगी नायिका किसी शिकारी के बाण से बिद्ध होकर घायल हो गयी हो और निराधार अवस्था में अपने प्राणों की रक्षा के लिए छटपटा रही हो । केन की इस छटपटाहट से कवि आहत होता है और पूरी आत्मीयता के साथ उसकी इस अवस्था का एक मार्मिक-चित्र खीचता है -

रवि के खरतर शर से मारी,

क्षीण हुई तन-मन से हारी,

केन हमारी तड़प रही है

गरम रेत पर, जैसे बिजली

बीच अधर में घन से छूटी

तड़प रही है । (२)

केदार को अपने आस-पास के प्राकृतिक परिवेश से बेहद लगाव है । उन्होंने अपने सुपरिचित पेड़-पौधों और फूल-फल से लदी हुयी उनकी समृद्धि का अनेक कविताओं में सुन्दर चित्रण किया है । इन पेड़-पौधों में कवि जो देखता है, उससे उसे जीने की एक नयी दिशा मिलती है। पेड़ों का निर्मल व्यक्तित्व अपने प्राकृतिक सौन्दर्य से कवि की थकान हर लेता है और उसकें अन्दर जीने की तीव्र इच्छा को और बलवती बना देता है । उदाहरण के लिये कवि के अहाते में खड़ा नीम का पेड़ और उससे लगातार झरते दूध की फुटकियों जैसे फूल कवि को तमाम दुखों से उबार कर तरोताजा कर देते है -

नीम के फूल

दूध की फुटकियों-से झरे

मुलायम-मुलायम

कठोर-भूमि पर बिखरे,

जैसे कोई

प्यार से शरीर स्पर्श करें,

१. गुलमेंहदी, केदारनाथ अग्रवाल पृ० १५१

२. फूल नहीं रंग बोलते है, केदारनाथ अग्रवाल पृ० १५४

दुखो से तनी हुई
नसों की थकान हरे । (१)

केवल बड़े-बड़े छतनार वृक्ष ही नहीं अपितु दरवाजे में उगी हरी-भरी घास भी जिसका कद मुश्किल से चार-छै: अंगुल ऊँचा होता है, कवि को जीवन का गहरा संदेश देने में सक्षम है। कवि को प्रकृति के वाह्य रूप से अधिक उसके आन्तरिक मूल्य-बोध का सौन्दर्य अधिक आकृष्ट करता है । हरी दूब को देखकर कवि उसकी दृढ़ता और सतत जागरूकता का मौन संदेश ग्रहण करता है और उसे ऐसा लगता है कि मैं क्यों न इसी दृढ़ता के साथ अपनी कुंठाओं, कुसंस्कारों और दकियानूसी विचारों से ऊपर उठकर प्रगति के मार्ग पर तन कर खड़ा हो जाऊँ ।क्योंकि व्यक्ति अपने आप में छोटा या बड़ा नहीं होता उसकी संकल्प-शक्ति ही उसके वास्वतिवक कद का निध ारिण करती है । तभी तो कवि हरी घास को देखकर उसके सौन्दर्य से दंग रह जाता है -

हरी घास का बल्लम
    गड़ा भूमि पर
    सजग खड़ा है
छह अंगुल से नहीं बड़ा है
मन होता है
मैं उखाड़ कर इसे मार दूँ
कुण्ठा को गढ़ में पछाड़ दूँ
जहाँ गड़े है भूले मुर्दे
    वहाँ गाड़ दूँ । (२)

केदार के व्यक्तितत्व में कोमलता और कठोरता दोनो का सह अस्तित्व विद्यमान है । वे प्रकृति के परूष रूपों से भी प्रेरणा प्राप्त करते है और उसके कोमल रूपों से भी मंत्रमुग्ध होकर आनन्दित होते हैं । बल्कि वे प्रकृति के कठोर रूपों को भी अपनी सौम्य दृष्टि से मधुर बना लेते है । इसीलिए प्रकृति की रौद्र भाव-भंगिमा भी कवि को कुछ देकर ही जाती है, छीनती कुछ भी नहीं है । केदार को फूलों से बहुत प्यार है । वे अपने आँगन में अनेक प्रकार की लतायें और फूलों के पौधे उगाने के शौकीन हैं । रक्ताभ गुलाब, पीला गेंदा और बोगनबेलिया के खूबसूरत फूल सुबह होते ही कवि का स्वागत करने के लिए अपनी बाहें फैला देते है । सारा घर ऐसा लगने लगता है जैसे सूरज की आगवानी में बसन्तोत्सव मना रहा है -

खूब फूली खड़ी है
रंगारंग हुई,

---

१. फूल नहीं रंग बोलते है, केदारनाथ अग्रवाल पृ० १०९
2. वही, पृ० १७०

मेरे आँगन की
बोगनबेलिया
झाँकता देखता हूँ
उल्लसित हुआ सूरज
मेरी बोगनबेलिया को,
पहने है जो
तुहिनमाल का नौलखा हार
झूलती झूमती जो मनाती है
बंसतोत्सव (१)

(2) नागार्जुन का वस्तुगत-सौन्दर्य

(क) मानवीय-सौन्दर्य :-

नागार्जुन कलावादी कवि नही है । उनकी कविता में वस्तु की प्रधानता है और वस्तु भी वह, जिसका सम्बन्ध यर्थाथ जगत से है । वस्तुत: वे मानवीय-सौन्दर्य के शिल्पी हैं । उनकी कविताओं में मनुष्य जीवन को महिमामंडित नहीं किया गया । उन्होंने मनुष्य के यर्थाथ-जीवन को चित्रित करने में ही पूरा जोर दिया है । मनुष्य-समाज जिस रूप में कवि को दिखायी देता है उसे उसी रूप में उन्होंने चित्रित किया है । इस चित्रण में एक उल्लेखनीय बात यह है कि एक ओर जहाँ सर्वहारा वर्ग उनके स्नेह और सहानुभूति का पात्र है, वहीं दूसरी और पूँजीपति वर्ग उनकी घृणा और उनके आक्रोश का कारण है । उनकी कविता का सौन्दर्य इस बात में है कि वे सच्चे हृदय से सर्वहारा के प्रति अपनी आत्मीयता और इनके भले की चिन्ता करते दिखायी देते है । वे जन-शक्ति के ऊपर इतना दृढ़ विश्वास करते है कि उन्हें आने वाला कल साफ-सुथरा और धन-धान्य से परिपूर्ण सबके लिए समान सुविधायें देने वाला दिखायी देता है -

मै निष्ठापूर्वक सोच रहा -
कल, व्यक्ति व्यक्ति के. हेतु सुलभ होंगे
अवश्य मौक्तिकाऽऽभरण !!
हे कोटिशीर्ष हे कोटिबाहु हे कोटिचरण ! (२)

सर्वहारा के प्रति नागार्जुन की संवेदना दिखावटी नही है । वे उन लोगों के बीच में उठते-बैठते यात्रा करते बराबर यह सोचते रहते है कि क्या सचमुच वे अन्दर से उन लोगों के साथ आत्मगत संवेदना अनुभव कर रहे है या नही । यह कार्य कहने में जितना आसान है, करने में उतना

---

१. आत्मगंध, केदारनाथ अग्रवाल पृ० १४०
२. युगधारा नागार्जुन पृ० ११

ही कठिन । वे अपनी कविताओं में इसलिए बार-बार इस सवाल को उठाते है कि कहीं सर्वहारा के प्रति दर्शायी गयी सहानुभूति केवल ऊपरी दिखावा तो नही है । 'घिन तो नही आती है ?' कविता उनकी इसी चिन्ता को व्यक्त करती है । इस कविता की निम्नलिखित पंक्तियाँ उदाहरण के लिये प्रस्तुत हैं जिनमें कवि ने मनुष्य के अन्तर्मन को बड़ी बारीकी से टटोलने का प्रयास किया है -

कुली- मजदूर है
बोझा ढोते है, खींचते ठेला
धूल-धुआँ भाप से पड़ता हैं साबका
थके-माँदे जहाँ-तहाँ हो जाते है ढ़ेर
सपने में भी सुनते हैं धरती की धड़कन
आकर ट्राम के अन्दर पिछले डिब्बे में
बैठ गये है इधर-उधर तुमसे सटकर
आपस में उनकी बतकही
सच-सच बतालाओ,
नागवार तो नहीं लगती है ?
जी तो नहीं कुढ़ता है ?
घिन तो नहीं आती है ? (१)

कवि लगातार इन लोगों के बारे मे सोचता है कि कड़ी मेहनत-मजदूरी करने के बाद भी भर पेट भोजन, पहिनने के लिये कपड़ा और रहने के लिये छोटी-सी छत भी नही जुटा पाते हैं । कवि का ह्रदय जब इस वर्ग के लोगो को देखता है, तो अनायास ही उसके ह्रदय में अपनेपन का भाव उमड़ने-घुमड़ने लगता है । वह देखता है कि कुछ श्रद्धालु ट्रेन-यात्री गाड़ी की खिड़की से श्रद्धावश गंगा के पुल से गुजरते समय गंगा में पैसे फेंकते है और मल्लाहों के छोटे-छोटे बच्चे उन पैसों को खोजने के लिये गंगा में डुबकी लगाते है और घण्टों उन पैसों को खोजने में व्यस्त रहते हैं । उनके लिये दो-चार पैसों की भी इतनी कीमत है कि वे अपनी जान की परवाह किये बिना गंगा की तेज धारा में कूद पड़ते हैं । मल्लाहों के इन बच्चों को देखकर कवि का मन अपार श्रद्धा से भर उठता है । उसे लगता है कि ये छांटे-छोटे बच्चे चतुर्भुज विष्णु के ही मानों अवतार हों । कवि उनके श्रम-सौन्दर्य से इतना अभिभूत है कि वह गंगा मइया से उनके लिये विनम्र निवेदन करता है -

देखना ओ गंगा मइया
निराश न करना इन नंग-धड़ंग चतुर्भुजों को !

---

१. नागार्जुन, प्रभाकर माचवे पृ० ६०-६१

कहते हैं निकली थी कभी तुम
बड़े चतुर्भुज के चरणों में निवेदित अर्ध-जल से
बड़े होंगे तो छोटे चतुर्भुज भी चलाएँगे चप्पू
पुष्ट होगा प्रवाह तुम्हारा इनके भी श्रम-स्वेद-जल से
मगर अभी इनको निराश न करना
देखना ओ गंगा मइया ।(१)

नागार्जुन को श्रमशील मनुष्यों मे अद्‌भुत सौन्दर्य दिखायी देता है । वे एक श्रमिक के प्रति इतना आदर-भाव रखते हैं कि उसके सामने एक कवि भी कमजोर दिखायी पड़ता है । वे बड़ी सूक्ष्मता के साथ एक मजदूर के श्रम-सौन्दर्य का आंकलन करते हैं और यह अनुभव करते हैं कि वह जी भर मेहनत करने के बावजूद प्रसन्न चित्त रहता है । उसका मन दुश्चिन्ताओं से घिरा नहीं रहता । जबकि एक कवि कल्पना की दुनियाँ में विचरण करता हुआ भी उस आनन्द को प्राप्त नहीं कर पाता, वह चैन से सो नहीं पाता । मजदूर के प्रति सम्मान व्यक्त करने के लिये कवि ने उसके समानान्तर एक कवि के जीवन को रखकर मजदूर की श्रेष्ठता प्रतिपादित की है -

वे लोहा पीट रहे है
तुम मन को पीट रहे हो
वे पत्थर जोड़ रहे हैं
तुम सपने जोड़ रहे हो
उनकी घुटन ठहाकों मे घुलती है
और तुम्हारी घुटन ?
उनीदी घड़ियों मे चुरती है ।(२)

ऊपर की पंक्तियों में कवि पर जो हास्य-व्यंग्य किया गया है, उसका अर्थ यह नहीं है कि नागार्जुन कवि-कर्म की सुन्दरता से अपरिचित हैं, बल्कि इसका आशय केवल इतना है कि वे निरा कल्पनावादी कवियों को उतना महत्व नहीं देते । पर जो कवि यर्थाथ जगत से जुड़कर अपनी रचनाएँ करता है और मानवीय मूल्यों का समर्थन करता है, ऐसे क्रान्ति-दृष्टा कवि को नागार्जुन ने बड़े आदर के साथ स्मरण किया है । निराला ऐसे ही कवि थे । नागार्जुन ने निराला के व्यक्तित्व को हृदय से सराहा है, निराला की मानवता और उनका दृढ़ आत्मविश्वास देखकर नागार्जुन उनके सम्मान में बड़े आत्मविभोर होकर भावाभिव्यक्ति करते है -

---

१. नागार्जुन, : चुनी हुयी रचनायें -2 शोभाकान्त मिश्र पृ० १०८
२. वही पृ० १४५

तुम कड़ी साधना में दधीचि को जीत चुके
कोई आए तुमसे सीखे
वह द्वापर वाली शरशय्या की चुभन आज
आए कोई तुमसे सीखे
युग-युग का हालाहल पीना
आए कोई तुमसे सीखे, यह रक्तदान
आए कोई तुमसे सीखे, यह स्वाभिमान । (१)

नागार्जुन की सौन्दर्य दृष्टि परम्परागत मूल्यों पर आधारित नहीं है । वे उन मनुष्यों में सौन्दर्य-दर्शन करते हैं, जो शोषण, उत्पीड़न के विरूद्ध अपनी आवाज बुलन्द करते है । औरों की दृष्टि में बिहार का नक्सलवाद भले ही दुष्कर्म की श्रेणी मे आता हो, किन्तु उनकी दृष्टि में नये युग का आगमन यदि हिंसा से होता हो, तो भी वह वरेण्य है । बिहार में छोटी जातियों के लोग आज भी अपमान का जीवन जीने के लिए विवश हैं । जब कवि यह देखता है कि कोई शोषित इस अपमान के विरोध में कमर कस कर खड़ा हो गया है, तो वह कवि को सहज में ही अपनी ओर आकृष्ट कर लेता है । एक विशेष घटना के सन्दर्भ में जब नागार्जुन जेल के अन्दर सात भूमिहीन मेहनत-मजदूरी करने वाले चमार जाति के अभियुक्तों से मिलता है और जब उनकी जेल-यात्रा का वास्तविक कारण जान लेता है, तो उसे उनके द्वारा की गई हिंसा पर गर्व होने लगता है । उसे यह आशा बँधती है कि ऐसे ही दृढ़ संकल्प वाले लोग सामाजिक परिवर्तन का सच्चा नेतृत्व कर सकते है । वह उनकी प्रशंसा में एक लम्बी कविता लिखता है, जिसमें उसके ह्रदय की श्रद्धा और विश्वास का भाव स्पष्ट होता है -

धरती ने आधार दिया है
सूरज ने दी है गरमाई !
इसकी गति से पवन त्रस्त है
फुर्ती से बिजली शरमाई :
लील सकेगा इन्हें न कोई
इनको कौन पचा पाएगा ?
निज तिकड़म से इनके बल की
शादी कौन रचा पाएगा ? (२)

नागार्जुन हर वर्ग के शोषित और पीड़ित लोगों के सच्चे हमदर्द हैं । उनकी दृष्टि समाज के जब उच्च वर्ग पर पड़ती है तो उनका ह्रदय घृणा और आक्रोश से व्याकुल हो उठता है और

१. नागार्जुन, : चुनी हुयी रचनायें -2 शोभाकान्त मिश्र पृ० १५०
२. वही, पृ० २३५

जब वे निम्न-मध्य वर्ग या निम्न वर्ग पर दृष्टिपात करते है तो उनका ह्रदय करूणा से भर जाता है । उनकी कविता का प्रिय विषय मनुष्य-समाज का यही दबा-कुचला वर्ग है । इसीलिए उनका ध्यान प्रायः समाज के कमजोर वर्ग का चित्रण करने की ओर रहता है । छोटे बाबू की दयनीय स्थिति उन्हें अपनी ओर आकृष्ट करती है । छोटे बाबू की जिन्दगी अतिव्यस्त है, उसे दिन भर कार्यालय में सर खपाना पड़ता है, पर महीने के अन्त में उसे जो वेतन मिलता है, उससे परिवार की आवश्यकतायें पूरी नहीं हो पाती । कवि को उसके जीवन पर तरस भी आता है और उसके प्रति आत्मीय-बोध भी जागता है । उसे चिन्ता है कि -

पर, छोटे बाबू का होगा कैसे बेड़ा पार
इन बेचारों को मिलती है सधी-बँधी तनख्वाह
पा जाते हैं नाममात्र मँहगाई का भत्ता भी
फिर भी क्या पूरा पड़ता है ?
बुरा हाल है
दुनियादारी का यह छकड़ा
खींच नही पाते हैं
बिना मौत के मरे बेचारे
नींद नही आती है, गिनते छत की कड़ियाँ आसमान के तारे !
कभी न देखी जेल
इसीलिए क्या बेचारे की यह दुर्गत है ? (१)

नागार्जुन का सौन्दर्य बोध सतही नहीं है । वे सौन्दर्य के स्थापित मानकों से अलग हटकर जीवन-यर्थाथ में सौन्दर्य का साक्षात्कार करते है । सामाजिक सत्य का निरूपण करना ही उनके लिये सौन्दर्य का पर्याय है, इसीलिए वे मनुष्य-जीवन के उन अंशों का चित्रण करने में विशेष रूचि प्रदर्शित करते हैं, जो परम्परावादियों की दृष्टि में असुन्दर माने जाते है । नागार्जुन उस सिपाही को सुन्दर मानते हैं, जो अपने देश के लिए मर मिटने का संकल्प लेकर सरहद पर मोर्चा संभालता है और अपने देश के लिए शहीद हो जाता है । उस सैनिक का पद नागार्जुन की दृष्टि में बहुत बड़ा है, बहुत सुन्दर है, भले ही वह सेना का नायक न हो । विशिष्ट की अपेक्षा सामान्य के प्रति आदरभाव प्रदर्शित करना और उसके सामाजिक योगदान को स्मरण करना नागार्जुन का स्वभाव है । वे सैनिक को नमन करते हुए लिखते हैं-

वह कोटि-कोटि की तरूणाई का है प्रतीक
वह देशभक्ति का अर्थ जानता है ठीक-ठीक

---

१. युगधारा नागार्जुन पृ० ९७

अलसी के ताजे फूल बटोरे नील गगन
अमराई की मंजरियों में ऋतु रहे मगन
पर उस उसका मन है हिम-कुसुमों का चंचरीक
वह कोटि-कोटि की तरूणाई का है प्रतीक । (१)

नागार्जुन मनुष्य के रूप और आकार की अपेक्षा उसके कर्म को वरीयता देते हैं । उनकी दृष्टि में कर्म-सौन्दर्य ही मनुष्य की सुन्दरता का सच्चा मापक हो सकता है । यही कारण है कि वे उन लोगों के प्रति अपना शत-शत प्रणाम निवेदित करते हैं, जिन्होंने मानवतावाद की कसौटी पर स्वयं को खरा सिद्ध किया है । रूस के प्रसिद्ध कथाकार गोर्की की जन्मशती के शुभ अवसर पर वे उसके कृतित्व का ही स्मरण करते हुये अपनी श्रद्धा अर्पित करते हैं । गोर्की ने जिस प्रकार सर्वहारा के दु:खदर्द को अपने उपन्यासों में अंकित किया है और उनके अन्दर जो आत्मविश्वास जाग्रत किया है, वह नागार्जुन के लिए निरन्तर प्रेरणा का स्रोत रहा है । मजदूर वर्ग के सबसे हितैषी के रूप में गोर्की के प्रति श्रद्धा-सुमन अर्पित करते हुए नागार्जुन ने लिखा है -

अनुपम तुम स्वयंभू-शिरोमणि विलक्षण कथाकार !
कोटि-कोटि हृदयों में कर गये हो स्फूर्ति का संचार !!
दे गये हो सर्वहारा को मुक्ति का मंत्र
कह गये हो, हासिल होगा कैसे सर्व-सिद्ध तन्त्र
ओ हे, इस युग के द्वैपायन व्यास
गुम्फित था तुम्हारी साँसो में
जनता की जीत का अटूट विश्वास
गोर्की मखीम !
श्रमशील विश्व के पक्षधर असीम !! (२)

नागार्जुन उदार मानवतावाद के पोषक कवि हैं । उन्हें जातियों और वर्गो में विभक्त समाज असुन्दर लगता है । इसलिए उन्होंनें अपने अन्दर वैचारिक स्तर पर एक ऐसे समाज का चित्र बना रखा है, जिसमें जाति और सम्प्रदाय की संकीर्णताओं के लिये कोई स्थान नहीं है । एक आप बीती घटना को कविता के रूप में प्रस्तुत करते हुए नागार्जुन ने अपने मन के साम्प्रदायिक सौहार्द को जिस तरह उभारा है, उससे उनकी मानवीय सौन्दर्य-दृष्टि का अनुमान लगाया जा सकता है । मेरठ में हिन्दू-मुसलमानों के बीच गहरी खाई है और यह खाई इतनी बढ़ गयी है कि एक हिन्दू अपने सजातीय से ही सारे सम्बन्ध रखना चाहता है, विजातीय लोगों के साथ उसका कोई सरोकार नही है । यह दूरी इतनी बढ़ गयी है कि एक हिन्दू जब गंगा स्नान करने के लिए जाता है तो

---

१. नागार्जुन, : चुनी हुयी रचनायें -2 शोभाकान्त मिश्र पृ० १४९
२. वही, पृ० १८६

हिन्दू रिक्शावाले के रिक्शे पर ही बैठकर जाता है, किसी मुसलमान के रिक्शे पर नहीं । कल्लू नाम का एक मुसलमान अपने बच्चों का पेट पालने के लिए इसी कारण हिन्दू बाना धारण कर लेता है ताकि उसे अपनी रोजी कमाने मे आसानी हो सकं । वह अपने गले में रूद्राक्ष की लम्बी माला पहन लेता है । माथे पर चंदन का तिलक लगा लेता है, और जोगिया रंग का कुर्ता पहन लेता है, यहाँ तक कि कल्लू से प्रेम प्रकाश बन जाता हं । जब नागार्जुन को इस सत्य का पता चलता है तो उनका हृदय द्रवित हो जाता है । वे उसकी प्रशंसा करते हुए कहते है कि -

सच बेटा प्रेम प्रकाश
तूने मेरा दिल जीत लिया !
लेकिन तू अब इतना तो जरूर करना
मुझे उस नाले के करीब
ले चलना कभी
उस नाले के करीब
जहाँ कल्लू का कुनवा रहता है !
मै उसकी बूढ़ी दादी के पास,
बीमार अब्बाजान के जान
बैठकर चाय पी आऊँगा कभी !
कल्लू के नन्हे-मुन्ने
मेरी दाढ़ी के बाल
सहलायेंगे ....और .... (१)

नारी-सौन्दर्य :- नागार्जुन मानवीय-सौन्दर्य के सच्चे पारखी है उनके लिए किसी व्यक्ति के शारीरिक सौष्ठव का उतना महत्व नहीं है जितना वे इसके जीवन मूल्यों से प्रभावित होते है । सौन्दर्य चाहे पुरूष का हो, चाहे स्त्री का, वे मात्र वाह्य साज-सज्जा के कभी भी प्रशंसक नहीं रहे है । जयति नखरंजनी' कविता उनकी नारी सौन्दर्य विषयक दृष्टि को उजागर करती है । दिल्ली की तीन फैशनपरस्त युवतियाँ वोट डालने के लिए एक पोलिंग बूथ में आती है, पर वहाँ एक अधेड़ व्यक्ति की अंगुली में वोट डालने के निमित्त लगाया गया काली स्याही का निशान देखकर सहम जाती है। वे अन्ततः यह निश्चय करती है कि काली स्याही का निशान लगवाने से अच्छा यह है कि हम बिना वोट डाले ही वापस लौट जायें और उनके इस सोच के कारण तीन वोट व्यर्थ में ही पड़ने से रह गये । कविता की अन्तिम पंक्तियों में कवि ने उसके इस व्यवहार पर एक तीखा व्यंग्य किया है, जिससे यह स्पष्ट होता है कि वह नारी के वाह्य सौन्दर्य की अपेक्षा उसके आन्तरिक-सौन्दर्य को अधिक महत्व देता है -

---

१. ऐसे भी हम क्या ! ऐसे भी तुम क्या ! - नागार्जुन पृ० १६

गुनगुनाता रहा वही
बार-बार एक युवक
जयति नखरंजनी !
जयति दृग - अंजनी !
भक्त - भ्रम - भंजनी !
नव युग निरंजनी । (१)

हृदय की पवित्रता और सहजता ही कवि की दृष्टि में नारी-सौन्दर्य का मूल मंत्र है । किसी की आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक हैसियत बहुत बड़ी होने पर भी वह तब तक सुन्दरता की कसौटी में खरा नही उतर सकता, जब तक उसका हृदय साफ-सुथरा न हो । एक सामान्य परिवेश की लड़की कवि को केवल इसीलिए सुन्दर लगती है, क्योंकि वह जीवन में बहुत कुछ कष्ट झेलने के बाद भी अपने हृदय की निर्मलता बनाये रखती है । ऐसा ही सहज स्वभाव कवि को अपनी ओर खींचता है -

कदम-कदम पर मुसकाती है
बात-बात पर हँस देती है
दिल का दर्द कभी नहीं जाहिर करती है
सच बतलाना, कभी उसास नहीं भरती है ?
मुझको तो लगता है, तूने बहुत-बहुत सा जहर पिया है
धीरे-धीरे सारा ही विष पचा लिया है
शोधित विष का सुधा-तुल्य यह झाग जब कभी
उफन-उफनकर बाहर आता
दुनिया को लगता है : रे, रे ! परजाते के फूल झर रहे
इस लड़की के होठों से तो .... (२)

नागार्जुन मूलतः भारतीय संस्कृति के अनुरूप जीवन-जीने वाली नारी को सुन्दर मानते हैं, उन्हें जब अपनी पत्नी का ध्यान आता है तो भी सबसे पहले उसका सिन्दूर तिलकित भाल उनके स्मृति-पटल पर उभरता है । इस सिन्दूर तिलकित भाल की शुचिता और सुन्दरता के सामने मात्र आंगिक-सौन्दर्य का कोई मूल्य नहीं है । सिन्दूर तिलकित भाल वाह्य सौन्दर्य का पर्याय मात्र नहीं है, उसके एक स्त्री का सम्पूर्ण स्त्रीत्व प्रकट होता है । उसका आत्म समर्पण, पतिपरायणता और उसके सामाजिक बोध का प्रतीक है-यह सिन्दूर का तिलक -

घोर निर्जन में परिस्थिति ने दिया है डाल !
याद आता है तुम्हारा सिंदूर तिलकित भाल ! (३)

---

१. नागार्जुन, : चुनी हुयी रचनायें -2	शोभाकान्त मिश्र	पृ० १२३
२. सतरंगे पखों वाली,	नागार्जुन	पृ० २७
३. नागार्जुन,	प्रभाकर माचवे	पृ० २९

मातृत्व नारी-सौन्दर्य का सबसे प्रभावशाली पक्ष है । एक विवाहिता स्त्री की सुन्दरता का आंकलन इस बात से किया जाता है कि वह पुत्रवती है या नही । नारी-सौन्दर्य पर दृष्टिपात करते समय नागार्जुन इस तथ्य को बराबर ध्यान में रखते है । पुत्र पाकर स्त्री का जीवन सफल हो जाता है । इसलिए हर स्त्री माँ बनने का मोह संवरण नहीं कर पाती । गौतमी अपने पति से जो अनुरोध करती है वह निःसंकोच अपने मन की बात उसके सामने प्रकट करने से स्वयं को रोक नहीं पाती । गौतमी का यह कथन उसके सौन्दर्य को उजागार करता है और वह इस ओर भी संकेत करता है कि नागार्जुन सौन्दर्य को उसकी सामाजिक पृष्ठभूमि में ही प्रशंसा के योग्य मानते है । उदाहरण के लिये निम्न पंक्तियाँ दृष्टव्य है -

भगवन, अमिताभ, सहचर मैं चाहती
चाहती अवलंब, चाहती सहारा
देकर तिलांजलि मिथ्या संकोच को
हृदय की बात लो, कहती हूँ आज मैं
कोई एक होता
कि जिसको
अपना मैं समझती
भले वह पीटता, भले ही मारता
किन्तु, किसी क्षण में प्यार भी करता
जीवन-रस उड़ेलता मेरे रिक्त पात्र में,
भूख मातृत्व की मेरी मिटा देता,
स्त्रीत्व का सुफल पाकर अनायास
धन्य मैं होती ! (१)

नागार्जुन की नारी के प्रति गहरी श्रद्धा है । वह उसके सम्मान के प्रति निरन्तर जागरूक है । 'पाषाणी' कविता में अहल्या उद्धार के पौराणिक प्रंसग को नई पृष्ठभूमि मे कवि ने देखने का प्रयास किया है । अहल्या के उदात्त-चरित्र को सुनकर राम रोमांचित हो उठते है और उसके साथ हुए परिस्थितिजन्य अनाचार से उसे मुक्ति प्रदान करते है । अहल्या की पवित्र गाथा से राम शपथ लेते है कि वे आजीवन एक नारी व्रत का पालन करेंगे और किसी भी परिस्थिति में स्त्री जाति के साथ क्रूरता का व्यवहार नही करेंगे । वे अहल्या को वचन देते है -

नही करूँगा सपने में भी, अब,
क्रयक्रीत दासी का भी अपमान
छू कर, देवि, तुम्हारे दोनो पैर,
होता हूँ मैं आज प्रतिज्ञाबद्ध । (२)

---

१. युगधारा, नागार्जुन, पृ0 18-19
२. वही पृ0 42

इन पंक्तियों मे राम ने अहल्या के समक्ष जो प्रतिज्ञा की है, वह नागार्जुन के व्यक्तित्व को उजागार करती है । नारी के प्रति नागार्जुन के मन का आदर भाव कितना गहरा है, यह इस बात का प्रमाण है । इसी प्रकार बी0एन0 कालेज में हुए गोलीकाण्ड में अनेक छात्रों की असामयिक मृत्यु हो गयी थी । चारों तरफ आतंक व्याप्त हो गया था । जिनके घरों के लड़के वहाँ मारे गये थे वे सभी लोग विलाप करते हुए घटना स्थल पर एकत्र होते है । ऐसे कठिन अवसर में स्त्रियों का धैर्य काम नही करता । उनके हृदय में जिस तरह की भावनायें उद्वेलित होती है, उन्हें कवि ने 'ऐसा क्या अब फिर-फिर होगा' कविता में बहुत सूक्ष्मता से अंकित किया है । उन स्त्रियों की आँखे उनके दुःख का बिना कुछ कहे व्यक्त कर रही है-

भूल सकूँगा सिन्दूरित सीमन्त लिए उस नव युवती की
'ईस-ईस' ही मुखर टीस ?
घुटती-सी साँसें ?
घायल नजरों पर पलकों की पूरी पट्टी ?
गोरी ग्रीवा की नलियों में भिंचे-भिंचे से प्राण ?
चम्पई देह, काँपती कनकलता-सी-............भूल सकूँगा ? (१)

यह दृश्य अविस्मरणीय है । कवि सोचता है कि कहीं ऐसा न हो कि इस नव युवती का पति भी पुलिस की नादिरशाही का शिकार हो गया हो । यदि ऐसा हुआ होगा तो इस नव युवती का भविष्य वैधव्य भी भीषण यातना से भर जायेगा । यह सोच कर कवि का हृदय काँप उठता है । स्त्री जाति के प्रति कवि की यह चिंता और उनकी समस्याओं के प्रति उसकी संवेदना वस्तुतः उसकी सौन्दर्य-दृष्टि के परिचायक है । वे नारी के मात्र कायकि सौन्दर्य के उपासक नहीं है, नारी के सुख-दुःख और आत्म सम्मानन का ध्यान बराबर रहता है । उनके साथ हो रहे अन्याय और अनाचार का उन्होने तीव्र विरोध किया है ।

(ख) प्रकृति-सौन्दर्य -

प्रकृति आदिकाल से ही कवियों के लिये आकर्षण का केंन्द्र रही है । प्रगतिशील कवि भी प्रकृति के नाना रूपों से आकृष्ट हुये है । यद्यपि इनके लिए प्रकृति मनुष्य-जीवन की पीड़ा से ऊब कर शान्ति पाने का विश्राम स्थल नहीं रही । या तो इन कवियों ने प्रकृति के प्रकृत-सौन्दर्य से मुग्ध होकर उसकी छवियाँ उतारी है या फिर मानव-जीवन के हर्ष-विषाद को चित्रित करने के लिये प्रकृति का उपयोग किया है । नागार्जुन ने अपनी कविता में प्रकृति को इन दोनों ही रूपों में अंकित किया है । वे प्रकृति के नैसर्गिक सौन्दर्य से आकृष्ट होकर उसकी भिन्न-भिन्न मुद्राओं के सुन्दर चित्र खींचते है । उनके यहाँ सर्वाधिक चित्र पावस ऋतु से सम्बन्धित है, तथापि उन्होंने बसन्त,

---

१. नागार्जुन : चुनी हुयी रचनायें शोभाकान्त मिश्र पृ० १०९

शिशिर, ग्रीष्म आदि ऋतुओं का भी सौन्दर्य पूरे मनोयोग के साथ अंकित किया है । ऋतुओं के अतिरिक्त नदी, सागर, चन्द्रमा, सूरज, तारे, वृक्ष, खेत-खलिहान आदि को भी उन्होंने पूरी रूचि के साथ कविता का विषय बनाया है ।

पावस ऋतु का सौन्दर्य आकाश में विचरण करने वाले बादलों से होता है । यही बादल वस्तुत: पावस ऋतु के आगमन की सूचना देते हैं । आकाश में हवा के साथ-साथ उड़ने वाली बगुलों की पंक्ति ऐसी दिखयी देती है, मानो यमुना के श्यामल सलिल में कोई सफेद कमल-पुष्पों की लम्बी-लड़ी अविरल गति से बह रही हो । ये बगुले वर्षागमन के आरम्भ में ऐसे दिखायी देते हैं, मानों प्रकृति शुभ्र पताका फहराकर पावस के आने की सूचना प्रसारित कर रही हो-

उड़ी जा रही नील गगल में
पवन पंख पर विमल पताका
मानो विस्तृत कालिंदी के
श्याम सलिल में अविरल गति से
बहती चली जा रही कोई
श्वेत सहस्त्र-पत्र पद्मों की
बनी बनायी सुन्दर माला
पावस की आगमन सूचना
देने आयी प्रकृति सुन्दरी
फहरा कर निज विमल पताका ।(१)

पावस के आते ही आकाश में मेघ गर्जन होने लगता है, बिजली चमकने लगती है । मेढ़क टर्राने लगते हैं, धरती रस-सिक्त हो जाती है । यह देखकर कवि का ह्रदय नाच उठता है। वह बादलों के सौन्दर्य से इतना अभिभूत होता है कि उसे सारा वातावरण संगीतमय प्रतीत होने लगता है । अपनी प्रसन्नता को कवि ने इन शब्दों में व्यक्त किया है -

धिन-धिन धा धमक-धमक
मेघ बजे
दामिनि यह गयी दमक
मेघ बजे दादुर का कण्ठ खुला
मेघ बजे
धरती का ह्रदय धुला
पंक बना हरिचन्दन

---

१. सरस्वती - सितम्बर १९४४

मेघ बजे

हलका है अभिनन्दन

मेघ बजे

धिन-धिन ध .... (१)

बादल के सौन्दर्य को नागार्जुन ने जिस उत्साह के साथ अंकित किया है और जितनी बड़ी संख्या में उन्होंने इस विषय पर कविताएँ लिखी हैं, उतनी अन्य कवियों ने नहीं । बादलों की अलग-अलग मुद्राओं को नागार्जुन ने बड़े चाव के साथ अंकित किया है । बादल चाहे जितने काले और गरजने-तरजने वाले हों, नागार्जुन को उनके दर्शन से आनन्द की ही अनुभूति होती है । वे देखते हैं कि बादलों के आने के साथ ही धरती का रोम-रोम उल्लसित हो जाता है-

झुक आए कजरारे बादल

कूक उठे मोर

टर्राए मेढ़क

पहुँचकर धरती के छोर पर

दम साध लिए धरती ने .... (२)

बादल कई दिनों तक छाये रहते है और पानी की झड़ी लगाये रहते है, तो किसी को उकताहट हो सकती है लेकिन नागार्जुन को इन बादलों के साथ दिन बिताने में हमेशा आनन्द ही आता है । बादल जब बरसाना आरम्भ करते है, तब धरती के काफी निकट आकर छा जाते है। कवि को ऐसा लगता है कि बादलों की यह छाया काफी दिनों तक लगातार बनी रहे, तो अच्छा लगेगा । कवि बादलों को सम्बोधित करते हुये कहता है -

झुक आए हो ?

बस अब झुके ही रहना !

इसी तरह इत्मीनान से बरसते जाना हौले-हौले

हड़बड़ी भी क्या है तुमको !

ओ रे मेघराज तुम्हारी यह छाया -छत

यों ही तनी रहे सारा दिन, सारी रात ....

विराट, अघोर, स्निग्ध-धूसर शामियाना

देखों भई, हटा न ले जाना

बुरा लगेगा धरती रानी को तुम्हारा वो मखौल (३)

---

१. नागार्जुन, : चुनी हुयी रचनायें -2 शोभाकान्त मिश्र पृ० १५८

२. वही, पृ० १२४

३. वही पृ० १९८

बादलों के प्रति कवि का यह आकर्षण उसे बादलों के इतने निकट पहुँचा देता है कि कवि पल भर के लिए भूल जाता है कि बादल प्रकृति का अंग न होकर उसके अपने सगे-सम्बन्धी हों और वह उनसे इस तरह बातें करने लगता है, मानों कि वे उसके मित्रवर्ग में आते हों । बादलों से वार्तालाप करने की प्रेरणा नागार्जुन को कालिदास से प्राप्त हुयी जान पड़ती है । बादलों के प्रति नागार्जुन के आकर्षण का एक बड़ा कारण यह भी है कि वे बादलों को करूणा और दया का प्रतीक मानते है और बादलों के परोपकारी रूप से प्रभावित हैं । बादल बिना किसी भेद-भाव के सारी धरती को अपने जल से सिंचित करते हैं और जड़-चेतन सभी का कल्याण करते हैं, बदले में किसी से कुछ नहीं चाहते । एक दृष्टि से बादलों का यह जनवादी दृष्टिकोण कवि के आकर्षण का प्रमुख कारण कहा जा सकता है । बादलों से सबसे ज्यादा आह्लादित होते हैं मजदूर-किसान, क्योंकि बादल ही उनकी जीविका का मुख्य आधार है । बादलों के इसी उदार रूप को स्मरण करता हुआ कवि पावस को अन्य ऋतुओं की अपेक्षा अधिक महत्व देता है -

तना है वितान
भला इनकी महिमा का करे कौन बखान
हो चुका दूबों का, घासों का अमृत नहान
इनकी घटाओं से लदा है आसमान
पता नहीं चलता रात्रिमान था कि दिनमान
सुन रे अभागे, फुहारों के रिमझिम गान
सबके जीवन जुड़ा गये मिला है जीवनदान
टिपिर टिपिर
टिपिर टिपिर
झर झर झर
झर झर झर
रिमझिम झिम रिमझिम रिमझिम
चल खेतों में कस ले कमर
पंक में तिलक है यह त्योहार
सुन ले धरती की मनुहार
रोप रहे होगें कोटि -कोटि जन मगन मन धान
वह तो ऋतु है ऋतुओं में सबसे महान । (१)

पावस यद्यपि उपयोगिता की दृष्टि से सर्वश्रेष्ठ ऋतु है, पर जहाँ तक चाक्षुष-सौन्दर्य का सम्बन्ध है, उसमें वसन्त को ही ऋतुराज की संज्ञा मिली है । नागार्जुन ने बसन्त ऋतु के भी अनेक

---

१. तुमने कहा था, नागार्जुन पृ० ९०

सुन्दर चित्र अंकित किये है । बसन्त आनन्द और उल्लास की ऋतु है । बसन्त के आने के साथ ही पेड़-पौधे फूलों-फलों और नव पल्लवों से आच्छादित हो जाते है । प्रकृति-सुन्दरी का सारा शरीर इतना सुसज्जित हो जाता है कि लगता है मानो कोई सौभाग्यशाली नायिका अपने प्रियतम से बहुत दिनों के बाद मिल रही हो -

ऋतुपति ने कर लिए खूब आत्मसात्
हरे-हरे नए-नए पात
ढ़क लिए अपने सब गात
पकड़ी का सयाना वो पेड़
कर रहा गुप-चुप ही बात
ढ़क लिए अपने सब गात
चमक रहे
दमक रहे
हिल रही डुल रही खिल रही खुल रही
पूनम की फागुनी रात
पकड़ी ने ढ़क लिए सब अपने गात । (१)

नागार्जुन ने विभिन्न ऋतुओं के आगमन की संकेतात्मक सूचना, उन ऋतुओं से सम्बन्धित पक्षियों के माध्यमों से दी है । यदि पावस के आने की सूचना आकाश में उड़ती हुई बगुलों की पंक्ति से मिलती है, तो बसन्त ऋतु आने की सूचना कोयल की कूक से पता चल जाती है । आम के बगीचें में कोयल के कूकने के साथ ही सारी प्रकृति अपना साज-श्रृंगार करने लगती हैं और इसका प्रभाव जन-मानस पर भी उसी प्रकार पड़ता है । युवक-युवतियाँ तो आनन्दित होते ही हैं, वृद्ध-जनों में भी एक विचित्र उल्लास दृष्टिगोचर होने लगता है -

दूर कहीं पर अमराई में कोयल बोली
परत लगी चढ़ने झींगुर की शहनाई पर
वृद्ध वनस्पतियों की ठूँठी शाखाओं में
पोर-पोर टहनी-टहनी का लगा दहकने
टूसे निकले, मुकुलों के गुच्छे गदराए
अलसी के नीले फूलों पर नभ मुस्काया
मुखर हुई बाँसुरी, उँगलिया लगी थिरकने
पिचके गालों तक पर है कुकुंम न्योछावर (२)

१. नागार्जुन, : चुनी हुयी रचनायें -2 शोभाकान्त मिश्र पृ० २३९
२. नागार्जुन प्रभाकर माचवे पृ० ४९

बसन्त का सौन्दर्य मैदानी क्षेत्रों में जितना निखरता है, पहाड़ी क्षेत्रों में भी उससे कम मनोरम नहीं लगता । जैसी ऋतु होती है, वैसा ही उसका प्रभाव मनुष्य के मन पर पड़ता है । बसन्त को मौज-मस्ती की ऋतु माना जाता है, इसीलियें कवि के मन में बसन्त को देखकर वैसी ही भावनाए अंकुरित होती हैं । हिमालय की श्रृखलाओं में और सम्पूर्ण पर्वत प्रान्त में बसन्त का सौन्दर्य कवि के हृदय में प्रणय-भावों का संचार करता है और वह इस सौन्दर्य को उसी भाव-भंगिमा में देखते हैं -

ऋतु बसन्त का सुप्रभात था
मन्द-मन्द था अनिल वह रहा
बालारूण की मृदु किरणें थीं
अगल-बगल स्वर्णाभ शिखर थे
एक दूसरे से विहरित हो
अलग-अलग रहकर ही जिनको
सारी रात बितानी होती,
निशाकाल के चिर-अभिशापित
बेबस उनचकवा-चकई का
बन्द हुआ क्रन्दन, फिर उनमें
उस महान सरवर के तीरे
शैवालों की हरी दरी पर
प्रणय कलह छिड़ते देखा है ।(१)

मैदानी क्षेत्रों में बसन्त का सौन्दर्य आम के बगीचे में देखते ही बनता है । आम की मंजरियाँ अपनी सुगन्ध से और अपने सौन्दर्य से ऋतुराज का अभिनन्दन करती-सी प्रतीत होती हैं। कवि उनके आनन्द को सजीव प्राणियों की तरह चित्रित करता है । उसे वे आम्र-मंजरियाँ किन्नर नायिकाओं की तरह नृत्य करती हुयी दिखायी देती है -

रंग-बिरंगी खिली-अधखिली
किसिम-किसिम की गंधो-स्वादों वाली ये मंजरियाँ
तरूण आम की डाल-डाल टहनी-टहनी पर
झूम रही है ....
चूम रही है -
कुसमाकर को ! ऋतुओं के राजाधिराज को !! (२)

१.	नागार्जुन, : चुनी हुयी रचनायें -2	शोभाकान्त मिश्र	पृ० २०
२.	खिचड़ी विप्लव देखा हमने,	नागार्जुन	पृ० ७६

वसन्त और पावस के अतिरिक्त कवि ने अन्य ऋतुओं का भी चित्रण किया है। शिशिरकाल में धूप का आकर्षण सबसे अधिक होता है। कवि दोपहर के समय शिशिर की धूप से नहाकर एक ताजगी का अनुभव करता है और प्रकृति के उल्लास का हिस्सेदार बन जाता है-

यह कपूरी धूप
शिशिर की यह दुपहरी, यह प्रकृति का उल्लास
रोम-रोम बुझा लेगा ताजगी की प्यास। (१)

वसन्त हो या शिशिर कवि को बादलों की याद नही भूलती। हेमन्त में भी जब बादल बरसते है तो कवि का रोम-रोम पुलकित हो उठता है। बादलों की गर्जना उसके कानों को गुदगुदानें लगती है, वह हेमन्ती बादलों को इन शब्दों में चित्रित करता है -

गुदगुदा उठे है
चौकस और चिकने गलियारे
कानों के ....
रोम-रोम में दौड़ गयी है पुलकन
नवम्बर का मासान्त
निशान्त का शेष प्रहर
जी हाँ, चार बजने ही वाले है
हेमन्ती बादल टपका रहे है बूँदें
बड़ी-बड़ी बूँदें, अतिशीतल बूँदे। (२)

नागार्जुन प्रकृति-सौन्दर्य को दूर खड़े होकर देखते भर नहीं है, बल्कि उसे अपने अन्दर आत्मसात् करके एक गहरा आत्मीयबोध भी अनुभव करते है। एक नदी को देखकर कवि उसके सौन्दर्य से इतना मुग्ध होता है कि वह उसके साथ नाना रागात्मक सम्बन्धों में बँध जाता है और इस तरह नदी उसके लिए माँ, बेटी, बहन, बहू, सहेली, प्रेयसी और सुख-दुःख बांटने वाली साथिन बन जाती है -

नाच की थिरकन ....
गीत का अलाप ....
प्यार की सिहरन ....
जीत का हुलास ....
क्या नहीं है वह ?
माँ भी है, बेटी भी है, बहन भी है,

---

१. तालाब की मछलियाँ, नागार्जुन पृ० ११७
२. नागार्जुन, : चुनी हुयी रचनायें -2 शोभाकान्त मिश्र पृ० २५३

वहू भी है !
सहेली भी है, प्रेयसी भी है !
साथिन है सुख-दु:ख की, सब कुछ है ! (१)

नदी का गन्तव्य सागर है सारी नदियाँ चाहे वह किसी भी स्थान से निकली, हों अन्तत: सागर में जाकर विलीन हो जाती हैं । सागर में इतनी जलराशि एकत्र हो जाती है कि दूर-दूर तक जहाँ दृष्टि जाती है, जल की उत्ताल तरंगे ही दिखायी देती है । कवि सिन्धु के इस विस्तार को देखकर गदगद होता है । सिन्धु की सुन्दरता कवि के हृदय में काव्य-सर्जना का मंत्र फूक देती है -

हे सिन्धु, देव तव अभियधार
गदगद होता हूँ बार-बार
तुम आए कल-कल छल-छल कर
उस मान सरोवर से चलकर
पश्चिम हटकर फिर उत्तर से
हिमगिरि के वक्षस्थल पर से
हे सिन्धु देख तव अमियधार
गद्‌गद होता हूँ बार-बार । (२)

नागार्जुन की कविता का भूगोल बहुत व्यापक है । वे सैलानियों की तरह एक स्थान से दूसरे स्थान घूमते रहते हैं, इसलिए उनकी कविता में सागर की गहराई भी है और हिमालय की ऊँचाई भी । हिमालय की हिमाच्छादित चोटियाँ कवि को जितनी सुन्दर लगती हैं, देवदारू के उन्नत पेड़ भी उससे कम आकर्षक नहीं लगते । देवदारू एक ऐसा वृक्ष है, जो हर ऋतु में हरा-भरा बना रहता है । उसकी गणना देव-वृक्षों में की गयी है । उसका नाम भी इसीलिए 'देवदारू' रखा गया है । हिमालय की तलहटियों में विचरण करते हुए नागार्जुन देवदारू के सौन्दर्य से आकृष्ट होते हैं और एक जिज्ञासु की तरह उसकी साज-सज्जा का चित्र अपनी कविता में उतार लेते है -

सजीले, प्रिय देवदार !
कौन भला, तुमको -
यहाँ पर लाया उतार ?
तुम्हारी निवास भूमि
जलधि तल से
ऊपर, अति ऊपर

---

१. नागार्जुन, : चुनी हुयी रचनायें -2 शोभाकान्त मिश्र पृ० १७२
२. पुरानी जूतियों का कोरस : नागार्जुन पृ० ९८

फुट जहाँ सात-आठ-नौ हजार
ओ, हे, तुम
पहाड़ी तरूओं में, पाहुन उदार
सजीले प्रिय देवदार । (१)

वृक्ष अपनी हरीतिमा के कारण सुन्दर तो लगते ही है साथ ही पर्यावरण को संतुलित रखने मे अपनी अहं भूमिका निभाते है । वृक्षों की शाखायें उनके फूल-फल और पत्तियाँ सभी का मानव-जीवन के लिए उपयोग है । कवि वृक्ष की गहराई से जाँच-पड़ताल करता है और उसके अंग-प्रत्यंग को अपनी कविता में उतारने का प्रयास करता है । पतझड़ में वृक्षों की पत्तियाँ सूखकर गिर जाती हैं और जो बचती भी है, उनमें इतनी धूल जम जाती है कि वे अपना सहज-सौन्दर्य खो देती हैं, पर जब पानी बरसता है और उनके ऊपर जमा हुआ मैल धुल जाता है, तो वे पुनः हरी-भरी हो जाती हैं और अपनी सुन्दरता से जन-जीवन में एक नया उल्लास घोल देती है । कवि पत्तियों के इसी सौन्दर्य को अपनी एक कविता में इस प्रकार प्रतिबिम्बित करने का प्रयास करता है-

वर्षा में अनावृत धुले पात
फीके थे कल, आज खुले पात
धूप के जादू मे खिले पात
मस्तानी हवा में हिले पात
जादुई साँचे में ढ़ले पात
भूल गये दाह-दिन-भले पात । (२)

नागार्जुन की कविता में केवल हरे-भरे वृक्षों के सौन्दर्य को ही चित्रित नहीं किया गया, पतझड़ की मार से ठूँठ बन गये वृक्षों पर भी उन्होंने पूरी आत्मीयता और उम्मीद के साथ दृष्टिपात किया है । रूखे-सूखे वृक्षों में पुनः टूसे निकलने की संभावना कवि के सौन्दर्य-बोध को जाग्रत करती है और वे ऋतु परिवर्तन की आशा में उन वृक्षों के तात्कालिक रूप का उदारतापूर्वक अंकन करते है -

नंगे तरू है, नंगी डालें
इन्हें कौन-से हाथ संभाले
खीझ भड़कती, घुटती आहें
झेल न पाती इन्हें निगाहें
कैदी की लँगड़ी मनुहारें
कैसे इनकी सनक उतारें

---

१. नागार्जुन, : चुनी हुयी रचनायें -2 शोभाकान्त मिश्र पृ० २८०
२. वही, पृ० १५८-५९

मौसम के जादू मचलेंगे
कब इनमें टूसे निकलेंगे
हरियाली का छाजन होगा
आसमान कब साजन होगा । (१)

नागार्जुन की प्रकृति-सौन्दर्य से सम्बन्धित कवितायें प्रायः व्यंजनागर्भी होती हैं । प्रकृति का चित्र अंकित करते समय भी उनका अन्तर्मन किसी न किसी स्तर पर मानव-जीवन के हर्ष-विषाद से जुड़ा रहता है और यही कारण है कि प्रकृति का अंकन करते समय मनुष्य-जीवन की छाया उस पर पड़ती हुयी दिखायी देती है । ऊपर के उदाहरण में यद्यपि कवि ने पतझड़ का दृश्य चित्रित किया है, किन्तु वृक्षों की रूखी-सूखी ग्रीष्म से झुलसी हुयी शाखाओं में शोषित-पीड़ित जन-समुदाय की दर्द-भरी झाँकी का आभास भी मिलता है । कविता का सौंदर्य इस बात में है कि कवि ऋतु परिवर्तन के प्रति आश्वस्त है । उसे विश्वास है कि एक न एक दिन ये वृक्ष पुनः हरे-भरे हो जायेंगे ।

पूर्णिमा की चाँदनी अपनी शीतल किरणों से सभी का मन मोह लेती है किन्तु जब परिस्थितियाँ विपरीत हों और मन उदास हो तब चाँदनी को देखकर बड़ी बेचैनी होती है । कवि जेल के सीखचों में कैद है और बाहर चन्द्रमा चारों तरफ दूधिया वातावरण की सृष्टि कर रहा है। इन परिस्थितियों में न तो कवि चाँदनी के सौन्दर्य से मुँह-मोड़ पाता है और न ही उसका पूरा आनन्द ले पाता है । अपनी परवश अवस्था का स्मरण करता हुआ वह चाँदनी के सौन्दर्य को दूर से ही देखकर उसे अपनी कविता में भरने का प्रयास करता है -

वो चाँदनी, ये सीखचे
कैसे गुथें, कैसे बचें
क्योंकर रूकें, क्योंकर रचें
वो चाँदनी, ये सीखचें
याँ ये घुटन, याँ ये कुढ़न
फिर दूधिया माहौल वो
कैसे, रूचें, कैसे पचें
वो चाँदनी, ये सीखचें
कैसे गुथें, कैसे बचें । (२)

यही चन्द्रमा शिशिर की धुंध भरी रात्रि में रूग्ण दिखायी देने लगता है । कवि को ऐसा

---

१. नागार्जुन, : चुनी हुयी रचनायें -2 शोभाकान्त मिश्र पृ० २३९
१. नागार्जुन : प्रभाकर माचवे पृ० ८९

लगता है जैसे शीतलता देने के स्थान पर चन्द्रमा अपने ही रोग से पीड़ित दमे के मरीज की तरह हाँफ रहा हो । चन्द्रमा की सुन्दरता जो कभी कवि के मन को उल्लसित करती थी वह अचानक उसे उदास बना देती है -

शिशिर की निशा
धुंध मे डूब गयी
दिशा दिशा दिशा
भुरभुरी जमीन
गरम है सियारों के मांद
खण्डहर के कोने में
घुग्घू गया फाँद
नखत हुए उदास
खाँसता है चाँद
गगन के बीचों बीच
हाँफता है चाँद
शिशिर की निशा ।(१)

नागार्जुन सौन्दर्य को उसके पूरे विस्तार में देखते है किसी वस्तु को देखकर तत्काल उसके बारे मे कोई राय नही बना लेते । उस वस्तु में छिपी हुयी सम्भावनाओं की ओर उनका ध्यान बराबर बना रहता है । वे जानते है कि बीज का सौन्दर्य उसके अंकुरण में निहित है, इसलिए वे उसी विश्वास के साथ बीज को अपनी कविता का विषय बनाते है । बीज के साथ-साथ जन-जीवन में विकसित हो रही क्रान्ति-चेतना को भी वे भूल नही पाते और उसे भी बीज के आवरण में इंगित कर देते है । इन छोटी-छोटी वस्तुओं में जिस सौन्दर्य का दर्शन नागार्जुन करते है वह उनकी उदात्त दृष्टि का परिचायक है । जीवन के प्रति आशा और विश्वास उनकी कविताओं का उल्लेखनीय पक्ष है । बीज के सौन्दर्य को उद्‌घाटित करते हुए उन्होंने विश्वास व्यक्त किया है कि -

आज मै बीज हूँ
कल रहूँगा अंकुर,
बटुर-बटुर आएगी दुनिया, मुझे देखने को आतुर
आज मै बीज हूँ
अलक्षित, ना-चीज हूँ
गर्क हूँ, धरती की जादुई कोख में । (२)

---

१. ऐसे भी हम क्या ! ऐसे भी तुम क्या ! नागार्जुन पृ० ४५
२. नागार्जुन, : चुनी हुयी रचनायें -2 शोभाकान्त मिश्र पृ० १९५

नागार्जुन की प्रकृति सम्बन्धी कविताओं में उनके आस्थावादी जीवन-दर्शन की छाप सर्वत्र दिखायी देती है । प्रतिकूल परिस्थितियों में भी आशा की किरण उनके हृदय को आलोकित करती रहती है । एक ओर जहाँ साधारण लोग प्रकृति के उग्र रूप से घबड़ा उठते है और उसे कोसने लगते हैं, वही दूसरी ओर नागार्जुन उस उग्र रूप के अन्दर छिपे हुए सौन्दर्य का साक्षात्कार कर लेते हैं और उनके मन का विश्वास बोलने लगता है कि सारी परिस्थितियाँ थोड़े ही समय में अनुकूल हो जायेंगी । इसलिए वे किसी भी परिस्थिति में स्वयं को चिन्तामुक्त रख लेते है । आकाश में छाया हुआ कोहरा भी उन्हें इसलिए सुन्दर प्रतीत होता है क्योंकि उन्हें विश्वास है कि पल भर बाद सूरज चमकेगा और सारी प्रकृति खिल खिलाकर हँस पड़ेगी -

अभी-अभी
कोहरा चीरकर चमकेगा सूरज
चमक उठेगी ठूँठ की नंगी-भूरी डालें
अभी-अभी
थिरकेगी पछिया बयार
झरने लग जायेंगे नीम के पीले पत्ते
अभी-अभी खिलखिलाकर हँस पड़ेगा कचनार
गुदगुदा उठेगा उसकी अगवानी में
अमलतास की टहनियों का पोर-पोर । (१)

त्रिलोचन का वस्तुगत सौन्दर्य

त्रिलोचन जीवन-सौन्दर्य के कवि है । यह जीवन भी टुकड़े-टुकड़े में बँटा जीवन नहीं है, बल्कि समग्र जीवन है, सारा जगत है, जिसका रूप प्रकृति और मानव-कृति, मिलकर बनता है। इन दोनों क्षेत्रों को टटोलने से पता चलता है कि इस सम्पूर्ण जगत में त्रिलोचन की दृष्टि मानव पर अधिक केन्द्रित है, उनकी आवाज मुक्ति के लिये संघर्ष करने वाले मानव के साथ गूँजती है। उन्होंने पूरी सहृदयता से मनुष्य के सुख-दुःख को आत्मसात् करके अपनी काव्य-साधना का विषय बनाया है । उनके काव्य में जिस भाव-भूमि को अंकित किया गया है वह उन्ही के शब्दों में -

....जन जीवन के
चित्र मिलेंगे, घर के वन के सब के मन के
भाव मिलेंगे, ...
भाव उन्हीं का सबका है जो थे अभाव मय
पर अभाव से दबे नहीं जागे स्वभावमय । (२)

---

१. नागार्जुन, : चुनी हुयी रचनायें -2 शोभाकान्त मिश्र पृ० ६०-६१
२. दिगन्त - त्रिलोचन शास्त्री पृ० ६८

(क) मानवीय-सौन्दर्य -

त्रिलोचन जीवन की विविधता को उसकी समग्रता में कविता का विषय बनाते है । मानव-जीवन का हर पक्ष उनके यहाँ चित्रित हुआ है इसे कवि का विकसित सौन्दर्य-बोध कहा जा सकता है । 'ताप के तापे हुये दिन' में कवि ने लिखा है -

मानव का सारा सौन्दर्य- बोध जब विकास करता है
तब इन का अपना क्या योगदान रहता है
आँखें ही इसे देख सकती हैं
मैं उसी समग्रता को देखने का आदी हूँ । (१)

त्रिलोचन व्यक्ति और उनसे निर्मित समाज दोनों को महत्वपूर्ण मानते है, किन्तु वे किसी भी कीमत पर मनुष्य को समाज से अलग करके खंड़ित रूप में देखने के पक्षधर नहीं है । उनके काव्य में वैयक्तिक यर्थाथ का अपना स्थान है, किन्तु समाज के बिना उसकी अलग से कोई सार्थकता नहीं है । व्यक्ति अकेले में बिल्कुल असहाय हो जाता है, एक-दूसरे से अलग होकर मनुष्य जीवन की बाजी हार बैठता है उनकी हार का कारण अपनी व्यक्तिगत सत्ता को अतिरिक्त महत्व देना है इसलिए त्रिलोचन व्यक्ति की तुलना में समाज को अधिक महत्व देते है, उनका मानना है कि-

मानव समाज नर-नारी के हाथों से
व्यक्तियों, समूहों, वर्गो, देशों का रूप लिया करता है
व्यक्ति ही तो मूल है यहाँ जहाँ जो कुछ है,
लेकिन व्यक्ति कितना असहाय है अकेले में
मेले में सभी कितने अलग-अलग होते है । (२)

कवि को मनुष्य की अदम्य जिजीविषा-शक्ति पर अटूट विश्वास है । वे उसके पौरूष से भली-भाँति परिचित है । मनुष्य प्रकृति के साथ लड़कर निरन्तर अपने लिए सुख-सुविधायें जुटाता चला आया है और यह क्रम आज भी चल रहा है । प्रकृति और मनुष्य के द्वन्द और अन्त में प्रकृति पर मनुष्य की विजय को 'नदी: कामधेनु' कविता में गहन ऐतिहासिक बोध और वैज्ञानिक दृष्टिकोण के साथ कवि ने चित्रित किया है । पहले मनुष्य नदी को तैर कर पार करता था, फिर उसने नाव से पार किया और फिर उस नदी को बाँध भी लिया, और अब वह उसे कामधेनु की तरह अपनी सुख-सुविधा के लए उपयोग में ला रहा है । उससे बिजली बना रहा है, उसके जल को खेतों मे ले जाकर सिंचाई कर रहा है, मत्स्य-पालन कर रहा है और जाने कितने-कितने रूपों में उसका उपयोग कर रहा है -

---

१. ताप के ताये हुये दिन : त्रिलोचन शास्त्री पृ० ६३
२. वही, पृ० ६२

नदी ने कहा था : मुझे बाँधो
मनुष्य ने सुना और
आखिर उसे बाँध लिया
बाँध कर नदी को
मनुष्य दुह रहा है
अब वह कामधेनु है । (१)

यह बात उन्होंने 'धरती' में भी इंगित की है । मनुष्य, प्रकृति को अपने अधिकार में लेकर उसका मनुष्य-जीवन के लिए उपयोग करने में सक्षम है और वह ऐसा करता भी रहा है। यह इतिहास सम्मत भी है । मनुष्य की उन्नति का यह वैज्ञानिक दृष्टिकोण त्रिलोचन ने इन पंक्तियों में प्रतिपादित किया है -

शक्ति प्रकृति की अति विस्तृत है
और अभी तक वह अविजित है
अधिकृत करके सेवा लेना
सामाजिक उससे समुचित है
यही हमारी मानवता की
उन्नति क्रम का एक सहारा । (२)

त्रिलोचन जहाँ कही वैयक्तिक जीवन को अंकित करते है, वहाँ भी वे उसे समाज और समय के प्रतिनिधि के रूप में उपस्थित करते हैं । जिन कविताओं में व्यक्तिगत जीवन और वैयक्तिक अनुभूतियों को चित्रित किया गया है, उनमें भी निकट से देखने पर पता चलता है कि इनके माध्यम से सामाजिक यर्थाथ को ही अभिव्यक्त किया गया है । उदाहरण के लिए 'नगई महरा' शीर्षक लम्बी कविता मे नगई कहार का जो चरित्र अंकित किया गया है वह अपने आप में एक पूरे समाज की चारित्रिक विशेषताओं को उद्घाटित करता है । पंचायत, दान-डाँड, जाति-गंगा इसी सामाजिकता के प्रतीक हैं । सीधे सपाट शब्दों के पीछे एक समूची दुनिया का चित्र उभरता है -

नगई ने हाथ चलाते चलाते फिर कहा
दुनिया है, दुनिया का ज्ञान है, आदमी है,
आदमी को क्या क्या नहीं जानना है
देखते सुनते और करते ज्ञान होता है
अपनी जब होती है
समझ नई होती है

---

१. ताप के ताये हुये दिन : त्रिलोचन शास्त्री पृ० १३
२. धरती : त्रिलोचन शास्त्री पृ० १३

मेरे लिए समझ पाना कठिन था
पर रूक-रूक कर निकले बोल ये
कहीं ठहर गए थे मेरे मन में
अर्थ बहुत बाद में कुछ कुछ पाया
धारणा बेकार बोझ ढ़ोना ही नहीं है
आदमी बात से व्यवहार से
पहचाना जाता है
समझ ही
आदमी को आदमी से जोड़ती है । (१)

त्रिलोचन समाज को परिवर्तित करने में मानवीय शक्ति को सर्वाधिक महत्व देते है, उन्हें दृढ़ विश्वास है कि मनुष्य ही समाज का वास्तविक सृष्टा है । समाज का भविष्य उसी की शक्ति और कर्मनिष्ठा पर निर्भर है । उन्होंने 'धरती' में स्पष्ट लिखा है कि -

जीवित मानव-महिमा तुम से
तुम मानव-जीवन के धर्ता
तुम मानव-जीवन के कर्ता
तुम मानव-जीवन के हर्ता । (२)

त्रिलोचन समाज की खूबियों और खामियों से परिचित है । वे जानते है कि जब तक समाज में पूँजीवादी-व्यवस्था कायम है, तब तक मनुष्य को सच्चा-सुख और शान्ति नहीं मिल सकती। पूँजीवाद ने मानवीय मूल्यों का गला घोट दिया है । बिना पूँजीवाद को मिटाये मानवीय सौन्दर्य को स्थापित नहीं किया जा सकता -

पूँजीवाद ने महत्व नष्ट कर दिया सबका
जीवन का, जन का, समाज का, कला का
बिना पूँजीवाद को मिटाये किसी तरह भी
यह जीवन स्वस्थ्य नहीं हो सकता
ज्ञान विज्ञान से किसी प्रकार
कोई कल्याण नहीं हो सकता । (३)

कवि को इसीलिए गाँव में रहने वाले गरीब शोषित किसानों और नगर में रहने वाले दैनिक मजदूरों के जीवन को निकट से देखने और उनकी समस्याओं को पूरी सहानुभूति के साथ चित्रित

१. ताप के ताए हुए दिन,	त्रिलोचन शास्त्री	पृ० ७३-७४
२. धरती :	त्रिलोचन शास्त्री	पृ० १५
3. वही		पृ० ९८

करने में गहरी रूचि है । वे किसान-मजदूरों के जीवन-सौन्दर्य को किसी औपचारिकता के कारण चित्रित नही करते, बल्कि वे स्वयं उनके साथ खेत में जाकर किसानी जीवन का प्रत्यक्ष अनुभव करते है और तब कहीं जाकर उस अनुभूत सत्य का उद्घाटन करते हैं -

मैं तुम्हारे खेत में तुम्हारे साथ रहता हूँ
कभी लू चलती है कभी वर्षा आती है कभी जाड़ा होता है
तुम्हें कभी बैठा भी पाया तो जरा देर कभी चिलम चढ़ा ली
कभी बीड़ी सुलगाई
फिर कुदाल या खुरपा या हल की मुठिया को लिए हुए
कभी अपने आप कभी और कई हाथों को लगाकर
काम किया करते हो । (१)

कवि का विश्वास है कि समाज का विकास तभी सम्भव है जब इन किसान मजदूरों को अपेक्षित सम्मान मिलेगा । मजदूरों के काम का महत्व कवि अच्छी तरह जानता है । मानव-सभ्यता को यही किसान और मजदूर वास्तविक रूप देते हैं । कवि इन मजदूरों की श्रम-शक्ति को बार-बार नमन करता है स्वीकार करता है कि -

जब तुम किसी बड़े या छोटे कारखाने में
कभी काम करते हो किसी भी पद पर
तब मै तुम्हारे इस काम का महत्व खूब जानता हूँ
और यह भी जानता हूँ-मानव की सभ्यता
तुम्हारे ही खुरदुरे हाथों में नया रूप पाती है । (२)

नारी-सौन्दर्य -

त्रिलोचन एक सहृदय संवेदनशील कवि है । वे मानवीय-सौन्दर्य के सभी पक्षों का व्यापक चित्रण करने में सिद्धहस्त हैं । उनकी दृष्टि से मनुष्य-जीवन की कोई बात बच नहीं पाती ।पुरूष जिस अनुपात में उनकी कविताओं में आते है, लगभग उसी अनुपात में नारियों को भी उन्होंने अपनी कविता में स्थान दिया है । नारी अनादि काल से पुरूष के आकर्षण का केन्द्र रही है, अपनी भिन्न-भिन्न मुद्राओं में उसने पुरूष का ध्यान आकृष्ट किया है । कवि युवती के सौन्दर्य-दर्शन से न केवल मुग्ध होता है, बल्कि उस सौन्दर्य से अपने जीवन में नये प्राणों का संचार अनुभव करता है । नारी-सौन्दर्य के प्रति अपनी विचारधारा को कवि ने इन पंक्तियों में व्यक्त किया है -

मैंने अगहन के दिन
देखी है मूरत वह

---

१. ताप के ताये हुये दिन : त्रिलोचन शास्त्री पृ० ६०
२. वही पृ० ६०

युवती की
जिस में वह जीवन था
जो जीवन का जीवन होता है । (१)

कवि युवती के सौन्दर्य से इतना प्रभावित होता है कि वह उसके आंगिक-सौन्दर्य का वर्णन करने के साथ-साथ अपने ऊपर पड़ने वाले सौन्दर्य के प्रभाव को भी चित्रित करता है । वह पल भर के लिये स्तब्ध रह जाता है । उसके नख-शिख सौन्दर्य का चित्रण करते समय कवि भली प्रकार जानता है कि वह उस सौन्दर्य का मात्र दर्शक है, तो भी युवती के आंगिक सौन्दर्य के साथ-साथ उसके मनोवैज्ञानिक पक्ष को भी बड़ी सूक्ष्मता के साथ अंकित करता है -

अर्धवृत्त में कंधे
उन पर सुढ़ार ग्रीवा
चिबुक, अधर, नासिका, आँखे, भौहें, मस्तक,
फिर केशराशि
बंधन में भी अबंध
लहराती पीठ पर,
कुहनियों से
खुले हुए हाथ
वे हथेलियाँ
कुईं की पँखुड़ी पर
ऊषा ठहर गयी थी
उँगलियाँ
लंबोतरी, कोरदार
कभी दाएँ
कभी बाएँ
अगल बगल हिल हिल कर
मन के अलक्ष्य भाव
वायु की लहरियों पर
लिखती थीं । (२)

त्रिलोचन नारी के रूप लावण्य की जी-खोलकर प्रशंसा करते है । उन्हें नारी-रूप में सौन्दर्य का चरम उत्कर्ष दिखायी देता है । वे नारी-सौन्दर्य के सामने पल भर के लिए सृष्टि के

१. चैती : त्रिलोचन शास्त्री पृ० २४
२. वही : पृ० २५-२६

अन्य सुन्दर चित्रों से तटस्थ हो जाते है, उन्हें सृष्टि का सौन्दर्य नारी रूप के सामने हल्का प्रतीत होने लगता है -

पहले पहल तुम्हें जब मैंने देखा
सोचा था
इससे पहले ही
सबसे पहले
क्यों न तुम्ही को देखा
अब तक
दृष्टि खोजती क्या थी
कौन रूप क्या रंग
देखने को उड़ती थी
ज्योति पंख पर
तुम्हीं बताओ
मेरे सुन्दर
अहे चराचर सुन्दरता की सीमा रेखा । (१)

त्रिलोचन ने नारी-सौन्दर्य के विविध रूपों का अंकन किया है । उन्होंने उन नारियों को भी अपनी कविता का विषय बनाया है, जो परिस्थिति के वशीभूत होकर बहुत छोटी उम्र में ही वैवाहिक जीवन आरम्भ करती हैं और फिर मातृत्व का बोझ उठाकर असमय ही युवती से बूढ़ी दिखने लगती है । 'इन्दो' एक ऐसी ही नारी का सौन्दर्य चित्र है, जिसको परिस्थितियाँ इस तरह विवश कर देती हैं कि उसकी सुन्दरता के साथ-साथ उसके जीवन का उल्लास भी समाप्त हो जाता है । इन्दो के सौन्दर्य-चित्र में कवि ने भारतीय ग्रामीण जीवन की जर-जर आर्थिक स्थिति एवं सामाजिक कुरीतियों पर तीखा प्रहार किया है -

इंदो आई थी । पहले मैंने पहचाना
नहीं । बताया उसकी माँ ने । देखा, गोदी
भरी हुई है । आया मुझको याद जमाना
गुजरा हुआ । कहा, तूने तो सारी खो दी
अपनी पूंजी । कहाँ गयी तेरी चंचलता,
वह नटखटपन । इतनी जल्दी नया खिलौना
लेकर गुमसुम खड़ी हो गयी है । (२)

---

१. त्रिलोचन प्रतिनिधि कविताएं : राजकमल प्रकाशन (पेपरवेक्स) पृ० ३९-४०
२. इस जनपद का कवि हूँ : त्रिलोचन शास्त्री पृ० ९२

कवि नारी के केवल आंगिक सौन्दर्य-चित्रण में ही नहीं डूबा रहता वह उसके कर्मशील जीवन को भी पूरी श्रद्धा के साथ चित्रित करता है । कवि के लेखे पुरूष और स्त्री एक-दूसरे के पूरक है । सुख-दु:ख में साथ-साथ रहते हैं और मिलजुल कर ही जीवन की कठिनाइयों का सामना करते हैं । उन्होंने अपनी कई कविताओं में नारी के इस पक्ष को आदर के साथ उभारा है। उदाहरण के लिए खेत में काम कर रहे नर और नारी के युगल सौन्दर्य को इन पंक्तियों में देखा जा सकता है -

है धूप कठिन सिर ऊपर
थम गई हवा है जैसे
दोनो दूबों के ऊपर
रख पैर खींचते पानी
उस मलिन हरी धरती पर
मिल रहे वे दोनो प्रानी
दे रहे खेत में पानी । (१)

(ख) <u>प्रकृति-सौन्दर्य</u> -

प्रकृति-प्रेम त्रिलोचन जी की मूल प्रेरणाओं में-से एक है । उन्होंने कहीं प्रकृति का शुद्ध एवं मार्मिक चित्रण किया है और कहीं मनुष्य-जीवन के हर्ष-विषाद को चित्रित करने के लिए प्रकृति का उपयोग किया है । उनके काव्य में प्रकृति-सौन्दर्य को उद्घाटित करने वाली अनेक रचनाएं हैं, जिनमें प्रकृति के विविध पक्षों के मनोरम चित्र उपस्थिति किए गये है । उनके काव्य में प्रकृति के सामान्य रूपों जैसे - नक्षत्र, रात, संध्या, प्रभात, बादल, दिन, धूप, विभिन्न ऋतुयें, वनस्पतियाँ, फूल, नदी, पहाड़ आदि के अनेक चित्र भरे पड़े है । प्रकृति के जो अंश बहुत अप्रधान है, उन्हें भी कवि ने अपनी कविता में पिरोकर अर्थ पूर्ण एवं मनोहर बना लिया है । उनके प्रकृति-चित्रण में कहीं तो परम्परागत विषयों को यथावत रूप में प्रस्तुत किया गया है, और कहीं उसे अपनी मौलिक कल्पना से नवीन रूप में ढ़ाला गया है । उदाहरण के लिए शरद ऋतु जैसे घिसे-पिटे विषय को कवि ने खेतों में काम करने वाले किसानों के साथ जोड़कर उसकी छवि को एक नयापन इन शब्दों में दिया है -

खिली दृश्यता आज । शरद ऋतु कुछ ऐसी
होती है, दे जाती है वह साज कि धरती
अपने आप बदल जाती है, नव श्री जैसी
आती और सुनहले धानों से मन हरती

---

१. धरती : त्रिलोचन शास्त्री पृ० १८

है सब का निर्व्याज, मौर बाली का करती
पेंग मारती हवा झूलतं तरू तृण सन मन
करते है किसान खेतों में काज । (१)

इन पंक्तियों मे कवि की प्रगतिशील चेतना का स्पष्ट संकेत मिलता है पर यह बात हर जगह दिखायी नही देती । कहीं-कहीं उन्होंने प्रकृति को उसके सहज परम्परागत रूप में ही चित्रित करके अपने काव्य-कौशल का परिचय दिया है जैसे -

शरद का यह नीला आकाश
हुआ सब का अपना आकाश
ढली दुपहर, हो गया अनूप
धूप का सोने का सा रूप
पेड़ की डालों पर कुछ देर
हवा करती है दोल विलास । (२)

शरद की ही तरह वसन्त के भी सौन्दर्य को कवि ने अपनी कविताओं में और विशेष रूप से अपनी गजलों में पूरे मनोयोग के साथ चित्रित किया है । वसन्त के आगमन का कवि प्रकृति के ही विभिन्न संकेतों के द्वारा समाचार प्रकाशित करता है और बसन्त के हर्षोल्लास का उद्घाटन करता है -

कोकिल ने गान गा के कहा आ गया बसन्त
आमों ने मौर ला के कहा आ गया बसन्त
क्यों मुझको छेड़ती है हवा बोल बार-बार,
उसने जरा बल खा के कहा आ गया बसन्त । (३)

वसन्त का अभिनन्दन कवि ने अनके कविताओं में किया है । वसन्त के आते ही न केवल प्रकृति श्री युक्त हो जाती है, बल्कि मनुष्य का तन-मन भी एक अलग ही तरह का सुखद अनुभूति करने लगता है । प्रकृति के मनुष्य-जीवन पर पड़ने वाले इस प्रभाव को कवि ने निम्नलिखित छन्द में बाँधने का प्रयास किया है -

अभिनन्दन
प्रिय वसन्त
अभिनन्दन

---

१. उस जनपद का कवि हूँ : त्रिलोचन शास्त्री पृ० ४८
२. सबका अपना आकाश : त्रिलोचन शास्त्री पृ० १५
३. गुलाब और बुलबुल : त्रिलोचन शास्त्री पृ० ५६

बौर भरी

डाल, हरी

अमराई

अब निखरी

सुरभि - स्नात

पावन तन

पावन मन । (१)

ऋतुओं में पावस का अपना एक अलग ही सौन्दर्य है सौन्दर्य और सार्थकता दोनों ही दृष्टियों से पावस ऋतु कवि का ध्यान अपनी ओर आकृष्ट करती है । वर्षा आगम से न केवल वनस्पतियों में नये जीवन का संचार होता है वरन् जन-जन उससे आनन्दित हो उठता है । एक प्रकार से वर्षा मनुष्य को कर्म-क्षेत्र में आगे बढ़ने के लिये प्रेरणा का संदेश लेकर आती है ।सर्वत्र सौन्दर्य अपनी आभा बिखेरने लगता है -

धारामयी धरा हो आई

रंग रंग की ले सुधराई

आई सुन्दरता अब आई

नवल बने सब

नवल बने सब

बन उपवन

जन

ये । (२)

कवि के ऋतु-चित्रों में केवल सतही तौर पर सौन्दर्य को रेखांकित नहीं किया गया, बल्कि उस सौन्दर्य का साक्षात्कार किया गया है, जो मनुष्य की जिजीविषा शक्ति को बढ़ाने में सहायक सिद्ध होता है । पावस के व्यापक प्रभाव को चित्रित करने के लिए कवि ने 'काई' जैसी नगण्य और जड़ वस्तु को भी जीवन के रंग में रंग कर प्रस्तुत किया है । जो काई जेठ की तन में झुलस कर अपना रूप खो बैठी थी, वह पास के आते ही फिर हरी-भरी हो गयी । यह जड़ता पर जीवन की जीत का प्रमाण है -

काई हरियाई फिर

पी पी कर पानी

कुछ दिन की धूप ने

---

१. सबका अपना आकाश : त्रिलोचन शास्त्री पृ० ६६

२. धरती : त्रिलोचन शास्त्री पृ० ३३

जला कर इसे
स्याह बना दिया था
हठ लेकर इसने भी भीत पर
अपना घर किया था
फिर बादल गरजे
फिर प्रीति नई मानी
जीवन जड़ के ऊपर छा गया
जहाँ रंग न था रंग आ गया
बरसाती धरती ने
साज सजे धानी । (१)

नदी अपनी गतिशीलता के कारण दूर-दूर तक मन को आंदोलित कर जाती है । नदी की लहरों में मन की उमंगो का छाया चित्र और नदी के तट की हरीतिमा कवि को अपने मोहपाश मे बांध लेती है, फिर नदी भी कोई साधारण नही, बल्कि अनादि काल से निरन्तर प्रवहमान गंगा का सौन्दर्य भला कैसे न मन को मोह लेगा । कवि गंगा के सौन्दर्य को उसकी गतिशीलता में इस प्रकार चित्रित करता है -

उठती तरंग पर नव तरंग
जैसे उमंग पर नव उमंग
मन वह चलता है संग संग
दृग में छा जाती है नूतन
तट-हरियाली
गंगा बहती है लहराती
लहरों वाली । (२)

त्रिलोचन ने दिन, रात, तारे, चन्द्रमा आदि सभी पर कविताएं लिखी है और इनकी सुन्दरता को भिन्न-भिन्न रंग-रूपों में उद्घाटित किया है । दिन इन्हें ऐसा लगता है जैसे कोई सहस्रदल कमल खिल गया हो । दिन के आते ही जीवन में एक विलक्षण शक्ति का स्रोत फूट पड़ता है मनुष्य नयी उमंग लेकर पूरे उत्साह के साथ कर्म-क्षेत्र में उतर पड़ता । दिन का सौन्दर्य कवि को इसी रूप में आकृष्ट करता है कि वह जीवन को उत्साह और उल्लास से भर देता है -

---

१. ताप के ताए हुए दिन : त्रिलोचन शास्त्री पृ० ३४
२. धरती : त्रिलोचन शास्त्री पृ० ३५

क्या उमंग, जागरण की तरंग
सद्य शक्ति-स्रोत-स्फूर्ति अंग अंग
तरू के दल
खग कल कल
खिला यह दिन का कमल
सुन्दर सहस्रदल । (१)

दिन का आरम्भ प्रभात से होता है । प्रभात अंधेरे में प्रकाश के जीत की घोषणा करता है । दृष्टि के सामने पड़ी हुयी अंधेरे की पर्त को साफ करता है और धरती-आकाश को उनके समूचे सौन्दर्य के साथ उजागर कर देता है । प्रभात का आना कवि के लिए एक विशेष जीवन-दृष्टि का द्वार खोलता है । दृष्टि की गतिशीलता और उसका दिशा-बोध बढ़ जाता है । इस प्रकार गतिशीलता और उसका दिशा-बोध बढ़ जाता है । इस प्रकार प्रभात का सौन्दर्य सत्य के साक्षात्कार का माध्यम बन जाता है -

आया प्रभात
फैला प्रकाश
सज गया धरातल अंबर तल
हो गई दृष्टि की गति अपार । (२)

प्रभात को कवि बार-बार स्मरण करता है । उसके सौन्दर्य का गुणगान करता है और उसे इस बात के लिए साधुवाद देता है कि उसके आगमन से जीवन की जड़ता टूटती है और एक स्वस्थ दिशा में जीवन गतिशील होता है । प्रभात का अभिनन्दन करते हुए कवि कहता है कि-

प्रिय प्रभात तुम आये आये
नित्य मनोहर नूतन नूतन
चिर सहचर तुम आये आये
तुमने एकाकीपन हर कर
नयी तरंग हृदय में भर कर
मिला दिया जन से जीवन को
स्मिति का मधु आकर्षण भरकर
निर्जीवन का जीवन, जीवन
का अमृत तुम लाये लाये । (३)

---

१. धरती : त्रिलोचन शास्त्री पृ० ६६
२. वही पृ० ४१
३. वही पृ० १०१

कवि के यहाँ संध्या भी आती है, तो भविष्य की एक नयी उम्मीद लेकर आती है । पल भर के लिए ऐसा लगता अवश्य है कि संध्या के आने से सब कुछ खो गया, अंधेरे के मौन में सब समा गया । किन्तु यह पल स्थिर नहीं रहता, एक नये पल का पृष्ठ भाग होता है । कवि इसलिए संध्या के मौन से घबराता नहीं है, बल्कि उसमें भी आने वाले का सौन्दर्य खोज लेता है। जीवन के प्रति उसकी दृढ़ आस्था और विपरीत परिस्थितियों से संघर्ष करने का आत्मबल उसे निराश नहीं होने देता -

पथ पर प्रति अंक देखते हुए
जन जन ने आगामी कल का सौन्दर्य देखा
मन मन में क्षण-क्षण की रूप कल्पना करके पहुँचे घर
खो गये संध्या के मौन में स्वर । (१)

रात्रि के आगमन पर आकाश में तारे छिटक जाते है और अपनी आभा से घने अंधकार को खुली चुनौती देते है । रात की भयंकरता तारों के प्रकाश से स्वयमेव कम हो जाती है । कवि इन तारों की उपस्थित से प्रेरणा प्राप्त करता है और उसके मन का कुहासा छटता है । तारों के सहज-सुन्दर-मंद प्रकाश को कवि ने निम्नलिखित पंक्तियों में शब्दबद्ध किया है -

सहज सुन्दर मंद तारों का पुनीत प्रकाश
आज सारी रात निर्मल दे सका आकाश
रात काली हो गयी थी चौथ का था चाँद
बन गये थे व्योम में तारे प्रभा की याद । (२)

दिन का सबसे बड़ा वैभव धूप होती है । धरती पर फैली हुयी धूप अपने निर्मल प्रकाश से सर्वत्र सौन्दर्य बिखेर देती है । धूप में सम्पूर्ण प्रकृति सलोनी बन जाती है । कवि धूप के निर्मल सौन्दर्य को देखकर मुग्ध होता है और सोचता है कि क्या कभी धूप जैसी सुन्दरता और निर्मलता मनुष्य के जीवन में आ सकेगी । धूप के अनिर्वचनीय रूप को कवि निम्नलिखित पंक्तियों में बाँधने का प्रयास करता है -

मौन एकाकी
तरंगे देखता हूँ
देखता हूँ
यह अनिर्वचनीयता
बस देखता हूँ

---

१. धरती : त्रिलोचन शास्त्री पृ० १०२
२. वही, पृ० ७७

सोचता हूँ
क्या कभी
मैं पा सकूँगा
इस तरह
इतना तरंगी
और निर्मल
आदमी का
रूप सुन्दर
धूप सुन्दर
धूप में जग रूप सुन्दर
सहज सुन्दर । (१)

धूप में खेत-खलिहान एक अलग ही सौन्दर्य से मंडित हो जाते है । खेतों के सौन्दर्य को देखकर कवि का आह्लादित होना सहज स्वाभाविक है क्योंकि खेतों का सम्बन्ध श्रमशील जनता से है । खेतों में जब गेहूँ, सरसों और मटर की फसलें अपनी समृद्धि में लहराती हैं तो कवि का हृदय प्रसन्नता से खिल उठता है । न केवल खेत अपितु खेत में अपना पसीना बहाने वाले किसानों का श्रम-सौन्दर्य भी कवि के अन्तर्मन को गुदगुदाने लगता है -

गेहूँ जौ के ऊपर सरसों की रंगीनी
छाई है, पछुआ आ आ कर इसे झुलाती
है, तेल से बसी लहरें, कुछ भीनी भीनी
नाक में समा जाती है, सप्रेम बुलाती
है मानो-यह झुक झुक कर । समीप ही लेटी
मटर खिलखिलाती है, फूल भरा आँचल है । (२)

शिशिर ऋतु की हवा जब अपने प्रखर रूप में लहराती है तो सारे संसार में प्राणों का संचार कर देती है । सब कुछ बदला-बदला सा दिखने लगता है । वायु की मस्ती में भी एक प्रकार का संदेश छिपा रहता है । कवि की प्रगतिशील चेतना हवा के चलने में परिवर्तन की आहट पाने लगती है और उसका यह विश्वास दृढ़तर होता दिखायी देता है कि वसन्त आने में अब अधिक विलम्ब नहीं है -

शस्य लता तरू के चुन चुन कर
पात पुराने गिरा गिरा कर
करती सुन्दर और मनोहरा
सज कर आती

---

१. धरती : त्रिलोचन शास्त्री पृ० ८४
2. उस जनपद का कवि हूँ : त्रिलोचन शास्त्री पृ० ६२

प्रिय बसन्त के
गीत सुनाती
प्रखर शिशिर की वायु लहराती । (१)

नीम के फूल प्रगतिशील कवियों के आकर्षण का महत्वपूर्ण हिस्सा है । उन्हें कमल, गुलाब, आदि फूलों से कहीं अधिक नीम के नन्हें-मुन्हें फूलों से आत्मतुष्टि मिलती है । नीम के वृक्ष पर जब फूलों की बहार आती है, तो कवि को ऐसा लगता है कि मानों चाँदनी छिटक गयी हो । नीम के फूलों की सुरभि कवि के मन को बरबस अपनी ओर खीच लेती है । बड़े फूलों की तुलना में नन्हें फूलों का सौन्दर्य कवि को इसलिए भाता है कि क्योंकि वह सामान्य जन-जीवन का कवि है और उसके मन में हर उस वस्तु के प्रति गहरी रागात्मकता है, जिसे पूँजीवादी समाज ने कभी महत्व नहीं दिया गया -

फूलों की चाँदनी नीम में जो आई है
खींच रही है सुरभि - डोर से मेरे मन को
बरबस अपनी ओर, भला कैसे इस जन को
कृपा पात्र कर दिया सुछवि ने जो छाई है । (२)

नीम के फूल कवि के मन में एक नये विश्वास को जन्म देते है और अपनी उपस्थिति से ऋतु परिवर्तन का मौन संदेश प्रसारित करते है । कवि के नीम के प्रति आकर्षण का प्रमुख कारण यही है कि वह नीम को जो अब तक कवियों की सौन्दर्य दृष्टि से ओझल थी, आज अपने अस्तित्व की खुलकर व्यंजना करती है । कवि उसके इस जीवन्त रूप से आंदोलित होता है और उसके सौन्दर्य की भूरि-भूरि प्रशंसा करता है -

नीम में नव फूल आए
सुरभिमय वातास !
मधुर मंजरियाँ तरंगित
कर रही मधु मौन इंगित
भर रहा ऋतुराज में प्रति श्वास में विश्वास
सुरभि मय वातास ! (३)

न केवल नीम के फूल बल्कि प्रकृति के वे सारे रूप जो परिवर्तन की सूचना देते है, कवि को अत्यन्त प्रिय है, फिर चाहे वे वृक्ष हों या उन पर बैठकर जीवन-संगीत प्रसारित करने वाले पक्षी हों । कोयल वसन्त के दूत के रूप में आरम्भ से ही कविता का प्रमुख विषय रही है । किन्तु त्रिलोचन के यहाँ कोयल का कूकना एक और गहरे अर्थ की व्यंजना करता है, और

---

१. धरती : त्रिलोचन शास्त्री पृ० ९९
2. उस जनपद का कवि हूँ : त्रिलोचन शास्त्री पृ० ५२
३. धरती : त्रिलोचन शास्त्री पृ० ११४

वह अर्थ केवल प्राकृतिक परिवर्तनों तक ही सीमित न रहकर पूरे समाज के बदलाव का संकेत कर देता है -

कूक रही है कोयल
बार बार
एक साल बाद फिर
वसन्त आ रहा है घर
झर रहे पुराने पात
नूतन किसलय आये
भर रही लताएँ फूल
रंग रंग के सुन्दर
नये गीत नये स्वर
जैसे निर्मल निर्झर ।(१)

कोयल की ही तरह गौरय्या को भी कवि अपने बहुत निकट पाता है । वह उसकी सर्जनात्मक प्रतिभा से परिचित है और इसीलिए वह उसके साथ मैत्री सम्बन्ध बना कर रखना चाहता है । गौरय्या की चोंच में दबा हुआ तिनका उसके कर्मशील जीवन का प्रतीक है और यही बात कवि को गौरय्या के साथ भावनात्मक स्तर पर जोड़ देती है और वह उसे मित्रता का आमंत्रण दे बैठता है -

चोंच में दबाए एक तिनका
गौरय्या
मेरी खिड़की के खुले हुए
पल्ले पर
बैठ गई
और देखने लगी
मुझे और
कमरे को
मैंने उल्लास से कहा
तू आ
घोंसला बना
जहाँ पसन्द हो
शरद के सुहावने दिनों से
हम साथी हों । (२)

---

१. धरती : त्रिलोचन शास्त्री पृ० १२२
२. ताप के ताए हुए दिन : त्रिलोचन शास्त्री पृ० १५

तुलनात्मक निष्कर्ष

आलोच्य कवि शुद्धत: वस्तु जगत के कवि है । दृश्य-जगत से परे न तो किसी सत्ता पर इनका विश्वास है और न ही इन्होंने किन्ही ऐसे अनुभवों को चित्रित किया है जो इंद्रिय संवेद्य न हो । इनकी कविताओं के स्पष्टत: दो पक्ष है- मानव-जीवन और प्रकृति ।

मनुष्य-जीवन का चित्र अंकित करते समय इन कवियों ने उसका सरल रेखांकन मात्र नहीं किया, बल्कि जीवन की जटिलताओं को पूरी गहराई के साथ उद्घाटित किया है । मनुष्य-समाज को इन्होंने मार्क्सवादी दृष्टि से देखा और उसमें पूँजीपति तथा सर्वहारा के आपसी सम्बन्धों और सार्वजनिक जीवन में हो रहे मानवीय मूल्यों के ह्रास पर गहरी चिन्ता व्यक्त की है ।सामाजिक मूल्यहीनता के लिए इन कवियों ने पूँजीवादी व्यवस्था को जिम्मेदार माना है, इसलिए इनकी कविता में पूँजीपतियों के प्रति तीव्र आक्रोश का भाव व्यक्त हुआ है । पूँजीपति राजनेताओं के साथ साँठ-गाँठ करके अपनी महत्वाकांक्षाओं को पूरा करते हैं, इसलिए राजनेताओं पर भी इन कवियों ने तीखे व्यंग प्रहार किये है ।

सर्वहारा के प्रति इन कवियों ने सच्ची सहानुभूति प्रदर्शित की है । किसान और मजदूर इन्हें अपने भाई-बंधु जैसे दिखते हैं । किसान-मजदूरों की श्रम-शक्ति पर इनका अटूट विश्वास है। इनके काव्य में श्रमिकों के श्रम-सौन्दर्य का उदारतापूर्वक चित्रण किया गया है । इनकी दृष्टि में आधुनिक सभ्यता का सम्पूर्ण ढाँचा श्रमिकों की कड़ी मेहनत पर आधारित है । इसलिए इन कवियों ने श्रमिकों को न केवल स्नेह दिया है, बल्कि उनकी श्रम-साधना का आदर पूर्वक स्मरण भी किया है । केदार की कविताओं में किसान, मजदूर, कुली, ठेले वाले, मछुआरे आदि का उदारतापूर्वक चित्रण किया गया है । नागार्जुन ने भी इन वर्गो का विस्तृत जीवन अंकित किया है किन्तु उनके काव्य में ग्राम्य-जीवन की अपेक्षा नगरीय-जीवन के चित्र अधिक मिलते है । त्रिलोचन गाँव की धरती से अधिक जुड़े हुए हैं, इसलिए उनके यहाँ लोक-जीवन की समस्याओं का चित्रण अधिक हुआ है । केदार ने ग्राम्य और नगर जीवन के बीच एक संतुलन बनाकर सर्वहारा की समस्याओं को समग्रता के साथ उद्घाटित किया है ।

केदार, नागार्जुन और त्रिलोचन के मानवीय सौन्दर्य चित्रण में समानता यह है कि वे समाज के उपेक्षित और तिरस्कृत लोगों को और उनकी समस्याओं को उदारता पूर्वक अंकित करते हैं ।इनकी सौन्दर्य-दृष्टि में वे दृश्य अधिक कौंधते है, जिन्हें छायावादी युग तक असुन्दर मानकर छोड़ दिया जाता है । दीन-हीन जनों के जीवन का सौन्दर्य-चित्रण इन कवियों की अपनी उपलब्धि है । पर जहाँ केदार ने इस सौन्दर्य को सामान्य घटनाओं के परिपेक्ष्य में या सामान्य व्यक्तियों के सन्दर्भ में उद्घाटित किया है, वहाँ नागार्जुन ने अपनी संवेदनाओं को प्राय: विशिष्ट घटनाओं से जोड़कर व्यक्त किया है । त्रिलोचन भी सामान्य चित्रण की अपेक्षा विशिष्ट संदर्भ में स्थितियों को देखते-समझते दृष्टिगोचर

होते है । यह बात अलग है कि नागार्जुन और त्रिलोचन के विशिष्ट पात्र और विशिष्ट घटनायें कविता में ढ़लकर सामान्य हो जाती है ।

पुरूष और नारी दोनो ही इन कवियों के आकर्षण का केन्द्र है । नारी के कायिक सौन्दर्य से अधिक इन कवियों ने उसकी आन्तरिक सुन्दरता को उद्‌घाटित किया है । यहाँ भी इन कवियों ने सर्वहारा वर्ग की नारियों के सौन्दर्य चित्रण में अधिक रूचि प्रदर्शित की है । सुविधा सम्पन्न नारियों के सौन्दर्य चित्र इनके यहाँ अंकित नही किये गये और यदि इनकी दृष्टि सुविधाभोगी नारियों पर गयी है, तो भी इन लोगो ने उनकी फैशनपरस्ती और तुनुकमिजाजी का मखौल ही उड़ाया है । इनका नारी-सौन्दर्य-चित्रण सामाजिक मान्यताओं के दायरे में आबद्ध है । किसान-मजदूरों की स्त्रियाँ, उनका श्रम-सम्पुष्ट सौन्दर्य ही इन्हें अपनी ओर आकर्षित करता है । सर्वहारा वर्ग की नारियाँ जिस अभाव का जीवन जीने के लिये अभिशप्त है, उसे इन्होंने पूरी सहानुभूति के साथ चित्रित किया है । पर नारी जीवन के चित्रण में उनके दुख-दर्दो के अतिरिक्त इन कवियों ने उसके श्रम, त्याग और सेवा आदि का सौन्दर्य विशेष रूप से उद्‌घाटित किया है ।

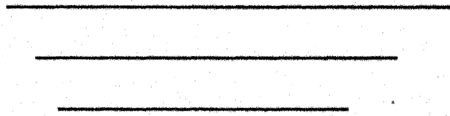
केदार, नागार्जुन और त्रिलोचन ने मुख्यत: मानवीय सौन्दर्य का चित्रण किया है । प्रकृति उनके लिये मनुष्य की सहचरी बनकर कविता में अवतरित हुयी है । प्रकृति के नैसर्गिक सौन्दर्य को चित्रित करते समय भी इन कवियों ने मनुष्य-जीवन को पूर्णत: विस्मृत नहीं किया । प्रकृति निरन्तर अपनी प्रेरणादायी रूप में ही इन कवियों का ध्यान आकृष्ट करती रही है ।

केदार ने बुन्देलखण्ड की सुपरिचित प्रकृति को अपनी कविता में जिस आत्मीयता के साथ चित्रित किया है, उसी आत्मीयता के साथ नागार्जुन ने मिथलांचल की प्रकृति को अपनी कविता का विषय बनाया है । त्रिलोचन ने अपने काव्य में अवध प्रान्त की प्राकृतिक दृश्यों को पूरी तन्मयता के साथ अंकित किया है । प्रकृति के सामान्य रूपों की अपेक्षा उसके विशिष्ट रूपों पर इन कवियों ने अपना ध्यान अधिक केन्द्रित किया है । जहाँ कहीं हवा, पर्वत, बादल, सूर्योदय, सूर्यास्त, नदी, पेड़-पौधे तथा विभिन्न ऋतुओं आदि का चित्रण हुआ है वहाँ भी आँचलिक स्पर्श स्पष्ट दिखायी देता है। केदार की आरम्भिक प्रकृति-चित्रण सम्बन्धी कविताओं में स्वच्छन्दतावादी मनोवृत्ति और उनकी रूमानी रूझान का संकेत मिलता है । जबकि नागार्जुन और त्रिलोचन के यहाँ प्रकृति आरम्भ से ही प्रगतिशील चिंतन का संदेश लेकर चित्रित हुयी है । केदार की प्रकृति में प्रगतिशील चेतना का पदार्पण थोड़े समय बाद होता है ।

केदार की प्रकृति-चित्रण सम्बन्धी कविताओं में लोक-संस्कृति का पुट एक उल्लेखनीय विशेषता है । नागार्जुन प्रकृति-सौन्दर्य का दर्शन करते समय जीवन यर्थाथ की कड़वाहट से मुक्त नहीं हो पाते । त्रिलोचन की प्रकृतिपरक कविताओं में भी लोक-जीवन का यर्थाथ व्यंजित होता रहता है । प्रकृति के उन रूपों के प्रति जो छायावादी युग तक प्राय: उपेक्षित रहे है, इन कवियों ने गहरी

रूचि प्रदर्शित की है । नीम के फूल, दूब, काई आदि प्रकृति ऐसे ही रूप है, जिन्हें इन कवियों ने पूरा सम्मान दिया है ।

प्रकृति कई बार मनुष्य-जीवन के यर्थाथ को अंकित करने के लिये प्रतीक रूप में भी इन कवियों के द्वारा प्रयुक्त की गयी है । अपने हर रूप में वह मनुष्य-जीवन को नये उत्साह और स्फूर्ति प्रदान करती हुयी प्रतीत होती है । प्रकृति के जड़ रूपों में भी इन कवियों ने जीवन का संगीत सुना है । वस्तुतः प्रकृति इनके लिए कोई जड़ पदार्थ है ही नहीं, इन्होंने उसे मानवीकृत रूप में ही प्रायः देखा है । इस प्रकार प्रकृति मनुष्य-जीवन से अलग न रहकर उसके परिपार्श्व में ही अधिक चित्रित हुयी है ।



अध्याय-४

आलोच्य कवियों का आत्मगत-सौन्दर्य

1. (क) केदार का भाव-सौन्दर्य - दाम्पत्य-प्रेम, वात्सल्य-भाव, देश-प्रेम, मैत्रीभाव, प्रकृति-प्रेम, मानव-प्रेम, मन की उदासी, शोक, करूणा, आक्रोश आदि ।

   (ख) विचार-सौन्दर्य - मार्क्सवादी चेतना, पूँजीवादी व्यवस्था का विरोध, ईश्वर और धर्म के प्रति नकारात्मक दृष्टिकोण, जिजीविषा, मृत्युबोध आदि ।

2. (क) नागार्जुन का भाव-सौन्दर्य - दाम्पत्य-प्रेम, वात्सल्य-भाव, मैत्री-भाव, देश-प्रेम, मानव-प्रेम, प्रकृति-प्रेम, आक्रोश आदि ।

   (ख) विचार-सौन्दर्य- मार्क्सवादी चेतना, मृत्युबोध, ईश्वर और धर्म के प्रति नकारात्मक दृष्टिकोंण, पूँजीवादी व्यवस्था का विरोध आदि ।

3. (क) त्रिलोचन का भाव-सौन्दर्य- दाम्पत्य-प्रेम, वात्सल्य-भाव, मैत्रीभाव, मानव-प्रेम, प्रकृति-प्रेम, करूणा, आक्रोश आदि ।

   (ख) विचार-सौन्दर्य- मार्क्सवादी चेतना, जिजीविषा, मुत्युबोध, नियति, ईश्वर और धर्म, अवसरवादी राजनीति आदि ।

   तुलनात्मक निष्कर्ष

अध्याय-४

आलोच्य कवियों का आत्मगत-सौन्दर्य

सौन्दर्य वस्तु के आकार-प्रकार में ही नहीं होता, वह उसके अन्दर छिपी हुयी भाव और विचार-राशि में भी होता है । सौन्दर्य का सम्बन्ध वस्तु से अधिक दृष्टा की रूचि से होता है । एक ही वस्तु इसीलिए भिन्न-भिन्न रुचि वाले लोगों को भिन्न-भिन्न रूपों में दिखायी देती है । फूल एक है और उसे चाहने वाले भौरा, माली और भक्त तीन अलग-अलग रूचि के व्यक्ति है। माली को वह फूल इसलियें सुन्दर लगता है क्योंकि वह उससे अधिक से अधिक अर्थिक लाभ पाने की इच्छा रखता है । भौंरे के लिये फूल की सुन्दरता उसके रस-पान का साधन होने के कारण है । जबकि एक भक्त उस फूल की प्रशंसा इसलिये करता है क्योंकि वह विधाता की अनुपम देन है और उसे भगवान के चरणों में चढ़ाकर वह परम सुख की अनुभूति करता है । इस प्रकार किसी वस्तु की सुन्दरता का निर्णय वस्तु से अधिक दृष्टा की रूचि पर निर्भर करता है ।

जब कोई कवि किसी दृश्य से आकृष्ट होता है तो उसका यह आकर्षण यांत्रिक नही होता, बल्कि वह संवेदना के स्तर पर उस दृश्य के साथ जुड़ता है । इसलियें एक ही विषय पर भिन्न-भिन्न कवियों द्वारा लिखी गयी कविताओं के सौन्दर्य में पर्याप्त भिन्नता होती है । कविता पढ़ते समय वस्तु-चित्रण उतना प्रभावित नही करता, जितना उसका भाव-सौन्दर्य मन को छूता है । कवि अपने प्रतिपाद्य विषय के साथ या तो भाव के स्तर पर जुड़ता है या विचार के स्तर पर। भाव से आशय उन संवेगों से है जो मनुष्य मात्र में सहजात प्रवृत्ति के रूप में परिस्थिति का योग पाकर अंकुरित होते रहते है । प्रेम, करूणा, दया, ममता, क्रोध, आक्रोश आदि ऐसे ही भाव है जो परिस्थिति की सापेक्षता में लगभग हर मनुष्य के ह्रदय से अवसर पाकर फूट पड़ते है । विचारों का सम्बन्ध बुद्धि से होता है और 'मुंडे-मुंडे मतिर्भिन्नः' होने के कारण प्रायः लोगों में विचार-साम्य का अभाव रहता है । इसलिये विचारों के स्तर पर बहुत मतभेद दिखायी देता है । जीवन, मृत्यु, ईश्वर, धर्म, नियति आदि के संबंध में भिन्न-भिन्न लोगों के भिन्न-भिन्न विचार होते है । कविता में विचारो की सुन्दरता के आकलन उनकी तर्क-संगति के आधार पर किया जाता है । प्रस्तुत अध्याय में आलोच्य कवियों के भाव - सौन्दर्य और विचार-सौन्दर्य का विवेचन इसी दृष्टि से किया गया है । और यह देखने का प्रयास किया गया है कि आलोच्य कवियों के भाव और विचार सौन्दर्य में किस सीमा तक साम्य और वैषम्य है और क्यों है ?

(क) केदार का भाव-सौन्दर्य -

दाम्पत्य-प्रेम - केदार की कविता भाव जगत से विचार जगत की ओर चलती है । उनकी आरम्भिक कविताओं में भावनाओं का प्राधान्य है । जबकि परवर्ती कवितायें क्रमशः विचार सम्पन्न होती गयी है । अपनी काव्य यात्रा के प्रथम चरण में कवि का ह्रदय वैयक्तिक प्रेम-भावना से

ओत-प्रोत दिखायी देता है । वह मूलत: पत्नी-प्रेमी है किन्तु उसका मन निर्द्वन्द्व प्रेम चाहता है । उसके हृदय में प्रेम का वेग इतना तीव्र है कि वह उसे चिल्ला-चिल्ला कर सारी दुनिया को बता देने के लिए उत्सुक है । वह प्रश्न करता है कि -

तब क्यों मै ही प्रेम छिपाऊँ ?
सागर को देखो तो सजनी, लहर-लहर लहराता
हहर-हहर स्वर-रव संकुल कर, मचल मचल उफनाता
जबकि विभा को देख नहीं यह वारिधि प्यार छिपाता
तब क्यों मै ही प्रेम छिपाऊँ ? (१)

कवि जैसे-जैसे प्रौढ़ होता है, उसकी अभिव्यक्ति में भी प्रौढ़ता आती जाती है और वह अपनी प्रेम-भावना को प्राकृतिक प्रतीकों के माध्यम से व्यक्त करने लगता है । उसे अब तक यह एहसास हो जाता है कि भारतीय सामाजिक परिवेश में पत्नी-प्रेम को भी स्वच्छन्द रूप मे जाहिर करना उचित नहीं माना जाता । इसीलिए वह प्रकृति की आड़ लेकर अपनी प्रेम-भावना को परिष्कृत रूप में वाणी देता है :-

हवा आयी
खूबसूरत बल्लरी के वेश में
और मेरी देह से लिपटी रही,
वह प्रिया है पेड़ हूँ मै नीम का
प्रमुदित हुआ । (२)

युवा कवि की प्रेम-भावना क्रमश: मर्यादित और उदात्त बनती जाती है । प्रौढ़ कवि के लिए नारी श्रृंगार का आलम्बन मात्र न रहकर सुख-दुख में साथ रहने वाली मित्र बन जाती है। उसका प्रेम यौन सम्बन्धों से तनिक ऊपर उठकर जीवन का स्थायी सुख साधन बन जाता है। प्रेम की इस अवस्था में पहुँचकर कवि को सांसारिक दु:ख-द्वन्दों से राहत मिलती है और वह प्रेम की इस गहरायी में डूबकर मृत्यु तक को चुनौती देने लगता है :-

रेत मै हूँ - जमुन जल तुम !
मुझे तुमने
हृदय तल से ढ़क लिया है,
और अपना कर लिया है ।
अब मुझे क्या रात-क्या दिन,

---

१. गुलमेंहदी, केदारनाथ अग्रवाल पृ० ७७
२. फूल नहीं, रंग बोलते है केदारनाथ अग्रवाल पृ० १०२

क्या प्रलय-क्या पुनर्जीवन !
रेत मै हूँ-जमुन जल तुम !
मुझे तुमने
सरस रस से कर दिया है,
छाप दु:ख दव हर लिया है
अब मुझे क्या शोक-क्या दुख
मिल रहा है सुख-महासुख ! (१)

केदार भाग्यशाली है कि उन्हें जीवन में सच्चा प्यार मिला । इस प्यार ने उन्हें जीवन का वास्तविक अर्थ समझने में मदद की । कवि अनुभव करता है कि यदि उसे जीवन में प्रेम न मिला होता तो वह किसी काम का न होता । एक कविता में उन्होंने अपने जीवन में प्रेम के व्यापक प्रभाव और उसके न होने की स्थिति में स्वयं के अस्त-व्यस्त हो जाने का चित्र खींचा है । कवि सोचता है कि -

प्यार न पाता
तो क्या होता ?
घास-फूस की झाड़ी होता
बेपेंदे की हाँड़ी होता
बिना सूत की आँड़ी होता
मूसर होता
काँड़ी होता
बेपहिये की गाड़ी होता
सबसे बड़ा अनाड़ी होता
गूँगी खड़ी पहाड़ी होता
बंगाले की खाड़ी होता ! (२)

वात्सल्य-भाव :-

प्रेम अपने सीमित अर्थ में रति-क्रीड़ा का पर्याय है किन्तु अपने व्यापक अर्थ में वह समस्त मानवीय संवेदना को समेट कर चलता है । 'आत्मगंध' की भूमिका में कवि ने प्रेम को इसी व्यापक अर्थ में ग्रहण किया है । प्रेम की महत्ता प्रतिपादित करते हुए कवि ने लिखा है कि "मै प्रेम को जीवन का मूल मानता हूँ । प्रेम है क्या ? यह एक का किसी दूसरे से सम्बद्ध होना है । दो

---

१. जमुन जल तुम — केदारनाथ अग्रवाल — पृ० १२१
२. पुष्पदीप, — केदारनाथ अग्रवाल — पृ० ४५

आत्मीय इकाइयों का एकात्म होना है । ....इतना ही नही प्रेम मानवीय चेतना की परम उपलब्धि है जिसे प्राप्त कर आदमी मृत्यु पर विजय प्राप्त कर सकता है ।''(१) प्रेम के इसी उदात्त दृष्टिकोण के कारण कवि ने वैयक्तिक प्रेम-चित्रण के साथ-साथ प्रेम के अन्य रूपों का भी विशद् अंकन किया है । वात्सल्य भी प्रेम का ही एक रूप है जो किसी बच्चे या बच्चों के प्रति जाग्रत होता है । वात्सल्य का आश्रय माता-पिता या कोई भी सहृदय संवेदनशील व्यक्ति हो सकता है। बच्चों के प्रति प्रेम प्रकट करना एक प्रकार से ईश्वर के प्रति प्रेम प्रकट करने के समान होता है क्योंकि इस प्रकार के प्रेम-प्रदर्शन में किसी प्रकार का छल-छद्म नही होता है । केदार जब छोटे-छोटे बच्चों को हँसते-गाते देखते है तो उनका हृदय प्रसन्नता से खिल उठता है और वे अपनी ढ़लती हुयी अवस्था का दर्द भूलकर उनके साथ एकात्म का अनुभव करने लगते है -

छुट्टी का घण्टा बजते ही स्कूलों से
निकल-निकल आते है जीते-जगते बच्चे,
हँसते-गाते चल देते है पथ पर ऐसे
जैसे भास्वर भाव वही हों कविताओं के
बन्द किताबों से बाहर छन्दों से निकले
देश-काल में व्याप रही है जिनकी गरिमा ।
मै निहारता हूँ उनको, फिर-फिर अपने को
और भूल जाता हूँ अपनी क्षीण आयु को ! (२)

देश-प्रेम :-

कवि का हृदय देश-प्रेम की भावना से ओत-प्रोत है । उसके सामाजिक और राजनीतिक व्यंग भी देश-प्रेम की भावना से ही उपजे है । जो बातें उसे देश के हित में नही जान पड़ती वह उनका खुलकर विरोध करता है । इस विरोध के पीछे कवि का देश-प्रेम ही मुख्य प्रेरक होता है । वास्तव में देश की जनता और वहाँ के प्राकृतिक परिवेश से गहरी आत्मीयता अनुभव करना ही सच्चा देश-प्रेम है । आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने देश-प्रेम का स्वरूप निरूपित करते हुए लिखा है कि - ''यदि किसी को अपने देश से प्रेम है तो उसे अपने देश के मनुष्य, पशु-पक्षी, लता, गुल्म, पेड़, पत्ते, वन, पर्वत, नदी, निर्झर, सबसे प्रेम होगा ।''(३) केदार ने सच्चे अर्थो में देश के प्रति प्रेम का अनुभव किया है, इसीलिए वे देश के लोगों और उनकी समस्याओं को पूरी ईमानदारी के साथ चित्रित करते हैं । उनकी अनेक कवितायें ऐसी है जिनमें उन्होंने सीधे-सीधे देश के प्रति

१.	आत्मगंध,	केदानाथ अग्रवाल	पृ० ४
२.	फूल नही रंग बोलते है,	केदारनाथ अग्रवाल	पृ० १००
३.	चिन्तामणि - प्रथम	आ० रामचन्द्र शुक्ल लोभ और प्रीति	पृ० ७३

अपने प्रेम की अभिव्यक्ति की है । मातृभूमि के प्रति अपने प्रेम का उद्घाटन करते हुए उन्होंने लिखा है कि -

तीन हाथ का यह मेरा तन,
सागर - धरती -
और गगन - सा यह मेरा मन,
मेरे शोणित का यह तर्पण,
सब मेरा
मेरे जीवन का एक-एक प्रन
मातृभूमि के लिए समर्पण !! (१)

केदार को अपने देश से इतना प्रेम है कि वे इस जीवन में ही नहीं, अपितु मरने के बाद भी पुनर्जन्म लेकर देश की मिट्टी से लिपटे रहने की कामना करते हैं । वे देश को निर्माण की दिशा में ले जाकर उसे सोने की तरह चमका देना चाहते हैं । वे देश को आश्वासन देते हैं कि -

मर जाऊँगा तब भी तुमसे दूर नही मैं हो पाऊँगा
मेरे देश, तुम्हारी छाती की मिट्टी मैं हो जाऊँगा
मिट्टी की नाभी से निकला मै ब्रह्मा होकर आऊँगा
गेहूँ की मुट्ठी बाँधे मै खेतो-खेतों छा जाऊँगा
और तुम्हारी अनुकम्पा से पक कर सोना हो जाऊँगा
मेरे देश, तुम्हारी शोभा मै सोना से चमकाऊँगा ।(२)

मैत्री-भाव :-

देश-प्रेम का ही यह प्रभाव है कि कवि जब अपने मित्रों से मिलता है, तो उसे ऐसा लगता है मानों उसने एक व्यक्ति को नही बल्कि सारे परिवेश को ही पा लिया हो । नागार्जुन के बाँदा आने पर केदार केवल नागार्जुन से ही नही मिलते, बल्कि नागार्जुन के रूप में वे सम्पूर्ण मिथलांचल को, वहाँ के नदी, पोखरों को, हरे-भरे खेतों को और पेड़-पौधों को भी गले लगाने की अनुभूति करते है -

आओ साथी गले लगा लूँ,
तुम्हें तुम्हारी मिथिला की प्यारी धरती को,
तुममें व्यापे विद्यापति को,

---

१. गुलमेंहदी, केदारनाथ अग्रवाल पृ० ११९
२. फूल नही रंग बोलते है, केदारनाथ अग्रवाल पृ० १०३

और वहाँ की जनवाणी के छन्द चूम लूँ,
और वहाँ के गढ़-पोखर का पानी छूकर नैन जुड़ा लूँ,
और वहाँ के दुखमोचन, मोहन मांझी को मित्र बना लूँ,
और वहाँ के हर चावल को हाथों में ले हृदय लगा लूँ,
और वहाँ की आबहवा से वह सुख पा लूँ ।(१)

प्रकृति-प्रेम :-

प्रकृति के प्रति केदार के हृदय में जो अदम्य उत्साह है, वह भी देश-प्रेम का ही अंश है । अपनी सुपरिचित प्रकृति के साथ घण्टों हँसना-खेलना और यह सिलसिला लगातार जारी रखना बिना सच्चे प्रेम के सम्भव ही नही है । केदार ने प्रकृति की भिन्न-भिन्न मुद्राओं के साथ अपनी गहरी आत्मीयता का परिचय दिया है । नदी-पहाड़, पेड़-पौधें, पशु-पक्षी सभी उनके बन्धु-बांधव सरीखे दिखते है । वे जब किसी प्राकृतिक दृश्य को देखते है तो एक क्षण के लिए उन्हें ऐसा लगने लगता है मानों वह स्वयं प्रकृति का एक अंश हों । चिड़िया पानी में डुबकी लगाती है और गर्व से इठलाती हुयी उड़ जाती है । कवि को ऐसा लगता है मानों वह चिड़िया कोई और नहीं, वे स्वयं है जो चिड़िया बन कर नदी के साथ हँसते-खेलते है -

वह चिड़िया जो -
चोंच मार कर
चढ़ी नदी का दिल टटोल कर
जल का मोती ले जाती है
वह छोटी गरबीली चिड़िया
नीले पंखों वाली मै हूँ
मुझे नदी से बहुत प्यार है ।(२)

मानव-प्रेम :-

केदार की प्रेम भावना भिंन्न-भिन्न रंग-रूपों में दूर-दूर तक फैली हुयी दिखायी देती है। वे मूलतः मानवीय प्रेम के पोषक कवि है, उन्हें मनुष्य मात्र से सच्चा स्नेह है, फिर चाहे वह मनुष्य किसी भी देश या जाति का क्यों न हो । उन्होंने अनेक कविताओं में रूस की जनता को सराहा है और वियतनामी गुरिल्लों को बधाई दी है । वे हर उस व्यक्ति या समूह को अपना समर्थन देते है जो मानवीय-स्वतंत्रता का पक्षधर है । उनका पक्का विश्वास है कि आदमी को आदमी से जोड़ने का कार्य केवल सच्चे प्रेम के द्वारा ही सम्भव है । यदि मनुष्य में प्रेम न हो तो फिर उसमें और जानवर में फर्क ही क्या रहेगा ? प्रेम ही मनुष्य की पशुता से उसे उबार कर सच्चे अर्थों में मनुष्य बनाता है और उसके जीवन को उत्साह से भर देता है -

---

१. फूल नही रंग बोलते है, केदारनाथ अग्रवाल पृ० ८९
२. वही, पृ० १०१

प्रेम ने छुआ
जानवर से आदमी हुआ
पथराया दिल
कुमुद हुआ
सूर्य की आग
वरदानी हुई
भूमि की देह धानी हुई ।(१)

मन की उदासी :-

केदार आशा और विश्वास के कवि है । साधारणतया वे निराशा को अपने पास नहीं फटकने देते । पर अनचाहे ही कभी न कभी नैराश्य का आगमन हो ही जाता है, पर ऐसे क्षण केदार के जीवन में कम ही आते है ।एक सुविधा सम्पन्न मध्यम वर्गीय कवि के जीवन में निराशा का कोई काम नहीं है । यदि परिस्थितिवश कोई उदासी आती भी है तो थोड़े समय के लिये ही रह पाती है । कवि ने उदास क्षणों का चित्रण प्रकृति के माध्यम से किया है और उसमें उसे अपेक्षित सफलता भी मिली है -

यह उदास दिन
पेंशन पाये चपरासी - सा,
और जुयें में हारे जन - सा,
आपे में खोयें गदहे - सा
मौन खड़ा है ।
रवि रोता है
माँ से बिछुड़े हुए पुत्र - सा ।
धूप पड़ी है
परित्यक्ता पत्नी - सी कातर । (२)

अभीष्ट व्यक्ति या वस्तुओं का अभाव मानसिक पीड़ा को जन्म देता है । मनुष्य लाख कोशिश करे तो भी पीड़ा की अनुभूति प्रकट हुए बिना नही रहती । कवि जब वर्तमान परिस्थितियों पर दृष्टिपात करता है तो उसे बड़ी व्यथा और दीनता दिखायी देती है, बिल्कुल वैसी ही जैसी पतझड़ के दिनों में वनस्थली का रूप - रंग उतर जाता है और पत्र - पुष्पहीन वृक्ष उस पीड़ा की प्रत्यक्ष अभिव्यक्ति करतें है । कवि ने प्रकृति को आधार बनाकर मानव-जीवन की खिन्नता और छिन्नावस्था का सुन्दर चित्र अंकित किया है -

---

१. आत्मगंध, केदारनाथ अग्रवाल पृ० २०६
२. फूल नहीं रंग बोलते है, केदारनाथ अग्रवाल पृ० ३४

मौनमना मिट्टी की पीड़ा

दीना, हीना, गात-मलीना,

वल्कल-वसना,

कुण्ठित, कृपणा

मैदानों में पुष्प - विहीना,

खिन्न खड़ी है,

छिन्न छली - सी ! (१)

शोक :-

यह उदासी करूण - रूप धारण कर लेती है, जब कवि पर परिस्थिति की विकट मार पड़ती है । एक पिता के लिए इससे अधिक शोक की बात और क्या हो सकती है कि उसके सामने उसकी बेटी विधवा हो जाये । जब केदार को अपनी प्रिय पुत्री के वैधव्य का दु:खद समाचार मिलता है तो वे पल भर के लिए शोक-सागर मे डूब जाते हैं और उनके संयम का बाँध टूटा जाता है । उनका ह्दय करूण-क्रन्दन करने लगता है -

माह फरवरी का छब्बिसवाँ दिन था

बिटिया मेरी किरन हुई फिर विधवा

तज कर गये हरीश जी

भारी बज्राघात हुआ हम सब पर

रोये, तड़पे और विकल घबरायें,

दिन की बाँह रहे हम पकड़े पल-छिन,

चले डोलते डगमग पाँव बढ़ाये

रातें काटीं बिना नींद के हमने

सांसें लेते रहे प्राण को साधे

अंधकार में दिखे न हमको तारे

टूटा धैर्य रहे हम उसको बाँधे ।(२)

इसी प्रकार जब केदार की धर्मपत्नी असमय ही काल कवलित हो जाती है तो कवि को गहरा आघात पहुँचता है । यह एक ऐसी पीड़ा है जिसे न तो वे खुलकर किसी के सामने व्यक्त कर सकते हैं और न उसे अपने अन्दर दबाये रह सकते है । एक विचित्र-सी घुटन का अनुभव कवि करता है । पत्नी के निधन से शोक संतप्त कवि बीते दिनों की स्मृतियों में डूबा रहता है और जब उसका करूणा-कलित ह्दय व्याकुल होता है तो अपनी पीड़ा को कविता में ढ़ाल कर

१. गुलमेंहदी, केदारनाथ अग्रवाल, पृ० १३७

२. बोले बोल अबोल केदारनाथ अग्रवाल पृ० ६२

उसे संतोष करना पड़ता हैं -

नदी ने वरसों
जिसे प्यार किया
मिलन के लिए
जिसका रोज
इंतजार किया,
पाकर जिसे तृप्त काम किया
अब
आज
उसी की लाश लिये बहती है
विरह-विलाप का
शोक-संताप सहती है
किसी से कुछ नहीं कहती है
करुणाकुल छलछलाती रहती है ।(१)

<u>करूणा</u> :-

दु:ख से द्रवित होने का नाम करूणा है और इसीलिए करूणा में दु:ख के कारण को दूर करने की छटपटाहट बराबर बनी रहती है । संवेदनशील कवि केवल अपने निजी दु:ख से ही द्रवित नहीं होता, बल्कि दूसरों के दु:ख से भी संवेदित होता है । केदार ने समाज के विभिन्न वर्गो का जो दु:ख दैन्य चित्रित किया है, उसके पीछे भी यही भावना रही है । वे जब किसान-मजदूर और अन्य शोषित वर्गो की दुरवस्था का चित्र अंकित करते है तो उनका उद्देश्य यही रहता है कि वे लोगों में अपने अधिकारों के प्रति जागरुकता पैदा करें और अपनी दुर्गति का स्पष्टीकरण जानकर उसका स्थायी निदान खोजें । भारतीय समाज जो स्त्रियों को देवियों की श्रेणी में रखता आया है, आज अपने स्थापित मूल्यों से स्खलित हो गया है । स्त्रियों की दशा, विशेष रूप से, ग्रामीण स्त्रियों की हालत जानवरों से भी बदतर है । रात-दिन काम करने के बाद भी उन्हें खाना-कपड़ा और मकान की बुनियादी जरूरतों का अभाव झेलना पड़ता है । कवि उनके कारूणिक जीवन के साथ आत्मगत संवदेना अनुभव करते हुए उनकी दिनचर्या का एक मार्मिक चित्र इन शब्दों में अंकित करता है -

गाँवों की औरतें
गन्दी कोठरियों में हाँफती -

---

१. आत्मगंध केदारनाथ अग्रवाल पृ० १४७

खाँसती, खसोटती रूखे बाल
घिसती है जाँता जटिलतर,
गाँव की औरतें,
सूखा पिसान फाँक-फाँक कर,
पीठ-पेट एक कर-हाड़ तोड़,
मरती है पत्थर रगड़ कर !! (१)

आक्रोश :-

केदार की करूणा केवल आँसू बहाने तक सीमित नहीं है अपितु वे सामाजिक विषमता और विद्रूपता के मूलभूत कारणों पर जमकर प्रहार भी करते है । वे जानते है कि समाज में व्याप्त शोषण और उत्पीड़न पूँजीपतियों की देन है इसलिए पूँजीपतियों के प्रति केदार के मन में बहुत घृणा और आक्रोश है । वे अपनी घृणा को कभी सीधे-सीधे ब्यक्त करते है और कभी उसे व्यंग्य में ढ़ाल कर प्रस्तुत करते है । गाँव का महाजन पूँजीपतियों के वर्ग का ही एक पात्र है जो गाँव के भोले-भाले किसानों को ऊँची दरों पर ब्याज लेकर ऋण देता है और किसानों की विवशता का नाजायज फायदा उठाता है । केदार ने इन महाजनों को अपने व्यंग्य का निशाना बनाया है और इस तरह अपनी घृणा और आक्रोश को वाणी दी है -

"वह समाज के त्रस्त क्षेत्र का मस्त महाजन,
गौरव के गोबर गनेश-सा मारे आसन,
नारिकेल-से सिर पर बाँधे धर्म-मुरैठा
ग्राम बधूटी की गोरी गोदी पर बैठा
नागमुखी पैतृक सम्पत्ति की थैली खोले
जीभ निकाले, बात बनाता करुणा घोले
ब्याजस्तुति से बाँट रहा है रूपया-पैसा
सदियों पहिले से होता आया है ऐसा ।"(२)

देश को आजाद हुए अर्द्धशती गुजर गयी किन्तु अभी तक सच्चे अर्थो में जनता को आजादी नहीं मिल सकी । कहने को तो यहाँ लोगों के द्वारा चुने हुए प्रतिनिधि लोगों के भले के लिए कार्यरत है, किन्तु वस्तु स्थिति इससं सर्वथा भिन्न है । लोगों के भले की बातें सिर्फ बातें है, वास्तव में, भला तो केवल राजनेता अपना कर रहे है । नेता जो कभी देश का सच्चा सेवक हुआ करता था, आज देश का सबसे अधिक खून वही चूस रहा है । देश की दयनीय दशा के लिए पूँजीपति जितने जिम्मेदार है, उससे कहीं अधिक देश के राजनेता इसका कारण है । इसीलिए

१. जो शिलायें तोड़ते हैं — केदारनाथ अग्रवाल — पृ० ७७
२. फूल नहीं रंग बोलते है — केदारनाथ अग्रवाल — पृ० ८२

केदार इन राजनेताओं पर तीखें व्यंग्य करते है और इनके प्रति अपना क्षोभ और आक्रोश व्यक्त करते है ।

देश में लगी आग को
लफ्फाजी नेता
शब्दों से बुझाते है,
वाग्धारा से
ऊसर को उर्वर
और देश को
आत्म-निर्भर बनाते है
लोकतंत्र का शासन
भाषण - तंत्र से
चलाते है । (१)

समाज में उत्तरोत्तर मानवीय मूल्यों का ह्रास हुआ है । आपस की विश्वसनीयता कम हुयी है, दायित्वहीनता बढ़ी है । आदमी, आदमी से क्रमशः दूर होता गया है । एक-दूसरे के सुख-दुख में सम्मिलित होने की मानसिकता नहीं रही । कहने को हम आत्मीयता और भाई-चारे के अटूट बंधन में बंधे हुये हैं, किन्तु सच्चाई यह है कि हमारे सामाजिक सरोकार अब वैसे नही रहे, जैसे पहले कभी हुआ करते थे । उदारता की जगह स्वार्थपरता ने ले ली है और इस स्वार्थ-भावना से पूरा देश पीड़ित है, अपने सिवा किसी और की किसी को परवाह नहीं है -

हरेक बंद है अपनी गली में
नाज जैसे फली में
गंध जैसे कली में (२)

(ख) विचार-सौन्दर्य :-

मार्क्सवादी चेतना :-

केदार सिद्धान्ततः मार्क्सवादी है । उन्होंने दुनिया को मार्क्स की द्वन्द्वात्मक भौतिकवादी दृष्टि से देखने का प्रयास किया है । उनकी मान्यता है कि मार्क्सवाद जीवन का सबसे अधिक वैज्ञानिक-दर्शन है । (३) मार्क्सवाद पर आधारित राजनीतिक व्यवस्था को लेनिन के नेतृत्व में सन् १९१७ में रूस ने लागू किया । राजनीति की दृष्टि से इसे साम्यवादी व्यवस्था कहते है । यह व्यवस्था मनुष्य को सर्वाधिक महत्वपूर्ण प्राणी मानते हुए उसकी सुख-सुविधाओं की आपूर्ति का वचन

१. मार प्यार की थापें, केदारनाथ अग्रवाल, पृ० २६
२. आग का आईना, केदारनाथ अग्रवाल, पृ० ८०
३. समय समय पर, केदारनाथ अग्रवाल, पृ० ०४

देती है । सम्पत्ति पर व्यक्तिगत अधिकार को समाप्त कर समाज के सामूहिक स्वामित्व की उद्घोषणा करती है । समाज से शोषण और उत्पीड़न मिटाने का यह सर्वोत्तम विकल्प है । केदार इस व्यवस्था के पक्षधर हैं और उनकी विचारधारा मूल रूप से रूस और लेनिन की द्वन्द्वभेदी दृष्टि से अनुप्रमाणित है । वे साफ शब्दों में स्वीकार करते हैं कि -

मेरे अन्दर है
एक देश
दृढ़ात्मा का
अखण्ड है जिसका बलिष्ठ शरीर
उसी से मिली है मुझे
द्वन्द्वभेदी दृष्टि
जमीन में जीने की दृढ़ आस्था,
उसी के लिए जीता हूँ मैं
काव्य में
उसी का पुंसत्व व्यंजित करने के लिये । (१)

अकेले रूस ही नहीं कवि को चीन, इण्डोनेशिया, ब्रह्मदेश आदि सर्वहारा क्रान्ति के अग्रणी देशों से एक स्फूर्ति और नई चेतना प्राप्त होती है । उसे ऐसा महसूस होता है कि जहाँ- कहीं भी साम्यवाद का जयघोष होता है, वह जीवन का सन्देश लेकर ही आता है और शोषित, पीड़ित जन-समूह को अपने अधिकारों के लिए लड़ने की प्रेरणा देता है । कवि इस जीवन-संगीत को सुनकर उत्साह और आनंद से भर उठता है -

मैं नहीं मरा हुआ हूँ आदमी,
क्योंकि पूर्वीय क्रान्ति,
अब शरीर में सप्राण,
आज व्याप्त हो गई है,
और लाल चीन मुझे,
दे रहा है जिंदगी ही जिंदगी
समुद्र की,
रक्त के प्रभात-सा
इण्डोनेशिया मुझे,
खिला रहा है फूल-सा,
जिला रहा है धूप-सा,

---

१. आधुनिक कवि - 16 केदारनाथ अग्रवाल, पृ० १३९

इंकलाब - इंकलाब
गा रहा है ब्रह्मदेश
आज आत्मगीत बन । (१)

इसी दर्शन से प्रभावित होकर कवि ने व्यक्ति की वैयक्तिकता को नकारते हुये समष्टि का महत्व प्रतिपादित किया है । आज की दुनिया में सामाजिक चेतना जाग्रत करना अत्यन्त आवश्यक है । व्यक्ति की स्वतंत्र इकाई का अब कोई मूल्य नहीं रह गया । कवि व्यक्ति को समाज के भले के लिए आत्मसमर्पण कर देने का मन्तव्य व्यक्त करता है और इस तरह समाजवादी विचारधारा के प्रति अपनी दृढनिष्ठा की पुष्टि करता है-

सबके लिए समर्पण सब कुछ
अपना अहं, पुरातन, नूतन,
....
अपनी-अपनी भिन्न इकाई का
अब कोई मूल्य न दर्शन । (२)

केदार व्यक्तिवादी जीवन-दर्शन का खुलकर विरोध करते है उनकी दृष्टि में अपने व्यक्तिगत स्वार्थो के लिए जीना न जीने के बराबर है । स्वकेन्द्रित मानसिकता से न व्यक्ति का भला हो सकता है और न समाज का । मनुष्यता का विकास तो तभी सम्भव है, जब मनुष्य, मनुष्य के लिए जीने लगें । बिना सामाजिक धरातल के मनुष्य की मनुष्यता अर्थहीन हो जाती है । व्यक्तिवाद का खण्डन करते हुए केदार ने लिखा है कि -

अपने लिए
जीने का अर्थ है,
न जीना,
जमीन, आसमान,
आग, हवा, पानी
और प्रकाश से
अनुप्राणित
न होना,
स्वयं में
सिकुड़ना
स्वयं में समाहित होना,

---

१. वसन्त में प्रसन्न हुयी पृथ्वी केदारनाथ अग्रवाल, पृ० ३१-३२
२. फूल नही रंग बोलते है, केदारनाथ अग्रवाल, पृ० ६८

न पशु होना,

न आदमी होना,

दिक्काल में

अपरिभाषित

होना । (१)

केदार लेखन के क्षेत्र में समाजवादी दर्शन के साथ प्रतिबद्धता के सिद्धान्त को स्वीकार करते है । (२) वे लेखक की वैचारिक अभिव्यक्ति की वैयक्तिक स्वतंत्रता को मात्र उसकी अहंवादी प्रवृत्ति मानते है । उनकी दृष्टि में सर्वजनीन जीवन की प्राप्ति और उसकी अभिव्यक्ति ही सच्चे और उत्तम काव्य-साहित्य का धर्म है ।(३) केदार कला की सोद्देश्यता वादी विचारधारा का समर्थन करते है । उनकी दृष्टि में कला, कला के लिए नही हो सकती, उसका उद्देश्य है - 'वर्गहीन समाज और राष्ट्र की स्थापना करना । (४) इसी वर्गहीनता और राष्ट्र के उत्थान का संकल्प लेकर वे काव्य-क्षेत्र में पदार्पण करते है । अपने लेखन का उद्देश्य उन्होंने इन शब्दों में स्पष्ट किया है-

जिऊँगा लिखूँगा

कि जो ढह गया है

समुन्नत नहीं जो यहाँ रह गया है,

उसे प्रेम से - क्षेम से मै उठाऊँ,

कि जो रह गया है

प्रखर धार में जो नहीं बह गया है

उसे शक्ति से और श्रम से बढ़ाऊँ । (५)

केदार कवि के दायित्व को भली-भाँति जानते है । वे मानते है कि कवि समाज को चटपट बदल नहीं सकता, किन्तु सामाजिक क्रान्ति-चेतना को विकसित करने में वह अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकता है । केदार के अनुसार कवि जन सामान्य की मानसिकता बदलने का कार्य ही कर सकता है और इसके लिये उसे स्वयं को समर्पित कर देना चाहिए । (६)

पूँजीवादी व्यवस्था का विरोध :-

केदार का समस्त काव्य मार्क्सवादी चेतना से अनुप्राणित है । उन्होंने वस्तु-जगत की हर

---

१. पंख और पतवार, केदारनाथ अग्रवाल, पृ० ४४

२. विचार बोध, केदारनाथ अग्रवाल, पृ० १२५

३. समय समय पर, केदारनाथ अग्रवाल, पृ० ८९

४. वही, पृ० ७७

५. गुलमेंहदी, केदारनाथ अग्रवाल, पृ० १६८

६. विवेक विवेचन, केदारनाथ अग्रवाल, पृ० १७६

गतिविधि को मार्क्सवादी दृष्टि से ही जाँचा-परखा है । उनकी सामाजिक यर्थाथवादी कविताएं और राजनीतिक व्यंग्य इसी दृष्टि की देन है । आरम्भ में कांग्रेस और कांग्रेसी नेताओं की रीति-नीति पर कवि ने जो प्रहार किये है वे सब मार्क्सवादी नजरिये का ही परिणाम है । कवि को ऐसा लगता हैं कि स्वतंत्रता के बाद कांग्रेसी नेता पूँजीपतियों के साथ साँठ-गाँठ करकं करके अपनी तिजोरियाँ भरने में लग गये हैं और आम जनता के दु:ख दर्द से इन्हें कोई सरोकार नही रह गया । अमीर और अमीर होता जा रहा है, और गरीब की हालत पहले से और बदतर होती जा रही है । कवि ऐसी भ्रष्ट राजनीति को आड़े हाथों लेता है -

आग लगे इस राम-राज्य में
ढ़ोलक मढ़ती है अमीर की
चमड़ी बजती है गरीब की
खून बहा है राम-राज्य में
आग लगे इस राम-राज्य में (१)

यह इसी पूँजीवादी शासन व्यवस्था का दुष्परिणाम है कि आज देश भ्रष्टाचार में आकण्ठ डूब चुका है ।नीचे से लेकर ऊपर तक शासन और सरकार से जुड़ा हर व्यक्ति भ्रष्टाचारी हो गया है । यह भ्रष्टाचार अनेक रूपों में दूर-दूर तक अपनी जड़े जमाये हुये है । कभी यह भाई-भतीजावाद के नाम पर पलता है तो कभी रिश्वत या दलाली का रूप धारण कर लेता है। बड़े-बड़े राजनेता धोखाधड़ी के मामलों में चर्चा के विषय बने हुये है । जब कभी बात हद से आगे बढ़ जाती है तो सम्बन्धित प्रकरण की जाँच कराने के लिए आयोग गठित कर दिये जाते है। आयोग दर-आयोग बैठते रहते है, जाँच होती रहती है, लोगों के चेहरों से नकाब उतरता रहता है, लेकिन विडम्बना यह है कि स्थितियों मे कोई सुधार नहीं होता । कवि की यर्थाथवादी दृष्टि इस पीड़ा को इन शब्दों में अनावृत करती है -

चलनी चालते है छोटे-बड़े आयोग ।
छेद-छेद से झराझर झरता है
तथाकथित यशस्वियों का भ्रष्टाचार,
आततायियों का अत्याचार ।
काँच-काँच के करकते टुकड़ों का
लग गया है भारी -भरकम अम्बार । (२)

ईश्वर और धर्म के प्रति नकारात्मक दृष्टिकोण :-

घोषित मार्क्सवादी होने के कारण केदार ईश्वर और धर्म सम्बन्धी परम्परागत मान्यताओं

१. कहें केदार खरी-खरी, केदारनाथ अग्रवाल, पृ० ८१
२. मार प्यार की थापें, केदारनाथ अग्रवाल, पृ० २९

को स्वीकार नहीं करते । 'अनहारी हरियारी' काव्य संकलन की प्रस्तावना में केदार ने लिखा है कि - ''मैं नही मानता कि कोई एक ऐसा अस्तित्व है जो सबके अस्तित्वों का कारण है - जो सर्वज्ञ है - जो अजन्मा है - जो निर्लिप्त है - जो न देश मे है न काल में - फिर भी सृष्टिकर्ता है, नियंता है ।'' (१) ईश्वर को नकारना मार्क्सवाद की पहली शर्त है । मार्क्स वस्तुजगत के अतिरिक्त किसी अलौकिक जगत की कल्पना नहीं करता, वह नहीं मानता कि मनुष्य से बड़ी कोई शक्ति इस सृष्टि में है । ईश्वर सम्बन्धी चिन्तन मनुष्य के मस्तिक की उपज है ।मनुष्य ही इस सृष्टि की सर्वोच्च सत्ता है, उस पर किसी और के नियंत्रण होने का कोई प्रश्न ही नही उठता । केदार ने अपने लेखन में इसी मान्यता का प्रतिपादन किया । उनका कहना है कि -

ईश्वर को आदमी ने जन्म दिया,
ईश्वर ने आदमी को नही दिया ।
ईश्वर से मतलब क्या आदमी के जन्म से ।
आदमी तो जीवन - विकास का प्राणी है ।।
ईश्वर तो बाद को आया है,
आदमी ने उसको तो
केवल कौतूहल से
भावना के पिंड से रचाया है । (२)

यह कविता केदार ने साहित्य के प्रगतिशील आन्दोलन में दाखिल होने के बाद लिखी थी । किन्तु अपने काव्य-जीवन के आरम्भिक वर्षो में जब वे अपने हृदय की अनारोपित भावनाओं को व्यक्त करते है, तब उन्हें निश्चय ही उस परम शक्तिमान, सामर्थ्यवान, सुखनिधान परमात्मा का स्मरण रहता है । वे उस परमात्मा के प्रति अपना प्रेम-निवेदन इन शब्दों में करते है -

ओ शक्तिवान ।
सामर्थ्यवान ।
उस पार क्षितिज से गा न गान
वैभव पूरित यह गा न गान -
''मैं हूँ महान - मैं सुख-निधान ।''
ओ शक्तिमान ।
सामर्थ्यवान । (३)

इतना ही नही वे एक सामान्य भारतीय की तरह बार-बार यही अभिलाषा करते है कि

---

१. अनहारी हरियाली, केदारनाथ अग्रवाल, पृ० १५
२. जो शिलायें तोडते है, केदारनाथ अग्रवाल, पृ० १०२
३. वही, केदारनाथ अग्रवाल, पृ० १९

उसका सम्पूर्ण जीवन भगवान के श्री-चरणों में ही समर्पित रहे -

विधि ने यह हो लिखा भाल में, यदि मै सच ही बढ़ पाऊँ,
बनकर कुसुम खिलूँ, खिल कर मैं, फिर रजकण में मिल जाऊँ,
तो भगवान 'वह तेरी ही हो, पदरज वहाँ परम प्यारी,
मिल कर जिसमें करूँ अन्त मै, जीवन की घड़ियाँ सारी ।।(१)

किन्तु कवि की यह अभिलाषा बीच में ही दम तोड़ देती है, जब उन्हें मार्क्सवादी चिन्तन यह बतलाता है कि ईश्वर तो कहीं है ही नहीं, वह तो मात्र एक कपोल कल्पना है । मार्क्स की विचारधारा के सम्पर्क में आने के बाद केदार की आँखे खुल जाती है और वे ईश्वर की सत्ता को एकबारगी नकार देते है । न केवल ईश्वर बल्कि ईश्वर से जुड़ी हुई हर बात उन्हें पूँजीपतियों के सुनियोजित वैचारिक षड्यन्त्र का एक हिस्सा लगने लगती है । मार्क्स ने धर्म को नशा कहा है । पूँजीपति भोली-भाली जनता को धर्म का भय दिखाकर तरह-तरह से लूटता-खसोटता है । इसीलिए दुनिया में सैकड़ों धर्म-सम्प्रदाय विकसित हो रहे है और अपनी-अपनी श्रेष्ठता प्रदर्शित करते है । भारत में भिन्न-भिन्न धर्मावलम्बी मूर्ति-पूजा के द्वारा मनोकामनाओं की पूर्ति का मार्ग बतलाते है । केदार ने मूर्तिपूजा का उपहास करते हुए तीखे व्यंग्य किये है -

छोटी - सी देवमूर्ति
आले में रक्खी थी ।
बेचारे औचक ही,
चूहे के धक्के से,
दाँसा के पत्थर पर,
नीचे गिर टूट गई ।
ताज्जुब है मुझको तो ।
करूणा के सागर के
अन्तर की एक बूँद,
भूमि पर न छलकी ।। (२)

चूहे के धक्के से देवमूर्ति का पत्थर पर गिरना और टूट कर बिखर जाना कवि को आश्चर्य में डाल देता है । वह मूर्ति नष्ट हो गयी, किन्तु उस मूर्ति में बसा भगवान तनिक भी द्रवित नहीं हुआ । जो भगवान करूणा-सागर कहलाता है, अपने भक्तों की आर्त्त पुकार सुनकर दौड़ा चला आता है, वह जब स्वयं एक छोटे से आघात से अपनी रक्षा नहीं कर पाता, तो भला

---

१. जो शिलायें तोडते है, केदारनाथ अग्रवाल, पृ० ३९

२. गुलमेंहदी, केदारनाथ अग्रवाल, पृ० ३३

कोई और उससे क्या उम्मीद कर सकता है ? कवि को लगता है कि यह लोगों का मात्र अंधविश्वास है कि वे पत्थर या धातुओं की मूतिर्यो के भरोसे कुछ पा लेंगे ।

इसी प्रकार कवि देखता है कि लखनऊ के अमीनाबाद स्थित महावीर जी के मन्दिर में भक्तों की अपार भीड़ एकत्र होती है । ढ़ेरों प्रसाद उन पर रोज चढ़ता है । मंगलवार के दिन विशेष भीड़ होती है । स्त्री और पुरूष, बालक और वृद्ध सब मिलकर हनुमान जी की पूजा-अर्चना के लिए उमड़ पड़ते हैं । यह क्रम सैकड़ों वर्षो से लगातार चल रहा है । किन्तु उसी स्थान में एक ओर धन कुबेरों का बहुत बड़ा बाजार सजा हुआ है, जहाँ पैसे वाले ऊँची-ऊँची दुकानों में जाकर मंहगे दामों पर चीजें खरीदते हैं और दुकानदार उन्हें दिन-दहाड़े लूटता है, जबकि दूसरी ओर एक गंदी बस्ती है जहाँ हजारों नंगे-भूखे नारकीय जीवन जी रहे हैं, किन्तु उनकी पीड़ा को देखने-सुनने वाला कोई नहीं है । इन दोनों विषम वर्गो के बीच में महावीर जी की पत्थर की मूर्ति है । वे एक हाथ में गदा और दूसरे में पर्वत धारण किये हुए हैं । वे वीरों में महावीर हैं और असीम शक्ति सम्पन्न हैं । अपने भक्तों की पीड़ा को वे पल भर में दूर कर सकते हैं । किन्तु ऐसा कुछ नहीं होता । महावीर जी इस अनाचार को देखते हुये भी चुप बने रहते हैं और शोषण-चक्र बराबर चलता रहता है । कवि को लगता है कि यह पूजा-पाठ निरर्थक है, यह केवल एक अंधश्रद्धा मात्र है । वस्तुत: महावीर जी एक पत्थर के सिवा कुछ भी नही हैं । वे इस अंधी मानसिकता का उपहास करते हैं और इस तरह स्थापित देवी-देवताओं के अस्तित्व को नकारते हैं-

महावीर जी पत्थर के हैं,
उनकी गठन बहुत साधारण
नहीं कला की अनुपम कृति है ।
अंग - अंग सिंदूरी रंग से सना हुआ है,
गदा और पर्वत धारे है,
महावीर हैं ।
राम और सीता के सेवक मौन खड़े हैं ।
ऐसे बलधारी को निर्बल पूज रहे हैं ।। (१)

कवि की मार्क्सवादी चेतना उसे न केवल ईश्वर और धर्म का विरोधी बना देती है बल्कि वह हर प्रकार कीं परम्परा का विरोध करने पर आमादा दिखायी देता है । उसके लिये नियति, भाग्य आदि का कोई अर्थ नहीं है । प्रगति यदि भाग्य के अधीन होती तो अब तक मनुंष्य के सारे दु:ख-दर्द मिट गये होते, किन्तु यहाँ तो आदमी आगे बढ़ने की जगह पीछे की ओर खिसकता जा रहा है। यह सब आदमी के परम्परावादी सोच और उसकी निष्क्रियता के कारण ही हुआ है । केदार इस

---

१. गुलमेंहदी, केदारनाथ अग्रवाल, पृ० ४२

जड़ता को मिटाने की बात करते है । और कर्मशील जीवन जीने का संदेश प्रसारित करते है -

रोटी तुमको राम न देगा ।
वेद तुम्हारा काम न देगा ।।
जो रोटी के लिए लड़ेगा ।
वह रोटी को आप वरेगा ।। (१)

<u>जिजीविषा</u> :-

जीवन के प्रति केदार का दृष्टिकोण उत्साहवर्धक है । वे मनुष्य-जीवन की सार्थकता मनुष्यता के लिए संघर्षरत रहने में पाते है । उनके व्यक्तिगत जीवन में जीवन के प्रति अदम्य जिजीविषा दिखायी देती है । वे संघर्षपूर्ण जीवन जीकर मानवीय बोध जगाना चाहते है । उनकी जिजीविषा का कारण निम्न पंक्तियों में द्रष्टव्य है -

सौन्दर्य को चूम पाने के लिए,
अर्थाघोष से घहराने के लिए,
मनोभूमि की जड़ता तड़काने के लिए,
मानवीय-बोध की फसल उपजाने के लिए,
रम्य रचनाओं की सम्पदा सरसाने के लिए । (२)

जीवन के प्रति कवि आस्थावान है और वह चाहता है कि जीवन का मानवीय-मूल्यों के विकास में अधिकाधिक उपयोग किया जाना चाहिए । कवि संकल्प करता है कि वह लोगो को सच्चाई का दर्पण दिखायेगा और उन्हें अपने अधिकारों के प्रति जागरूक करेंगा । एक कवि होने के नाते वह जीवन का यह संदेश घर-घर पहुँचा देनाा चाहता है । जीवन और लेखन के प्रति अपनी प्रतिबद्धता को कवि इन शब्दों में दुहराता है -

जिऊँगा लिखूँगा
कि मैं जिन्दगी को
तुम्हारें लिए और अपने लिए भी
अनूठी मिली एक निधि मानता हूँ । (३)

केदार जीवन के प्रति इतने आश्वस्त और लेखन के प्रति इतने समर्पित है कि बुढ़ापे में भी उनके चेहरे पर थकान के चिन्ह नही दिखायी देते । उन्होंने अपनी काव्य-यात्रा जहाँ से आरम्भ की थी उसी मार्ग पर, उसी गति से आज भी चलते चले जा रहे है । उनकी जिजीविषा महाकाल को भी चुनौती देती दिखायी देती है । शरीर के शिथिल हो जाने पर भी जीवन और जगत के

१. लोक और आलोक, केदारनाथ अग्रवाल, पृ० ४७
२. आत्मगंध, केदारनाथ अग्रवाल, पृ० ९०
३. प्रगतिशील काव्यधारा और केदारनाथ अग्रवाल, डॉ0 रामविलास शर्मा, पृ० ११८

प्रति उनकी आशायें अब भी यथावत बनी हुयी हैं -

हाँक रहा
मन-मीत महावत
तन का बूढ़ा हाथी,
जो बढ़ता है
हाँफ हाँफकर आगे,
झेल - झेलकर
महाकाल की आँधी
प्रबल
प्राण के बल - बूते पर
जीवन की लय साधे,
अभी न टूटे
ऐसी आशा बाँधे । (१)

कवि बड़े - बड़े आघातों से भी हताश नहीं होता । उसके हृदय की सच्चाई और कर्मयोग की साधना उसे विपरीत परिस्थितियों में भी टूटने से बचा लेती है । बुढ़ापे में कवि की धर्मपत्नी का आकस्मिक निधन हो जाता है । वह निरा अकेला पड़ जाता है । बाँदा में वह बिल्कुल अकेला घर में रहने के लिए विवश है । जो पत्नी प्रतिपल उसके साथ थी, उसका अभाव उसे बहुत कष्टकर प्रतीत होता है । बावजूद इसके वह पत्नी की स्मृतियों से प्रेरणा लेकर पूरी दृढ़ता के साथ अपने गन्तव्य की ओर बढ़ता जाता है -

जीने को जिऊँगा अब भी,
मरते दम तक,
बिना तुम्हारें,
प्रिया प्रियंबद !
दारूण, दाही, एक - एक दिन - रात काटते,
प्रेम - योग से ।
कर्म-योग की सिद्धि साधते । (२)

<u>मृत्युबोध</u> :-

कवि जानता है कि एक न एक दिन मृत्यु सभी का दरवाजा खटखटाती है । उसका

---

१. आत्मगंध, केदारनाथ अग्रवाल, पृ० ९१
२. वही, पृ० ३१

आना निश्चित है, वह किस रूप में आयेगी यह कोई नही जानता । जो बात अपनी जगह पर अटल है, उससे डरना या उसका नाम सुनकर चौकना दुर्बलता है । कवि ऐसे लोगों से जो मृत्यु से डर कर हताशा का जीवन जीते है, स्वस्थ्य दृष्टिकोण विकसित करने की अपेक्षा करता है । मृत्यु के भय से सुखमय जीवन को भी दुःख का घर मान लेना उचित नहीं है । कवि लोगों की विकृत मानसिकता को अंकित करते हुए जीवन के प्रति एक आशा और उत्साह भरा संदेश प्रसारित करता है -

मरना होगा यह निश्चित है
नहीं जानता कोई - कैसे ?
फिर भी हम
मरने से डरते,
डरते - डरते जीवन जीते,
जब तक जीते तुष्ट न होते,
असंतोष के आँसू रोते,
दुर्बल मन से दुर्बल प्राणी,
मरते दम तक हारे रहते,
बिना किनारा बहते-बहते
डूब - डूब कर
फिर उतराते,
सुख के साथ नहीं रह पाते,
हम सुख की लहरों से टूटे,
बूँद-बूँद बन सब से छूटे । (१)

नागार्जुन का भाव-सौन्दर्य

कविता का सौन्दर्य उसमें व्यक्त भावों और विचारों पर निर्भर करता है । भाव और विचार की संतुलित अभिव्यक्ति से ही कविता प्रभावपूर्ण बनती है । कवि कितना भी विचारशील क्यों न हो, जब तक उसके हृदय में नाना मनोरागों का उदय नही होता, तब तक कविता, कविता नही बन पाती । नागार्जुन एक संवेदनशील कवि है । उनके काव्य में प्रेम, करूणा, दया, ममता, क्रोध और आक्रोश के भाव स्वभावतः प्रकट होते है । नागार्जुन ने सम्पूर्ण मनुष्य जाति के प्रति प्रेम की अभिव्यक्ति की है । उनके लिए प्रेम का अर्थ स्त्री पुरूष के पारस्परिक अनुराग तक सीमित नहीं है । उनके रचना संसार में स्त्री प्रेम के साथ - साथ, देश-प्रेम, विश्व- प्रेम तथा प्रकृति-प्रेम

१. बोले बोल अबोल, केदारनाथ अग्रवाल, पृ० ८०

के उदाहरण भरे पड़े है । मूलतः वे मानवीय प्रेम के कवि है ।

दाम्पत्य-प्रेम :-

विवाह के थोड़े समय बाद ही नागार्जुन के मन में विरक्ति का भाव जाग पड़ा और वे अपनी पत्नी तथा परिवार को त्याग कर दूर शान्ति की खोज में निकल गये थे, किन्तु कुछ ही दिनों बाद वे पुनः अपनी पत्नी और परिवार से मिलने के लिए व्याकुल हो उठते है । उन्हें अपनी गलती का एहसास हो जाता है और वे बार - बार अपनी धर्मपत्नी के सिन्दूर तिलकित भाल का स्मरण करने लगते है । वे स्वीकार करते है कि पत्नी के प्रति उदासीन होकर उन्हें सुख -शान्ति मिल सकती । उनकी आत्मग्लानि और उनके हृदय में पत्नी की महत्ता का एक स्पष्ट चित्र निम्नलिखित पंक्तियों में देखा जा सकता है -

महत्वाकांक्षा तुम्हें ही भूल करके
पूर्ण होगी इसी से मै फूल करके
अकेले ही नाव खेने जा रहा था
सफलता का श्रेय लेने जा रहा था
किन्तु तेरे बिना सखि मधुकोश मेरा
हो चला है रिक्त, यह सब दोष मेरा
पिला दो जीवन सुधा दो एक मात्रा
स्मित मुखि, फिर कर सकूँ आरम्भ यात्रा
स्वप्न में ही सही तुम फिर मुस्करा दो ।
अमृत की दो बूँद इस मुंह मे गिरा दो
अनमनापन नहीं इस मन को सताए
चाहता हूँ, इसलियें तू याद आए । (१)

पत्नी के प्रति किये गये अपने निष्ठुर व्यवहार से कवि गहरे दुःख का अनुभव करता है । उसे इतनी आत्मग्लानि होती है कि वह अपने दोषों को स्वीकार करता हुआ बार - बार क्षमा-याचना करने के लिए आतुर हो उठता है । यह कवि के हृदय का पत्नी के प्रति एकान्तिक प्रेम ही है जो उसे प्रवास में बेचैन कर देता है और वह स्वयं को कोसने लगता है -

भाग आया एक दिन मै फोड़कर तकदीर तेरी
ठीक, लेकिन सामने है आज तो तसवीर तेरी
देख, अन्तःतल विकल है
सजनि, ये आँखें सजल है

---

१. विशाल भारती, जनवरी, १९४५

मर्जना कर दोष मेरे
बहुत कुछ अविहित किया है - बहुत कुछ अनुचित किया है
क्षमा कर दे मुक्त मन से क्योंकि तू सर्वसहा है । (१)

नागार्जुन का प्रेम परकीया भाव का नहीं है उनकी प्रेम - दृष्टि भोगवादी भी नही है। वे यदि किसी नारी के प्रति अपने प्रेम की अभिव्यक्ति करते हैं तो वह केवल उनकी धर्म - पत्नी है । उनकी प्रणय - भावना में सामाजिक नियमों से अनुशासित दाम्पत्य-प्रेम को ही महत्व मिला है । वे दीर्घकाल तक अपनी पत्नी के साथ रहने का संयोग नही जुटा पातें । स्वभाववश बार-बार उन्हें घर छोड़कर बाहर जाना पड़ता है, पर जब वे वापस लौटते हैं और अपनी पत्नी से मिलते हैं तो उनका प्रेम उमड़ पड़ता है और पत्नी का सानिध्य पाकर वे असीम सुख की अनुभूति करते हैं -

मधुर हो तुम और बंधन भी मधुर है
बेड़ियाँ है किन्तु इनमें दिव्य सुर हैं
देखकर अवसाद मेरा हिल गयी तुम
देखकर मुस्कान मेरी खिल गयी तुम
भर गया मैं स्फूर्ति से नव चेतना से
क्यों कि तुम परिपूर्ण थी संवेदना से । (२)

वात्सल्य-भाव :-

नागार्जुन की प्रेम - भावना सामाजिक मर्यादाओं से प्रतिबद्ध होने के कारण केवल पत्नी तक सीमित नही रहती, बल्कि घर के नन्हें मुन्ने बच्चे में वात्सल्य का रूप धारण करके पल्लवित होती हुयी दिखायी देती है । वे जब अपने घर वापस लौटते हैं तो अपने प्रिय पुत्र को देखकर उनका हृदय गद्गद हो जाता है पुत्र की दंतुरित मुस्कान उनके जीवन में नया प्राण फूँक देती है ।वे उसे संबोधित करते हुए अपने वात्सल्य भाव को इन शब्दों में व्यक्त करते हैं -

तुम्हारी यह दंतुरित मुस्कान
मृतक में भी डाल देगी जान
धूलि - धूसर तुम्हारे ये गात ....
छोड़कर तालाब मेरी झोपड़ी में खिल रहे जलजात
परस पाकर तुम्हारा ही प्राण,
पिघलकर जल बन गया होगा कठिन पाषाण । (३)

---

१. कौमी बोली, अक्टूबर, १९४४ पृ० ९६
२. हजार - हजार बाँहों वाली, नागार्जुन, पृ० ३२
१. नागार्जुन : चुनी हुई रचनाएं-2 शोभाकान्त मिश्र,

इसी प्रकार वे अपनी नवजात पोती के जन्म-दिन पर उसे वात्सल्य भाव की एक कविता भेंट करते है, जिसमें उनका मन दार्शनिक धरातल पर भावी मानव-सभ्यता की कल्पना करने लगता हैं । पोती की किलकारियाँ उनके हृदय की आशंकाओं को पल भर में दूर कर देती हैं । पोती के प्रति सहज स्नेह को व्यक्त करने वाली निम्न पंक्तियाँ द्रष्टव्य है -

कणिका, माई डियर !
"कहाँ पैदा हुई थी तेरी मम्मी !
कहाँ पैदा हुए थे तेरे पापा !
और, कहाँ आकर तू पैदा हुई ?
सोचता हूँ, भविष्य का मानव
'इन्टर कान्टिनल' होगा .... (१)

नागार्जुन के वात्सल्य मे उदारता दिखायी देती है उनकी ममता केवल अपने घर परिवार तक ही सीमित नहीं है, दूसरे बालक - बालिकाओं को भी वे उसी वात्सल्य भाव से स्नेह करतें है । वे किसी और को भी जब वात्सल्य - भाव से ओत - प्रोत देखते है तो उनका हृदय मचल उठता है । ऐसी ही एक घटना का वर्णन नागार्जुन ने 'गुलाबी चूडियाँ' शीर्षक कविता में किया है । बस में यात्रा करते समय कवि की दृष्टि ड्राइवर के सामने स्टेरिंग के ऊपर एक हुक से लटकी हुयी नन्हीं कलाइयों की गुलाबी चूड़ियों पर पड़ती है । जैसे - जैसे बस सड़क में हिचकोले खाती है, वे चूड़ियाँ हिल जाती है । यह दृश्य नागार्जुन के हृदय का वात्सल्य - भाव जगा देता है और वे उन चूड़ियों के बारे में ड्राइवर से पूछ ही बैठते हैं । ड्राइवर उन्हें उत्तर देता है -

अधेड़ उम्र का मुच्छड़ रोबीला चेहरा
आहिस्ते से बोला : हाँ साहब
लाख कहता हूँ, नही मानती है मुनिया
टाँगे हुए है कई दिनों से
अपनी अमानत
यहाँ अब्बा की नजरों के सामने
मै भी सोचता हूँ
क्या बिगाड़ती है चूड़ियाँ
किस जुर्म पे हटा दूँ इनको यहाँ से ?
और ड्राइवर ने एक नजर मुझे देखा
और मैने एक नजर उसे देखा
छलका रहा था दूधिया वात्सल्य बडी -बड़ी आँखो से । (२)

---

१. नागार्जुन : चुनी हुई रचनाएं-2 शोभाकान्त मिश्र, पृ० मुख पृष्ठ
२. नागार्जुन : चुनी हुई रचनाएं-2 शोभाकान्त मिश्र, पृ० १४७-४८

मैत्री-भाव :-

नागार्जुन का अधिकांश समय कवि-मित्रों के बीच व्यतीत होता है । उनके मित्रों में समान विचारधारा वाले कवि भी हैं और भिन्न विचारधारा वाले भी । मित्रता के बीच नागार्जुन वैचारिक मतभेद को स्थान नही देते । मित्रों के बीच आपसी कहा - सुनी भी होती है किन्तु नागार्जुन इसका बुरा नहीं मानते । लम्बे समय तक मित्रों से दूर रहना उन्हें खल जाता है । वे अपने एक प्रयोगवादी मित्र को जो किसी कारणवश उनसे रूठ गया था, मनाते हुए भाई का प्यार, बहिन की ममता, मीत का नेह-छोह सब कुछ उस पर निछावर का देना चाहते है । वे बड़े स्नेह से अपने रूठे हुए मित्र से अनुरोध करते हैं -

बहुत दिन हो गये
आओ साथ - साथ बैठें
भाई का प्यार -
बहन की ममता -
मीत के नेह - छोह -
आओ आज सब कुछ तुम्हीं पर उड़ेल दूँ ? (१)

अपने समानधर्मा कवि - मित्र शैलेन्द्र के आकस्मिक निधन से वे इतना व्याकुल होते है कि उनकी व्याकुलता कविता बनकर फूट पड़ती है । शैलेन्द्र के साथ नागार्जुन का बड़ा आत्मीय सम्बन्ध था । शैलेन्द्र इसलिए भी नागार्जुन को प्रिय थे, क्योंकि वे सच्चे अर्थो में जनकवि थे और उनके गीतों में सर्वहारा के दुःखों को पूरी संवेदनशीलता के साथ चित्रित किया गया है । फिल्म जगत से जुड़े होने के बावजूद शैलेन्द्र ने कभी भी सर्वहारा के प्रति उदासीनता नहीं दिखायी । कवि शैलेन्द्र के निधन पर वे उन्हें अपने छन्दों की श्रद्धाजंलि अर्पित करते है -

युग की अनुगुंजित पीड़ा ही घोर घन - घटा - सी गहराई
प्रिय भाई शैलेन्द्र, तुम्हारी पंक्ति-पंक्ति नभ में लहराई
तिकड़म अलग रही मुस्काती, ओह, तुम्हारे पास न आई
फिल्म जगत की जटिल विषमता आखिर तुमको रास न आई
ओ जन मन के सजग चितरे, जब जब याद तुम्हारी आती
आँखे हो उठती है गीली, फटने - सी लगती है छाती । (२)

मानव-प्रेम :-

नागार्जुन का प्रेम केवल अपने परिवार जनों या परिचित मित्रों तक सीमित नही है, वे

---

१. सतरंगे पंखों वाली, नागार्जुन, पृ० १७
२. नागार्जुन : प्रभाकर माचवे, पृ० १९

सहज भाव से देश और समाज के शोषित और पीड़ित जन समुदाय के प्रति स्नेह-भाव रखते हैं। जब वे आज के साधन-हीन सर्वहारा पर दृष्टिपात करते है और देखते हैं कि इनका परिवार रोटी-कपड़ा और मकान की जरूरत भी पूरा नहीं कर पाता, तो उनका ह्रदय स्नेहवश दुःख से भर जाता है । यह दुःख अपनी तीव्रता में करूणा को जन्म देता है और कवि 'नई पौध' का कारूणिक चित्र खीचने लगता है । निम्न पंक्तियों में एक सर्वहारा बालक की दयनीय दशा का प्रभावपूर्ण चित्र खीचा गया है -

आँत की मरोड़ छुड़ा न पाई बरगद की फलियाँ
खड़ा है नई पौध पीपल के नीचे खाद की खोज में
देख रहा ऊपर
कि फलियाँ गिरेंगी
पेट भरेगा
और फिर जाकर
सो रहेगा, चुपचाप झोपड़े के अन्दर
भूखी माँ के पेट से सटकर । (१)

देश-प्रेम :-

नागार्जुन वस्तुतः देश-प्रेम से ओत-प्रोत है । उनका व्यक्तिगत जीवन में स्नेह-प्रदर्शन उसी का एक अंग है । वे समूचे राष्ट्र को एक इकाई के रूप में देखते हैं । क्षेत्रवाद उन्हें रास नहीं आता । इसीलिए जब वे देखते हैं कि कुछ संकीर्ण मनोवृत्ति के लोगों ने लाला लाजपत राय, सत्यमूर्ति, सुभाष, जे0एम0 सेनगुप्त तथा तिलक जैसे राष्ट्रीय नेताओं को प्रान्तों की संकीर्ण चारदीवारी में कैद कर दिया है, तो उन्हें बहुत दुःख होता है । कई सवाल उनके मस्तिक में उभरने लगते हैं -

स्थापित नहीं होगी क्या
लाला लाजपतराय की प्रतिमा मद्रास में
दिखाई नहीं पड़ेगे लखनऊ में सत्यमूर्ति ?
सुभाष और जे0एम0 सेनगुप्त क्या सीमित रहेंगे
भवानीपुर और शाम बाजार की दुकानों तक ?
तिलक नहीं निकलेंगे पूना से बाहर ? (२)

प्रकृति-प्रेम :-

नागार्जुन आरम्भ से ही यात्री रहे हैं । लंका, तिब्बत, हिमालय की तराई और भारत

१. नागार्जुन : चुनी हुई रचनाएं -2 शोभाकान्त मिश्र, पृ० ६१
२. नागार्जुन : प्रभाकर माचवे, पृ० ३४

के अनेक स्थानों में वे खूब घूमे है । परिणामस्वरूप उनके द्वारा किया गया प्रकृति-सौन्दर्य का उद्घाटन उनके प्रकृति-प्रेम का ही अंश है । बादल को घिरते देखा है - कविता में कहीं कवि ने समतल देशों से आ - आकर हिमालय की झीलों में तैरते हुए हंसो को एवं निशाकाल के चिर अभिशापित चकवा-चकई को शैवालों की हरी दरी पर प्रणय-कलह करते देखा है, तो कहीं-

दुर्गम बर्फानी घाटी में
शत सहस्र फुट ऊँचाई पर
अलख नाभि से उठने वाले
निज के ही उन्मादक परिमल
के पीछे धावित हो होकर
तरल तरूण कस्तूरी मृग को
अपने पर चिढते देखा है
बादल को घिरते देखा है । (१)

आक्रोश :-

उन्हें अपनी मातृभूमि से सच्चा प्रेम है । वे उसे प्राणों से भी अधिक प्रेम करते है । उनकी कामना है कि सभी लोग खुशहाल रहें और समाज से शोषण और अत्याचार समाप्त हो। किन्तु जब वे देखते हैं कि पूँजीपति अपने धन की आड़ लेकर गरीबों का लगातार शोषण करने पर उतारू हैं, तो वे अपने क्रोध को नहीं रोक पाते । उनका क्रोध इतना बढ़ता है कि वे एक विक्षिप्त की भाँति उसे व्यक्त करने लगते हैं -

मन करता है :
नंगा होकर कुछ घण्टों तक सागर - तट पर मै खड़ा रहूँ
यों भी क्या कपड़ा मिलता है ?
धनपतियों की ऐसी लीला !
मन करता है :
नंगा होकर दूँ आग लगा, जो पहन रखा है उसमें भी
फिर बनूँ दिगम्बर बम्भोला । (२)

मनुष्य-जीवन के प्रति उनका सच्चा-प्रेम ही उनके आक्रोश का मूल कारण है । वे मानवता के शत्रुओं को दण्ड देने के लिए उतावले दिखायी देते है । उनके ह्दय में पूँजीपतियों के प्रति संचित घृणा प्रतिहिंसा का भाव ले लेती है और वे अपनी कविता के माध्यम से उसकी निर्भीकता पूर्वक अभिव्यक्ति करते है । उनकी कविता क्रान्ति का शंखनाद करती है -

१. नागार्जुन जीवन और साहित्य : डॉ० प्रकाश चन्द्र भट्ट, पृ० ४३-४४
२. नागार्जुन : चुनी हुई रचनाएं -2 शोभाकान्त मिश्र, पृ० ३७

नफरत की अपनी भट्ठी में
तुम्हें गलाने की कोशिश ही
मेरे अन्दर बार - बार ताकत भरती है
प्रतिहिंसा ही स्थायी भाव है अपने ऋषि का,
वियत्काड: के तरूण गुरिल्ले जो करते थे
मेरी प्रिया वही करती है .... (१)

कवि सोचता है कि प्रतिहिंसा का संकल्प व्यर्थ नही जाएगा, एक न एक दिन जन क्रान्ति होगी और पूँजीपति वर्ग को समूल नष्ट कर दिया जाएगा । हो सकता है कि इस अभियान में थोड़ा समय और लग जाये किन्तु यह अवश्यंभावी है । वे पूँजीपतियों को सम्बोधित करते हुए लिखते हैं -

फिलहाल,
तुम्हारा यह मारक खेल
अभी कुछ समय और चलेगा
लेकिन याद रखो-
हम तुम्हारी बिरादरी के
एक - एक सदस्य का वध करेंगे !
तुम मुनाफा लोभी
तुम स्वार्थ के नारकीय कीड़े
इस जंगल का एक-एक बिरवा
तुम्हारे समूचे वर्ग के लिए
प्रतिहिंसा का महारूद्र प्रमाणित होगा । (२)

नागार्जुन के काव्य में क्रान्ति-भावना पूरे वेग के साथ प्रवाहित होती है । जहाँ कहीं उन्हें क्रान्ति का स्वर सुनायी देता है वे उसमें सम्मिलित होने के लिए वहाँ पहुँच जाते हैं । जय प्रकाश नारायण की सम्पूर्ण क्रान्ति का नारा उन्हें कविता लिखने की प्रेरणा देता है, बल्कि ये उसमें सशरीर कूद भी पड़ते हैं । और पूरे परिदृश्य का एक यथार्थपरक अंकन करते हैं -

क्रान्ति सुगबुगाई है
करवट बदली है क्रान्ति ने
मगर, वह अब भी उसी तरह लेटी है
एक बार इस ओर देखकर

---

१. नागार्जुन : चुनी हुई रचनाएं -2 शोभाकान्त मिश्र, पृ० २५७
२. ऐसे भी हम क्या : ऐसे भी तुम क्या : नागार्जुन, पृ० २२

उसने फिर से फेर लिया है
अपना मुँह उसी ओर ....
"सम्पूर्ण-क्रान्ति" और "समग्र विप्लव" के मंजुघोष
उसके कानों के अन्दर
खीज भर रहे है या गुदगुदी
यह आज नहीं, कल बतला सकूँगा ! (१)

विचार-सौन्दर्य :-

नागार्जुन कोरे भावुक कवि नही हैं, जीवन और जगत के प्रति उनका ठोस वैज्ञानिक चिंतन है । वे जीवन को सामाजिक यथार्थ के धरातल पर कसकर देखते हैं । जीवन के प्रति उनकी दृष्टि यथार्थपरक है । आज मनुष्य-समाज छल-छद्म का जीवन जी रहा है । आदमी की कथनी और करनी में बहुत अन्तर है । केवल आदर्शो का बखान करने से आदर्श जीवन की प्राप्ति नहीं हो जाती । उसके लिए कठिन संघर्ष करना पड़ता है इसलिए कवि जीवन को उसकी दीर्घता या लघुता से नही आँकता । उसे लगता है कि जीवन चाहे कम दिनों का ही क्यों न हो, किन्तु उसमें सम्मान, स्वाभिमान और आवश्यक सुविधायें होनी चाहिए । जिस जीवन में आडम्बर ही आडम्बर हो ऐसे सुदीर्घ जीवन पर कवि प्रश्न-चिन्ह खड़ा कर देता है -

गिरता-पड़ता
लड़खड़ाता
लार की बूंदो के तार टपकाता
लकवाग्रस्त, पराश्रित अपंग ......
पसन्द आएगा तुम्हें ऐसा सुदीर्घ जीवन ? (२)

कवि जानता है कि आज के युग में अर्थनीति और राजनीति जीवन को आक्रांत किये है। जीवन में आशा-निराशा, सुख-दुःख हानि-लाभ तो स्वाभाविक है, किन्तु जिस तरह आज राजनीतिक कुचक्र रच कर मनुष्य को पशुओं से भी बदतर जीने के लिए विवश किया जाता है, वह कवि के लिए असहनीय है । कवि जीवन और राजनीति के गहरे सम्बन्ध को स्वीकार करता है और इसलिए वह मानता है कि आज के साहित्य में राजनीति का प्रवेश स्वाभाविक है । 'अमलेन्दु एम०एल०ए०' कविता में वे इस तथ्य का उद्घाटन और अपनी जीवन-दृष्टि का खुलासा इन शब्दों में करते है -

अगर मै उछल-उछल के कहूँ कि
ऐंठ रहा है जीवन, सुलग रहा है जीवन

---

१. नागार्जुन : चुनी हुई रचनाएं -2 शोभाकान्त मिश्र, पृ० २१०
२. खिचड़ी विप्लव देखा हमने : नागार्जुन, पृ० ५५

राजनीति पर हावी हो रहा है जीवन
ढोंगियों की पोल खोल रहा है जीवन
धड़क रहा है जीवन, डोल रहा है जीवन
साहित्य और संस्कृति को तोल रहा है जीवन
चढ़के मौत के सर पै बोल रहा है जीवन
जीवन है राजनीति, राजनीति है जीवन । (१)

<u>मार्क्सवादी चेतना</u> :-

नागार्जुन की जीवन के प्रति दृष्टि स्पष्ट है । वे सोद्देश्य जीवन जीने के पक्षधर हैं और उनकी दृष्टि में जीवन का उद्देश्य है - वर्गहीन समाज की संरचना । इसीलिए वे व्यक्ति के स्थान पर समाज को महत्व देते है और बहुजन समाज के प्रगति के लिए निरन्तर प्रयासरत रहते है । वस्तुत: सर्वहारा के प्रति उनकी प्रतिबद्धता ही उनके जीवन का मूलमंत्र है -

प्रतिबद्ध हूँ, जी हाँ प्रतिबद्ध हूँ -
बहुजन समाज की अनुपल प्रगति के निमित्त -
संकुचित 'स्व' की आपाधापी के निषेधार्थ ....
अविवेकी भीड़ की 'भेड़िया-धसान' के खिलाफ ....
अन्ध-बधिर 'व्यक्तियों' को सही राह बतलाने के लिये ....
अपने आपको भी 'व्यामोह' से बारम्बार उबारने के खातिर ....
प्रतिबद्ध हूँ, जी हाँ शतधा प्रतिबद्ध हूँ ! (२)

<u>मृत्युबोध</u> :-

नागार्जुन जीवन के कवि हैं । उनका सारा चिन्तन जीवन की विविधता को रेखांकित करता है । मृत्यु के बारे मे वे न तो कभी सोचते हैं और न उसकी चिंता करते है । मृत्यु उनके लिये केवल नाश का संकेत नही देती, बल्कि उनकी मान्यता है कि मृत्यु के बाद नये जीवन का आरम्भ होता है । ''भस्मांकुर'' में उन्होंने काम के भस्म हो जाने पर उस भस्म से अनंग के अंकुरित होने का मार्मिक चित्रण किया है। शिव के अग्नि-नेत्र से भस्म होने के बाद काम अनंग के रूप में पुनर्जीवन को प्राप्त करता है और पहले से कहीं अधिक महत्वपूर्ण हो उठता है । उसका पुनर्जीवन केवल रति के लिए नहीं, बल्कि सृष्टि की अजस्र परम्परा को जीवित रखने के लिए आवश्यक बन जाता है । रति का विलाप सुनकर आकाशवाणी होती है -

कौन, मदन, तुमको कर सकता नष्ट !
जयति जयति भस्मांकुर जयति अनंग !

---

१. नागार्जुन : चुनी हुई रचनाएं -2 शोभाकान्त मिश्र, पृ० १०६
२. नागार्जुन : चुनी हुई रचनाएं -2 शोभाकान्त मिश्र, पृ० २२१

जयति जयति रतिनाथ, कामनाकंद !
जिजीविषा के उत्स, सृष्टि के मूल !
जयति जयति कन्दर्प, अजेय-अमेय !
कौन, मदन, तुमको कर सकता नष्ट ! (१)

वस्तुत: भस्म होकर भी काम मरता नही है, बल्कि पुन: उस भस्म राशि से सृष्टि की कामना का अक्षय सन्देश बनकर फूट पड़ता है । भस्मांकुर का यह संदेश जीवन-मृत्यु के सन्दर्भ में नागार्जुन की चिन्तन-धारा को स्पष्ट करता है ।

ईश्वर और धर्म के प्रति नकारात्मक दृष्टिकोंण :-

नागार्जुन सामाजिक यथार्थवादी कवि हैं । जीवन और जगत के प्रति उनका दृष्टिकोंण द्वन्दात्मक भौतिकवादी है । जगत से परे किसी अदृश्य शक्ति पर उनकी आस्था नहीं है, इसीलिए वे जगत और जागतिक सम्बन्धों को नि:सार नही मानते और सब तरह के सुख-दु:ख झेलने को तैयार रहते हैं । उनकी यही दृष्टि उनके मन में ईश्वर के प्रति नकारात्मक भाव की सृष्टि करती हैं । वे भगवान को कपोल कल्पना मानते हैं । ''कल्पना के पुत्र हे भगवान'' कविता में वे स्पष्ट घोषणा करते हैं कि -

लूँ न भ्रम से भी तुम्हारा नाम
करूँ जो कुछ, सो निडर, निशंक
हो नही यमदूत का आतंक
घोर अपराधी-सदृश हो नत बदन निर्वाक
बाप-दादों की तरह रगडूँ न मैं निज नाक -
मन्दिरों की देहली पर पकड़ दोनों कान
हे हमारी कल्पना के पुत्र, हे भगवान । (२)

ईश्वर के प्रति नागार्जुन की यह दृष्टि मात्र प्रगतिवादी सिद्धान्तों के कारण नहीं आयी है, जैसा कि अन्य प्रगतिशील कवियों में दिखायी देता है, बल्कि उन्होंने स्वयं ईश्वर की खोज मे वर्षों भटकने के बाद यह नतीजा निकाला है कि ईश्वर वस्तुत: हमारी कल्पना की उपज है, उसकी सत्ता वास्तव में है ही नहीं । आरम्भ में नागार्जुन बौद्ध-धर्म में दीक्षित होकर उस निराकार परमात्मा को पाने का असफल प्रयास करके अपने सुदीर्घ अनुभव से इस नतीजे पर पहुँचे है । जब उन्हें ईश्वर और परम्परागत धर्म की सच्चाई का साक्षात्कार हुआ, तब उनकी दृष्टि में आमूल परिवर्तन हो गया और वे ईश्वर तथा धर्म पर कटाक्ष करने लगे ।

---

१. भस्मांकुर — नागार्जुन, — पृ० ४४
२. नागार्जुन : चुनी हुई रचनाएं -2 — शोभाकान्त मिश्र, — पृ० ४२

पूँजीवादी व्यवस्था का विरोध :-

नागार्जुन जीवन-संघर्ष के कवि हैं । कर्म पर उनकी अटूट आस्था है । कर्म से परे किसी नियति या भाग्य को वे महत्व नहीं देते । यही कारण है कि उनकी कवितायें आलोचनात्मक स्वर लिए रहती हैं । वे जानते हैं कि भाग्य-भरोसे बैठे रहने से अपने-आप स्थितियाँ नहीं बदलती । उन्हें बदलने के लिए मनुष्य को कठिन संघर्ष करना पड़ता है । समाज मे फैली अराजकता का बहुत कुछ कारण राजनीति से जुड़ा हुआ है । भारतीय लोकतंत्र के संवाहक बड़े-बड़े नेता ऊपर से समाजवाद की बातें करते हैं पर अन्दर से वे घोर पूँजीवादी हैं । उनकी इसी दोगली नीति के कारण देश के अन्दर फैली सामाजिक और आर्थिक विषमता आज तक दूर नही हो सकी । नागार्जुन की राजनीतिक कविताओं में इस सच्चाई को पूरी ईमानदारी के साथ अंकित किया गया है । वे राजनेताओं का असली चेहरा जनता के सामने खोलकर रख देते हैं । गाँधी और दूसरे बड़े प्रतिष्ठित लोगों का नाम लेकर जिस तरह नेता अपना उल्लू सीधा करते हैं, वह कवि को खलता है । वे इस मानसिकता पर तीखा व्यंग करते हैं -

बेचेंगे हम सेवाग्राम
सस्ता है गाँधी का नाम
रघुपति राघव राजाराम
लोगे मोल ?
लोगे मोल ? (१)

भारतीय नेताओं की छद्म राजनीति से कवि इतना क्षुब्ध है कि उसकी छब्बीस जनवरी और पन्द्रह अगस्त जैसे राष्ट्रीय पर्वो में भी कोई रूचि दिखायी नही देती । देश मे वैसे तो इन तिथियों को 'गणतन्त्र दिवस' और 'स्वतन्त्रता दिवस' सरकारी आदेशों के अन्तर्गत बड़े धूम धाम के साथ मनाया जाता है और मनाया भी जाना चाहिए, किन्तु सच्चाई तो यही है कि स्वतन्त्रता का सारा सुख भ्रष्ट पूंजीपतियों ने भोगा है, आम जनता के हिस्से में अभी आजादी का सुख बहुत दूर है । कवि इस पीड़ा को बिना लाग-लपेट के अपने कविता में इस प्रकार निर्भीकतापूर्वक चित्रित करता है -

सेठ है शोषक है, नामी गला-काटू है
गालियाँ भी सुनता है, भारी थूक-चाटू है
चोर है, डाकू है, झूठा-मक्कार है
कातिल है, छलिया है, लुच्चा-लवार है
जैसे भी टिकट मिला

---

१. नागार्जुन : चुनी हुई रचनाएं -2 शोभाकान्त मिश्र, पृ० १६७

जहाँ भी टिकट मिला
शासन के घोड़े पर वो ही सवार है
उसी की जनवरी छब्बीस
उसी का पन्द्रह अगस्त है
बाकी सब दुखी है, बाकी सब पस्त है .... (१)

भारतीय प्रजातंत्र मूल्यहीनता की ओर बढ़ रहा है । अपने-अपने दलीय हितों को सर्वोच्च प्राथमिकता देने वाली पार्टियाँ प्रजा के हित का रंचमात्र ध्यान नहीं रखतीं । जो प्रजातंत्र 'लोगों के द्वारा लोगों के लिए, लोगों का तंत्र' होना चाहिए वह अब अपनी मूल धारणा से हटकर कार्य करने लगा है । कवि को यह स्थिति बहुत दुखदायी प्रतीत होती है और वह उस पर तीखी प्रतिक्रिया व्यक्त करता है -

लगता है
प्रजातन्त्र का रथ
उतर गया है पटरी से
लगता है
सारी-की-सारी पार्टियों के नेता
रूचिपूर्वक खेल रहे है
दलीय स्वार्थों के शतरंज
अन्धे धृतराष्ट्र की मोह-माया
भली-भाँति प्रवेश कर गयी है
दलपतियों के अन्तःकरण में (२)

नागार्जुन की राजनीतिक कविताओं में सबसे अधिक आलोचना कांग्रेस पार्टी और उसके नेताओं से हुयी है । १९४७ के बाद भारतीय राजनीति में तीन दशकों तक कांग्रेस का आधिपत्य रहा । नेहरू का युग समाप्त होने के बाद उनकी बेटी श्रीमती इंदिरा गाँधी ने शासन की बागडोर अपने हाथ में ली ओर १९७५ तक आते-आते उन्होंने अपने राजनीतिक हितों को पूरा करने के लिए खुलकर तानाशाही प्रवृत्तियों का परिचय देना आरम्भ कर दिया । १९७५ में उनके द्वारा की गई आपात्काल की घोषणा तानाशाही का प्रत्यक्ष प्रमाण है। इस अनचाहे आपात्काल ने देश के बुद्धिजीवियों को भारतीय राजनीति पर गम्भीरता पूर्वक विचार करने के लिए बाध्य कर दिया । आपात्कालीन कठोरता से कवि भी अछूते नहीं रहे । नागार्जुन ने तो आपात्काल का खुले मंचों पर विरोध किया और परिणामस्वरूप उन्हें जेल भी जाना पड़ा। आपात्काल में नागार्जुन ने

१. नागार्जुन : चुनी हुई रचनाएं -2 शोभाकान्त मिश्र, पृ० २५०
2. वही पृ० २५६

निर्भीकतापूर्वक अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त की और इंदिरा जी को लक्ष्य करके अनेक तीखी टिप्पणी कीं। उनकी एतद् विषयक कविताओं में से एक उदाहरण द्रष्टव्य है -

इसके लेखे संसद-फंसद सब फिजूल है
इसके लेखे संविधान कागजी फूल है
इसके लेखे
सत्य-अहिंसा-क्षमा-शान्ति-करूणा-मानवता
बूढ़ों की बकवास मात्र है
इसके लेखे गाँधी-नेहरू-तिलक आदि परिहास-पात्र है
इसके लेखे दंडनीति ही परम सत्य है, ठोस हकीकत
इसके लेखे बन्दूकें ही परम सत्य है, ठोस हकीकत । (१)

नागार्जुन ने राजनीति में पूँजीवादी मानसिकता का जमकर विरोध किया है । वे अपनी अभिव्यक्ति में इतने स्पष्ट और निःसंकोच हैं कि जो भी राजनीतिक दल मानवीय मूल्यों के विरुद्ध आचरण करता हुआ दिखायी देता है, वे उसकी जमकर आलोचना करते है, भले ही वह कोई बामपंथी दल क्यों न हो । वे बामपंथी विचारों से प्रतिबद्ध है, किन्तु जब उन्हें ऐसा प्रतीत होता है कि कोई दल इन विचारों के साथ खिलवाड़ करता है तो वे उसे नहीं छोड़ते । राजनीतिक पार्टियों के दबाव से विद्रोह करते हुये नागार्जुन ने स्वयं से अनेक प्रश्न किये है -

क्या, हम डर के मारे
हमेशा के लिए गूँगे हो जायेंगे
क्या, वे हमें ढोर - डंगर की तरह
डण्डे दिखा - दिखाकर - हाँकेगे ?
प्रगतिशील पार्टियों के दलपति तक
हमसे ठकुर सुहाती चाहते हैं
अपनी नुक्ताचीनी सुनकर
वे अन्दर ही अन्दर बुरा मान जाते हैं । (२)

नागार्जुन की राजनीतिक कविताओं का सौन्दर्य इस बात से आँका जा सकता है कि उन्होंने अखबारी सूचनाओं के आधार पर अपना आक्रोश व्यक्त नहीं किया, बल्कि स्वयं राजनीति के साथ जुड़कर उन्होंने राजनेताओं का चरित्र बहुत नजदीक से देखा है और तब कहीं उनके अन्दर का आक्रोश लावा बनकर फूटा है । वे स्वयं दीर्घकाल तक कम्युनिस्ट पार्टी के सक्रिय सदस्य रहे हैं और खुलकर समाजवादी विचारों का प्रचार-प्रसार किया है । सन् १९६२ में जब चीन ने भारत पर

---

१. खिचड़ी विप्लव देखा हमने, नागार्जुन, पृ० २६
२. ऐसे भी हम क्या । ऐसे भी तुम क्या, नागार्जुन, पृ० १२

आक्रमण कर दिया तो उनका देश-प्रेम पूरे वेग के साथ उमड़ा और उन्होंने चीन की साम्राज्यवादी नीति का जमकर विरोध किया । इस मौके पर कम्युनिस्ट पार्टी की चुप्पी से नागार्जुन को गहरा आघात लगा और उन्होंने पार्टी से अपनी सदस्यता समाप्त कर ली । उनके लिए पार्टी से अधिक समाजवादी सिद्धान्तों का महत्व है । इसीलिए वे जब बामपंथी दलों को अपने मार्ग से भटकता हुआ देखते हैं, तो उन्हें भी खरी-खोटी सुनाते हैं ।

आठवें दशक के उत्तरार्द्ध में नागार्जुन ने जय प्रकाश नारायण की समग्र क्रान्ति का खुला समर्थन किया । इसके लिए उन्होंने न केवल कवितायें लिखीं, बल्कि क्रान्ति में सक्रिय भागीदारी के कारण उन्हें कई महीनों तक जेल में भी कैद रहना पड़ा । जेल में उन्होंने महसूस किया कि सम्पूर्ण क्रान्ति का नारा वस्तुत: अपने राजनीतिक उद्देश्यों को पूरा करने के लिए दिया गया था और इसमें जनता को गुमराह किया गया था । इसके बाद इन्होंने जय प्रकाश नारायण और उनकी सम्पूर्ण क्रान्ति के विरोध में कई कवितायें लिखीं । इसका अर्थ यही है कि नागार्जुन राजनीति की सच्चाई को उसके तह तक प्रवेश करके जानने-समझने का प्रयास करते है और उस पर ईमानदारी के साथ बिना किसी भय के टिप्पणी करते हैं । उन्हें जहाँ कहीं भी क्रान्ति का स्वर सुनायी देता है, वे दौड़ कर वहाँ पहुँच जाते हैं और मुक्ति पथ पर चलने वाले लोगों को उत्साहवर्धन करते है । ऐसे दृश्य उनकी कविता के लिए मुख्य प्रेरणा स्रोत बन जाते हैं :-

यही धुआँ मैं ढूँढ रहा था
यही आग मैं खोज रहा था
यही गंध थी मुझे चाहिए
बारूदी छर्रे की खुशबू ! ....
ठहरों - ठहरों इन नथनों में इसकों भर लूँ ....
बारूदी छर्रे की खुशबू ! ....
भोजपुरी माटी सोंधी है,
इसका यह अद्भुत सोंधापन ! ....
लहरा उठी है
कदम - कदम पर , इस माटी पर
महामुक्ति की अग्नि-गंध
ठहरो - ठहरो इन नथनों में इसको भर लूँ
अपना जनम सकारथ कर लूँ । (१)

१. ऐसे भी हम क्या ! ऐसे भी तुम क्या, नागार्जुन, पृ० २०

(क) त्रिलोचन का भाव-सौन्दर्य

काव्य-सर्जना में भाव और विचार दोनों की उपस्थिति महत्वपूर्ण होती है किन्तु तुलनात्मक रूप से भाव प्रधान काव्य ही श्रेष्ठ कहा जाता है । जो कविता जिस मात्रा में भाव का संप्रेषण करती है वह उतनी ही हृदयग्राही बन जाती है । इसीलिए कवि औरों की अपेक्षा अधिक संवेदनशील माना जाता है । उसकी संवेदना व्यक्ति से लेकर समष्टि तक भ्रमण करती है । मनुष्य के हृदय में अवस्थित प्रेम, करूणा, दया, ममता, कोध, आक्रोश आदि भावों को कवि जिस तीव्रता से अनुभव करता है, उसी तीव्रता से उनकी अभिव्यक्ति भी करता है ।

दाम्पत्य-प्रेम :-

त्रिलोचन एक भाव सम्पन्न कवि है । प्रेम उनके काव्य का प्रमुख विषय है । उनके काव्य में प्रेम का प्राय: उदात्त रूप ही अभिव्यक्त हुआ है । यह प्रेम इतना शक्तिमान है कि मुर्दे में भी प्राण का संचार कर देता है -

यह प्रेम था कि प्राण मुर्दे में पहम गया,
जिस-जिस से मिला भेद बताया यहाँ वहाँ
किस बात पर बिगाड़ किसी से कहीं करूँ ।(१)

त्रिलोचन का मानना है कि प्रेम मानव जीवन का सहजात भाव है । प्रेम का आगमन मनुष्य की इच्छा-अनिच्छा पर निर्भरं नहीं है वह स्वयं बिना किसी आमंत्रण के पदार्पण करता है और उसके आने के साथ ही सारी दुनिया रंगीन दिखायी देने लगती है । जीवन की सारी कुंठायें और अन्तर्द्वन्द्व प्रेम के आते ही रफूचक्कर हो जाते हैं और ह्दय में एक अनिर्वचनीय उत्साह का संचार होने लगता है । देखते-ही-देखते जीवन का अर्थ ही बदल जाता है -

जिससे यह सारी दुनिया फिर राई रत्ती
और दिखायी देने लगती है । क्या जाने
कौन राग छाती में लगता है अकुलाने,
इंद्रधनुष सी लहराती है पत्ती पत्ती
बिना बुलाए जो आता है प्यार वही है
प्राणों की धारा उस में चुपचाप बही है । (२)

प्रेम अपने व्यक्तिगत संदर्भो में भी उतना ही पवित्र और महान है, जितना सामाजिक विस्तार में । त्रिलोचन ने प्रेम के इन दोनो ही रूपों को काव्य का विषय बनाया है । अपने व्यक्तिगत जीवन में कवि का प्रेम-भाजन कितना महत्वपूर्ण है, यह पूरी शालीनता के साथ त्रिलोचन ने अपनी कविताओं में अंकित किया है । प्रिय के दर्शन और मिलन से कवि की जीवन शैली में अचानक

१. गुलाब और बुलबुल, त्रिलोचन शास्त्री, पृ० १३
2. दिगंत, त्रिलोचन शास्त्री, पृ० १३

सुखमय परिवर्तन हो जाता है और वह बरबस उसकी ओर खिंचता चला जाता है । इस प्रेम सम्बन्ध में ऐसा रहस्य है, जिसे कवि स्वयं नही पाता, क्योंकि यह सम्बन्ध बिना किसी अतिरिक्त प्रयास के अनायास ही जुड़ जाता है, कवि के हृदय में इन्द्र धनुषी रंग फैल जाते हैं -

जब से देखा तुम्हें तुम्हीं को पाना चाहा ।
जीवन का क्रम अकस्मात्, कुछ और हो गया,
अब तक जो कुछ पाया उसका मूल्य खो गया,
हृदय-सिन्धु की गहराई को तुमने थाहा ।
क्या कोई संबंध पूर्व से ही था ऐसा
जिससे मन खिंच गया तुम्हारी ओर, बताओं । (१)

त्रिलोचन के प्रेम की धारणा मानवी अस्मिता को नया अर्थ देती है । प्रेम उनके यहाँ किसी मानसिक विकृति के रूप में नही बल्कि एक ऊर्जा के रूप में कार्य करता है । प्रेम से वे नयी शक्ति और नया उत्साह अर्जित करते हैं और इससे कर्मक्षेत्र में आगे बढ़ने की प्रेरणा मिलती है -

मेरी दुर्बलता को हर कर
नई शक्ति नव साहस भर कर
तुमने फिर उत्साह दिलाया
कर्मक्षेत्र में बढ़ूँ सँभलकर
तब से मैं अविरत बढ़ता हूँ
बल देता है प्यार तुम्हारा । (२)

त्रिलोचन शास्त्री ने प्राय: दाम्पत्य-प्रेम का ही वर्णन अधिक किया है । उनके काव्य में प्रणय के संयोग और वियोग दोनो पक्षों का यथार्थ, स्वस्थ और सुन्दर चित्रण हुआ है । रूमानी प्रेम का वर्णन उन्होंने बहुत कम किया है । संयोग की अवस्था में जिस प्रेम से कवि उत्साहित होता है, वियोग की दशा में वही प्रेम उसके प्राणों में सूनापन भर देता है । विरह वेदना मन को कितना अस्थिर कर देती है और उसकी विरहानुभूति उसे कितना व्याकुल कर देती है - यह शब्दों में बता पाना संभव नही है ।कवि इस भावदशा को निम्नलिखित पंक्तियों में संकेतित करता है -

सखि, तुम आज समीप नहीं हो, यह मेरा मन अस्थिर है
सोचता हूँ, कहाँ होगी, कैसे, तुम इस समय
न जाने कैसा कुछ सूनापन प्राणों मे भर आया है । (३)

---

१. उस जनपद का कवि हूँ, त्रिलोचन शास्त्री, पृ० २४
२. धरती, त्रिलोचन शास्त्री, पृ० ११
3. उस जनपद का कवि हूँ, त्रिलोचन शास्त्री, पृ० ३३

कवि का प्रेम व्यक्तिगत सीमाओं से निकलकर सम्पूर्ण जगत के जीवन से जुड़ता हुआ दिखायी देता है । इसमें भी एक सुसम्बद्धता है । कवि का व्यक्तिगत प्रेम भाव ही विस्तीर्ण होकर पूरे विश्व के साथ जुड़ जाता है । एक तरह से उसका एकान्तिक-प्रेम ही व्यापक मानवीय प्रेम में परिवर्तन हो जाता है । वह खुले शब्दों में स्वीकार करता है । 'मुझे जगत-जीवन का प्रेमी, बना रहा है प्यार तुम्हारा' । कवि विश्व के साथ आत्मवत्, संवेदना अनुभव करने लगता है और यहाँ जो भी अवांछित है उसे बदलकर नये सुखमय विश्व की रचना का संकल्प व्यक्त करता है-

नहीं विश्व से हैं हम बाहर
विश्व हमारे भीतर बाहर
जग की भावी रूप योजना
हम पर, तुम पर, सब पर निर्भर
विश्व बदलने का नूतन क्रम
कार्य, लगन, संस्कार हमारा । (१)

वात्सल्य-भाव :-

त्रिलोचन के काव्य में प्रेम की विविध रूपों जैसे- दाम्पत्य-प्रेम, वात्सल्य भाव, प्रकृति प्रेम और विश्वप्रेम के अनेक सुन्दर चित्र अंकित हुए हैं । वस्तुतः वे जिस विषय को भी काव्य-रचना के निमित्त चुनते हैं उसके साथ उनकी गहरी रागात्मकता होती है । अपने और पराये के भेद को भुलाकर उनका हृदय हर उस व्यक्ति के साथ जुड़ जाता है जो उनके सम्पर्क में आता है । चम्पा एक ग्वाले की लड़की है, उसके लिए काला अक्षर भैंस बराबर है । आर्थिक और सामाजिक सभी दृष्टियों से वह बहुत पिछड़ी हुयी है तो भी कवि की इतनी मुँह लगी है जैसे उसकी अपनी ही बेटी हो । चम्पा के प्रति कवि के हृदय में सहज वात्सल्य हिलोरे लेता है -

चंपा अच्छी है
चंचल है
नटखट भी है
कभी-कभी ऊधम करती है
कभी-कभी वह कलम चुरा लेती है
जैसे-तैसे उसे ढूँढ कर जब लाता हूँ
पाता हूँ - अब कागज गायब
परेशान फिर हो जाता हूँ
चंपा कहती है :

---

१. धरती, त्रिलोचन शास्त्री, पृ० १३

तुम कागद ही गोदा करते हो दिन भर
क्या यह काम बहुत अच्छा है
यह सुन कर मै हँस देता हूँ
फिर चंपा चुप हो जाती है । (१)

आज की दुनिया में मनुष्य समाज जिस अकेलेपन और अजनबीपन से जूझ रहा है, उसमें ऐसा निश्च्छल वात्सल्य जीवन में रागरगता का संचार कर देता है ।पड़ोसी, जो कभी सगे भाई- बन्धुओं की तरह हुआ करते थे, आज अपनी-अपनी दुनिया में ऐसे खो गये है कि बगल वाले की कोई सुधि ही नही रही । एक अलगाव का वातावरण फैलता चला जा रहा है । इस अलगाव को तीन-चार वर्ष की 'चित्रा जांम्बोरकर' जिस सहजता से दूर कर देती है और कवि की स्नेह-भाजन बन जाती है, वह अपने आप में कवि की उदार वात्सल्य-भावना का द्योतक है । चित्रा जाम्बोरकर से मिलकर कवि जिस आनन्द की अनुभूति करता है, वह अवर्णनीय है -

मैने जिस भाव में
उसे देखा
उस को आनंद
मै कहता हूँ
आनंद कभी-कभी
मन पर छा जाता है
मन को कुछ ऐसा
उभार दे जाता है
जो नया होता है, कमनीय होता है,
हँसी खेल के है दिन
चित्रा के लिये अभी
इसी हँसी खेल में
उस की पहचान
दिनों दिन बढ़ रही है । (२)

मैत्री-भाव :-

त्रिलोचन का अपने समान धर्मा कवि मित्रों के साथ सहज स्नेह संबंध रहता है । उनके मित्रों में विशेष रूप से प्रगतिशील कवियों की ही संख्या अधिक है । वे अपने इन मित्रों को सख्य-भाव से प्राय: स्मरण करते है । कभी कोई विशेष अवसर हो, तब उनका प्रेम स्वभावत: प्रकट

१. धरती, त्रिलोचन शास्त्री, पृ० ८८
2. ताप के ताए हुए दिन त्रिलोचन शास्त्री, पृ० ८३

हो जाता हैं । शमशेर के जन्मदिन के अवसर पर वे अपने मित्र के लिए भावभीनी मंगल कामना करते हैं । आज जिन परिस्थितियों में हमारा देश और समाज जीने के लिये अभिशप्त है, उनसे जूझने की शक्ति और सामर्थ्य यदि किसी में है तो वह प्रगतिशील चेतना सम्पन्न कवि ही हो सकता है । शमशेर को समर्पित अपनी कविता में त्रिलोचन यही कामना करते हैं कि उनका मित्र निरन्तर नये-नये आत्मीय संबंधों को लेकर उसी प्रकार काव्य की श्री वृद्धि करे, जिस प्रकार एक वृक्ष अपने फूलों और फलों से लोगों को सुख प्रदान करता है -

काव्यों का अनुगान भावमय हो, पाथेय हो, तेज हो,
सोतों का चुपचाप हाथ पकड़े, लाए उन्हें क्षेत्र में ।
द्रष्टा हो तुम, मौन गान मन के देते रहे हो यहाँ
प्राणकार । अभिन्न भाव भर के फूलो फलो वृक्ष से । (१)

मानव-प्रेम :-

कवि का हृदय इतना विशाल है कि यह केवल अपने परिचितों और सम्बन्धियों के प्रति ही स्नेहसिक्त नहीं होता बल्कि समूची मानव जाति के प्रति उसके हृदय में प्रेम भाव पलता है । उसे निरन्तर इस बात की चिन्ता रहती है कि वह दिन आखिर कब आएगा, जब संसार के सभी मनुष्य एक वर्गहीन समतावादी समाज में जीने का अवसर प्राप्त करेंगे । कवि मनुष्य समाज के लिए एक ऐसी समानता की आकांक्षा करता है, जैसी समदृष्टि वायु में होती है । वायु बिना किसी भेदभाव के न केवल चेतन प्राणियों को अपितु जड़ प्रकृति को भी अपने ममता भरे स्पर्श से जीवन का संचरण करती है । यदि मनुष्य के चरित्र में भी यह उदारता आ जाए, तो संसार से दु:खों का स्वयंमेव नाश हो जाएगा -

जो समानता यह वायु सर्वदा दिखलाती है
जीवन के पावन अधिकारों की सदा सजग
सब के लिए एक दृष्टि से रक्षा करती है
क्या मनुष्य उस समानता को अंगीकार कर
पूर्ण चेतना, पूर्ण जीवित, उत्तरदायित्वपूर्ण
कभी हो सकेगा इस विश्व में समान प्रिय
सभी के लिए नितान्त आवश्यक है । (२)

त्रिलोचन मानव जीवन की समग्रता के कवि है, पर उनके हृदय में समाज के उस वर्ग के प्रति विशेष सहानुभूति है जो हर दृष्टि से पिछड़ा है, जिसे सिर्फ काम करना आता है, फल की चिंता किये बिना । जो न तो पढ़ा-लिखा है और न ही जीवन की सुख-सुविधाओं से परिचित

१. चैती, त्रिलोचन शास्त्री, पृ० २९
2. धरती, त्रिलोचन शास्त्री, पृ० १२५

है । कला और कविता जिसके लिए कोई अर्थ नही रखते, ऐसे भोले-भोले और दीन-हीन मनुष्य त्रिलोचन की कविता के मुख्य विषय हैं । इन्हीं के सुख-दु:ख को पूरी आत्मीयता के साथ कवि ने चित्रित किया है । वह स्वयं को उन्ही में से एक अनुभव करता है, इसलिए उसे इस बात का गर्व है कि वह सच्चा जन कवि है । उसका जन-प्रेम इन पंक्तियों से स्वत: प्रमाणित हो जाता है-

उस जनपद का कवि हूँ जो भूखा दूखा है,
नंगा है, अनजान है, कला-नहीं जानता
कैसी होती है क्या है, वह नहीं मानता
कविता कुछ भी दे सकती है । कब सूखा है
उसके जीवन का सोता, इतिहास ही बता
सकता है .... (१)

प्रकृति-प्रेम :-

कवि के हृदय में मनुष्य-समाज के लिए जितना प्रेम है, प्रकृति के प्रति भी वह उसी अनुपात में समर्पित है । उसकी कविता का प्रधान विषय मनुष्य होते हुए भी प्रकृति-सौन्दर्य के मोह-पाश से वह अपने को अलग नही रख पाता । प्रकृति अपने हर रूप में कवि को प्रिय लगती है । जेठ की तपती दोपहर में भी कवि अमराई की शीतल छाया खोज लेता है और प्रकृति की गोद में स्वर्गिक सुख की अनुभूति करता है । 'आमों की बारी' में उसे स्वर्ग का सौन्दर्य दिखायी देता है -

झाँय झाँय करती दुपहरिया नाच रही थी
जलती हुई । भौर सी गर्मी की पगडंडी
मुझे ले गयी आमों की बारी में । की थी
नहीं अधिक की आशा, पाकर छाया ठंडी,
आँख मूँद कर सोचा मन में, स्वर्ग यही है । (२)

प्रकृति के साथ कवि का जो रागात्मक सम्बन्ध है, वह उसकी केवल सौन्दर्य-पिपासा को ही शान्त नहीं करता बल्कि उसके जीवन में एक नयी स्फूर्ति का संचार करता है । प्रकृति का हर रूप कवि की चेतना में नयी जान डाल देता है, फिर चाहे वह नदी हो या पहाड़, धूप या रात, आमों का बाग हो या रजनीगंधा की टहनियों की थिरकन । प्रकृति कवि के लिए संसार से भाग कर आये हुए व्यक्ति की शरण स्थली मात्र बनकर नहीं रह जाती, बल्कि वह उसे जीवन

---

१. उस जनपद का कवि हूँ, त्रिलोचन शास्त्री, पृ० १७
2. वही, पृ० ५७

जीनं का मर्म समझाती है । प्रकृति से जुड़कर कवि जीवन-पथ पर उत्साहपूर्वक अग्रसर होता है-

अनदिख टहनियाँ
रजनीगंधा की
हवा में
फैली है
साँसों में मेरी
लहराती है
चेतना को छेड़कर
सिराओं में
जीवन का वेग
बन जाती है । (१)

करूणा :-

प्रकृति और मनुष्य के प्रति कवि के सहज प्रेम का ही परिणाम है कि वह अकारण और असमय किसी को काल-कवलित होते हुए देखता है, तो उसका ह्रदय मानवीय करूणा से छलक पड़ता है। सन् १९५३ के महाकुंभ मेले के अवसर पर तीर्थराज प्रयाग में जो भगदड़ हुयी और जिसमें सैकड़ों लोग धक्का मुक्की में काल के गाल समा गये, उसे देखकर कवि का ह्रदय करूणा से पिघल उठता है । कवि 'लाशों की प्रदर्शनी' देखकर गहरे दु:ख का अनुभव करता है ।एक असहाय पुत्र अपने पिता की लाश के पास बैठकर जिस ढ़ग से विलाप कर रहा है, वह मानों कवि की ही अन्तर्वेदना है -

........पुत्र ने गहा था
हाथ पिता का, वेग आंसुओ का था गहरा
'बाबू, तुम्हे हो गया क्या, आशा में ठहरा
मै डेरे पर रहा कि तुम जब आ जाओंगें
तब हम गाँव चलेंगे ।' सारा मेला थहरा,
कहा पुलिस ने, 'अब रोने से क्या पाओंगे ।' (२)

मनुष्य ही नहीं मानवेतर जीव-जगत के साथ भीं कवि गहरी रागात्मकता से जुड़ा हुआ है । मनुष्यों के मरने पर कवि के मन में जिस करूणा का जन्म होता है, बिल्ली के एक छोटे से बच्चे के मरने पर भी वैसी ही पीड़ा का कवि अनुभव करता है ।एक बिलौटे के मरने पर दूसरा बिलौटा जिस तरह कराह रहा है और जिस प्रकार बिलख रहा है, वह कवि के ह्रदय को

१. चैती, त्रिलोचन शास्त्री, पृ० २२
2. त्रिलोचन के काव्य, सम्पादक राजू एम फिलीप, पृ० १०५

कम्पित कर देता है । कवि की यह मनोदशा उसके जीव मात्र के प्रति करूणा और दया का संकेत करती है -

कैसी पीड़ा हुई, कहाँ पर, पता नहीं यह-
बार-बार उस की कराह सुन-सुन मै धाया
खड़ा-खड़ा ताकता रहा कुछ समझ न पाया ।
बस कराह ही, देखा, रोम रोम से रह रह
निकल रही थी, सुना नहीं जाता था उसका
चिल्लाना । दूसरा पास ही बैठा घेरे
खिन्न और नीरव था, खिंच आता था मेरे
पास, पहुँच जाता था जब मै, मुझको उसका
यह अधैर्य कंपित करता था .... (१)

आक्रोश :-

जीवमात्र के प्रति कवि के ह्रदय में जो सहज करूणा और दया का भाव है, वही समाज में व्याप्त अन्याय और अनाचार को देखकर क्रोध और आक्रोश में बदल जाता है । १९५३ में प्रयाग के महाकुंभ के अवसर पर भगदड़ में सैकड़ों व्यक्तियों के मर जाने पर एक ओर जहाँ कवि का ह्रदय करूणा विगलित हो उठता है, वहीं दूसरी ओर वह इस दुर्घटना का निमित्त बने नांगा साधुओं पर तीखा व्यंग्य प्रहार भी करता है । कवि के क्रोध और आक्रोश को निम्नलिखित पंक्तियों में देखा जा सकता है -

वह विरागियों के जुलूस का जलसा, थोड़े
में इंद्र का अखाड़ा, कोई पीकर छोंड़े
जिसे नहीं वह मद पल-पल में छलक रहा था,
लोग भभर कर भागे, कितनों ने दम तोड़े
वेश बनाए निशाचरी छल ललक रहा था ।
लानत है, लानत, विराग, को राग सुहाए
साधु होकर मांस मनुज का भर मुंह खाए । (२)

कवि के आक्रोश में केवल आवेश नहीं है, वह पूरी गम्भीरता से मनुष्य की दयनीय दशा पर विचार करता है । वह सोचता है कि मनुष्य समाज की इस दीन-हीन अवस्था के लिए पूरी तरह से पूँजीवादी व्यवस्था जिम्मेदार है । इस पूँजीवादी व्यवस्था ने मनुष्य की मनुष्यता महत्वहीन कर दी है । मानवीय मूल्यों में आयी इस गिरावट को तब तक नही रोका जा सकता, जब तक

१. उस जनपद का कवि हूँ, त्रिलोचन शास्त्री, पृ० ८०
२. त्रिलोचन के काव्य, सम्पादक राजू एम फिलीप, पृ० १०५

समाज से पूँजीवाद न मिट जाए । इसलिए कवि सारी स्थितियों पर विचार करने के बाद केवल आक्रोश ही व्यक्त करके चुप नहीं हो जाता, बल्कि व्यवस्था को नया रूप देने के लिए साफ सुथरा मार्ग भी प्रस्तुत करता है । कवि स्वीकार करता है कि -

पूँजीवाद ने महत्व नष्ट कर दिया सब का
जीवन का, जन का, समाज का, कला का,
बिना पूँजीवाद को मिटाये किसी तरह भी
यह जीवन स्वस्थ नही हो सकता । (१)

(ख) विचार-सौन्दर्य :-

मार्क्सवादी चेतना :-

त्रिलोचन का काव्य उनके केवल भावुक क्षणों की उपज नहीं है, बल्कि उसमें सुविचारित जीवन-दर्शन को अभिव्यक्ति मिली है । वैचारिक स्तर पर त्रिलोचन भी केदार और नागार्जुन की तरह मार्क्स-दर्शन से प्रभावित जान पड़ते है । यही कारण है कि वे भौतिक-जगत के उत्थान और पतन को वैज्ञानिक दृष्टि से देखते और समझते है । उनका चिंतन तथ्य परक है और वे हर बात को तर्क की कसौटी पर कसकर जाँचने-परखने के पक्षधर है । किसी बंधी-बंधायी लीक पर चलते चले जाना उन्हें स्वीकार नहीं है । उनका सर्वाधिक जोर सोच-समझकर चलने में ही है । उनकी विचारधारा में स्वस्थ प्रगतिशील चिंतन की छाप दिखायी देती है । जीवन और जगत के बारे में वे प्रगतिशील दृष्टि से सोचते विचारते हैं ।

जीवन का लक्षण गति है । यह गति वैचारिक और व्यवहारिक दोनो स्तरों पर आवश्यक है । जब-जब जीवन में गति-शून्यता आ जाती है, तब-तब उसमें जीवन के लक्षण धुंधले होने लगते हैं । परिवर्तन सृष्टि का चरम सत्य है । इससे जीवन का परिष्कार होता है और वह पहले से बेहतर बनता है । जीवन में परिवर्तन की महत्ता प्रतिपादित करते हुए कवि ने दो टूक शब्दों में आहवान् किया है -

सोच समझ कर चलना होगा
अगति नहीं लक्षण जीवन का
परिवर्तन की शक्ति अतुल है
उसे न बांध सका है कोई
तुम परिवर्तन की गति समझों
तुम परिवर्तन को पहचानों
तुम परिवर्तन को अपना कर
विश्व बना लो अपने मन का । (२)

---

१. धरती, त्रिलोचन शास्त्री, पृ० ९८
२. धरती, त्रिलोचन शास्त्री, पृ० १४

जिजीविषा :-

त्रिलोचन जीवन मे सुख दु:ख की सत्ता को समान रूप से स्वीकर करते है, पर उनका स्पष्ट मत है कि आँसू बहाने से जीवन का मार्ग आसान नहीं होता, बल्कि दु:ख और सुख दोनों को जीवन का सत्य मानकर हर परिस्थिति में समभाव से उत्साह पूर्वक जीने का अभ्यास करना ही सच्चा जीवन है । दु:खों से आहत होकर यदि निराशा मन में घर कर ले, तो जीवन भार प्रतीत होने लगता है, इसलिए हर परिस्थिति में मनुष्य को पूरे विश्वास के साथ जीने का प्रयास करना चाहिए । यदि उसके सोच में जीवन के प्रति वैसी ही संकल्प शक्ति आ जाय, जैसी दूब में जिजीविषा होती है, तो उसका जीवन उमंग और उत्साह से भर सकता है । दूब पैरों से रौंदी जाती है फिर भी वह सदैव अपना सिर स्वाभिमान के साथ उठाकर जीती है । उसकी हरीतिमा आकाश की ओर उन्मुख उसकी समृद्धि का मौन, पर स्पष्ट संकेत करती है । हर परिस्थिति में, हर ऋतु में वह हरी-भरी बनी रहती है । यही उसके जीवन का दर्शन है और कवि मनुष्य जीवन के लिए भी इसी दृष्टि को उचित मानता है -

दूब पैरों के तले से
सिर उठाती है
व्योम को दिखला समुद्भव
मौन गाती है
छवि हरी उसकी हुई परवाह जीवन की । (१)

कवि आश्वस्त है कि विपरीत परिस्थितियों का सामना करके मनुष्य जीवन में वांछित परिवर्तन कर सकता है और सबके लिए अनुकूल वातावरण की सृष्टि कर सकता है । कवि की दृष्टि में जीवन निरन्तर प्रवहमान रहता है, उसमें अनेकरूपता होती है और मनुष्य उसे नये-नये रंगों से सजाता है । जीवन का सौन्दर्य उसके क्षण प्रतिक्षण बदलते रूप के कारण है । अपने गतिशील रूप के कारण ही वह अनेक विद्रूपताओं के बीच भी सुन्दर प्रतीत होता रहता है । जीवन के प्रति कवि का यह सौन्दर्य-बोध निम्नांकित पंक्तियों में देखा जा सकता है -

जीवन का है अविरल प्रवाह
बहु भावपूर्ण, अद्भुत, अथाह
बहु रंग, रूप, गति नई राह
रह संग संग ले नवल रंग
बढ़ता सुंदर है क्षण प्रति क्षण । (२)

---

१. सबका अपना आकाश, त्रिलोचन शास्त्री, पृ० २८
२. धरती, त्रिलोचन शास्त्री, पृ० ३४

मृत्युबोध :-

जीवन के प्रति सजग असीम उत्साह और उल्लास का अनुभव करते हुए भी कवि उसके क्षण भंगुर रूप के प्रति दिखायी देता है । वह नित्य-प्रति देखता है कि मनुष्य किसी न किसी बहाने काल के गाल में जा रहा है । जीवन-मृत्यु की दूरी कब समाप्त हो जायेगी, इसका कुछ भी निश्चय नही है । यत्नपूर्वक जीवन जीने वाले का भी अंत अवश्यसम्भावी है । जीवन की नाजुक डोर कब टूट जाय इसका कोई ठिकाना नहीं है -

एक एक साँस से
जुड़ा हुआ
एक एक तार से
बुना हुआ
कौन जाने कब टूटे
निश्चय क्या
जीवन का निश्चय क्या । (१)

कवि जीवन के प्रति जितना आश्वस्त है, मृत्यु के प्रति भी उतना ही सजग है । वह जानता है कि मृत्यु छिप कर कभी भी आक्रमण कर देती है और एक हँसता खेलता संसार ऊजड़ जाता है । सारी दुनिया मृत्यु के द्वार पर खड़ी प्रतीत होती है किन्तु किसी को भी इस बात का ज्ञान नही है कि मृत्यु किस क्षण और किस दिशा से आयेगी । इसलिए दु:ख और उदासी से भरा हुआ संसार जीवन से पूरी तरह निराश नही हो पाता और जीवन मे उल्लास का अनुभव करता रहता है -

मरण जीवन से कितनी दूर
कर रहा छिप कर शर संधान
चल रहा है जग दुखी उदास
न कुछ भी ज्ञान न कुछ अनुमान
इसी में है घट का उल्लास । (२)

नियति :-

त्रिलोचन मनुष्य की अदम्य जिजीविषा-शक्ति और उसके पौरूष पर अटूट विश्वास रखते हैं । किन्तु वे इस सत्य से भी परिचित हैं कि सारे प्रयत्न के बावजूद आज भी मनुष्य पूर्ण सुखी नही हो पाया । चारों ओर दु:खों की बदली छायी रहती है । मृत्यु पर विजय प्राप्त करने की

१. धरती, त्रिलोचन शास्त्री, पृ० ७१
२. सबका अपना आकाश, त्रिलोचन शास्त्री, पृ० १९

कामना लिए मनुष्य जीवन के संघर्ष में आगे बढ़ता रहता है । इस सारी भाग-दौड़ में कहीं नियति भी काम करती है, इस बात को कवि बराबर याद रखता है । वह सोचता है कि मनुष्य के जीवन को प्रभावित करने में नियति का बहुत बड़ा हाथ रहता है -

दु:खों की छाया में यह भव बसा है, नियति की
सदिच्छा होगी तो कुछ दिन कटेंगे, समय के
सधे आयामों में । भ्रम भ्रम रहेगा कि सच का
कभी पल्ला लेगा, श्वसन ठहरेगा विजन में । (१)

त्रिलोचन मनुष्य की शक्ति पर विश्वास करते हैं, पर उससे भी अधिक वे नियति का महत्व स्वीकार करते हैं । नियति के सामने मनुष्य का बल हल्हा पड़ जाता है । इसका अर्थ यह नहीं है कि कवि भाग्य भरोसे हाथ पर हाथ धर कर बैठे रहने का सन्देश देना चाहता है । बल्कि इसका अभिप्राय केवल इतना है कि मनुष्य केवल अपने पौरूष बल से ही अभीष्ट लक्ष्य को प्राप्त नहीं कर सकता उसके हर प्रयत्न में नियति प्रच्छन्न रूप से अपनी भूमिका निभाती है -

दुष्कर समर नियति का
चलता बल न जहाँ गति मति का
श्वास समय सहचर है
जिसके अनुचर उसका प्रात
चिन्ह अनिच्छित उसे
नहीं दे सकती रे यह रात
सघन अँधेरी रात । (२)

ईश्वर और धर्म :-

कवि ईश्वर और धर्म के विषय में किसी रूढ़ि से नहीं बंधा हुआ है । वह यद्यपि प्रगतिशील विचारधारा से आंदोलित होने के कारण किसी आलौकिक अज्ञात सत्ता पर विश्वास नहीं करता, किन्तु शास्त्रों में वर्णित ईश्वर विषयक कथानकों का तर्क संगत अर्थ अवश्य ग्रहण करता है । बाराह भगवान की प्रतिमा को देखकर कवि उस मूर्तिकार की भूरि-भूरि प्रशंसा करता है जिसने उस मूर्ति में उदात्त भावनाओं का सुन्दर सन्निवेश किया था । उस मूर्ति को देखकर कवि के मन में वह पौराणिक दृश्य कौध जाता है जिसमें जलमग्न धरित्री को संकट से उबारने के लिए वराह के रूप में परमात्मा अवतरित हुआ था । उस मूर्ति में एक उद्धारक की छवि देखकर कवि मुग्ध हो जाता है, किन्तु दूसरी ओर उस मूर्ति के प्रति भक्तिभाव से समर्पित ग्र

कोई मतलब नहीं है । वे केवल अंधविश्वास के कारण ही उस देवता के प्रति प्रणत होते हैं । कवि की पीड़ा इस बात की है कि मूर्तिकार के मन में जैसे भाव थे, वैसे उन्नत भाव इन ब्राह्मणों के मन में क्यों नहीं पैदा होते -

आए कुछ ग्रामीण, नत हुए और बजाया
भक्तिभाव से घंटा, बात किसी ने पूछी
'कौन देवता है ये' बात कहूँगा आगे'
कह कर वयोवृद्ध डगरा, उन को डगराया
मैंने देखा प्रणति भक्ति दोनों है छूंछी,
इनमें भाव कहाँ जो मूर्तिकार में जागे । (१)

त्रिलोचन अन्य प्रगतिशील कवियों की तरह ईश्वर और उसकी सत्ता से पूर्णत: इंकार करते प्राय: कम ही दिखायी देते हैं । इसलिए वे संसार के हर प्राणी को किसी कर्ता द्वारा इस दुनिया में भेजा हुआ मानते हैं । उस कर्ता के प्रति अपनी कृतज्ञता ज्ञापित करते हुए कवि स्वीकार करता है कि यद्यपि उसे अत्यन्त दीन-हीन वातावरण में जीने का अवसर मिला, परन्तु उसने उन्हीं परिस्थितियों को अपनी उदात्त जीवन-दृष्टि से महिमा मंडित कर दिया -

कर्ता, तू ने जब मुझ को दुनिया में भेजा
देखा भाला खूब और जी में क्या जाने
क्या आई, ममता के स्वर से बोला, 'ले जा
यह दु:ख की माला है, ये आँसू के दाने,
तू पहचानेगा, कोई भी मत पहचाने,
यह जीवन की छवि है .... (२)

ईश्वर की सत्ता को यथार्थत: स्वीकार करते हुए भी कभी-कभी कवि जब घोर प्रगतिवादी चिंतन के दबाव में होता है तो 'ईश्वर की मृत्यु' भी घोषित कर देता है । ऐसी घोषणाओं में कोई वजन तो नहीं दिखायी देता, किन्तु इससे कवि को प्रगतिवादी होने का प्रमाणपत्र अवश्य मिल जाता है । मनुष्य के कर्म पर कवि अटूट विश्वास व्यक्त करता है और उसकी उपलब्धियों का गुणगान करता है । मनुष्य की महत्ता प्रतिपादित करते-करते कवि पूँजीपतियों के हाथों ईश्वर की मृत्यु का समाचार भी प्रसारित कर देता है -

मृत्यु हो चुकी है ईश्वर की, नया आदमी
अब इच्छानुसार करता है काम । क्या रहा
जो उसने न किया हो । कोई भी कमी
नहीं रही है । .... (२)

---

१. दिगंत, त्रिलोचन शास्त्री, पृ० ३६
२. उस जनपद का कवि हूँ, त्रिलोचन शास्त्री, पृ० १६
3. त्रिलोचन के काव्य, सम्पादक राजू एम फिलीप, पृ० १०८

ईश्वर की सत्ता पर प्रश्नचिन्ह लगाना भले ही त्रिलोचन की प्रगतिवादी विवशता हो, किन्तु ईश्वर की आड़ लेकर जो साधु-संत भोली-भाली जनता का दोहन करते हैं उन पर कटाक्ष करना कवि की सामाजिक जागरूकता का प्रमाण है । ईश्वर और धर्म को इन साधु संतों ने जिस तरह हास्यास्पद बना दिया है, वह कवि को असह्य है । इसलिए कवि को जहाँ-कहीं अवसर मिलता है, वह इन ढोंगी साधुओं के जीवन पर कड़ा प्रहार करते हैं -

'सब के दाताराम' अर्थ क्या है, यह चेला
पूछ रहा था, बोले गुरू, देख आ मेला
बैरागी रागी है और माल खाते हैं
मूढ़, विधाता का है यह छोटा-सा खेला
देख कुली मजदूर वस्तु ढ़ोकर लाते हैं
मजदूरी के पैसे पर धक्के पाते हैं
साधु-संत सोते हैं सुखी पाँव फैलाए
कितने ही लखपती पास उनके आते हैं
चरण धूलि लेते हैं, वही स्वर्ग से आए । (१)

<u>अवसरवादी राजनीति</u> :-

इस सामाजिक विकृति के पीछे केवल आजकल के धर्मगुरू ही नहीं है, बल्कि पूरे देश का राजनीतिक स्वरूप ही ऐसा बन गया है जिसमें सभी को अपनी-अपनी पड़ी है । हर आदमी इस राजनेताओं के चक्रव्यूह में ऐसा उलझ कर रह गया है कि इससे निकलने का निकट भविष्य में कोई उपाय दिखायी नही देता । सैकड़ों राजनीतिक दल सत्ता पाने के लोभ में जनता को गुमराह करते हैं और जैसे-तैसे अपनी पार्टी को बहुमत दिलाने का प्रयास करते है । जनता की विवशता यह है कि उसे इन्ही भ्रष्ट राजनेताओं में से ही किसी न किसी को देश का नेता चुनना पड़ता है-

व्यूह बनते है दलों के एक दल चुनना पड़ेगा
फिर महाभारत निकट है
लक्षणों से यह प्रकट है
शंख नीरव है रहें पर
भर चुका अब धैर्य घट है
रात दिन उद्योग चलता
पक्षवर्धन की विकलता
पाँव सिर की ओर दो है, एक की सुनना पड़ेगा । (२)

---

१. त्रिलोचन के काव्य, सम्पादक राजू एम फिलीप, पृ० १०६
२. सबका अपना आकाश, त्रिलोचन शास्त्री, पृ० ३५

आज भारत की राजनीति, सत्ता के प्रति समर्पित राजनीति है । सत्य से उसका कोई सरोकार नहीं है । नेता बहुरूपिया हो गये हैं । अवसर देखकर वे अपना तेवर बदल लेते है । हृदय से अत्यन्त क्रूर और आम जनता के सुख-दु:ख से सर्वथा उदासीन राजनेता चुनाव के दिन निकट आते ही अत्यन्त विनम्र और सर्वहारा के असली शुभचिन्तक होने का स्वांग भरने लगते हैं । कवि उनके इस ढ़ोगी व्यक्तित्व से बहुत क्षुब्ध है और उनके अवसरवादी चरित्र पर तीखा व्यंग्य करता है -

इलायची से बसा हुआ रूमाल लगाया
आँखों पर कि बह चले आँसू : और साथ ही
नाम किसान मजदूर का लिया और हाथ ही
नया दिखाया नेता ने, स्वर नया जगाया
उसी पुराने गले से .... (१)

कवि पूरे हिन्दुस्तान पर जब दृष्टिपात करता है, तो उसे सर्वत्र कोई न कोई कुचक्र दिखायी देता है । कुचक्र रचने वाले राजनेता भी है, पूँजीपति भी है और धर्म के ठेकेदार भी या फिर ये सभी एक ही थैले के चट्टे-बट्टे हैं और आपसी साँठ-गाठ से नित्यप्रति कोई-न-कोई समस्या पैदा करते रहते हैं । एक-दूसरे को किसी न किसी बहाने आपस में लड़ाते रहना इनकी सोची-समझी चाल होती है । स्थिति इतनी दयनीय हो गयी है कि लोग निराश होकर चुपचाप बैठ गये हैं और प्रतीक्षा करते हैं कि शायद अपने आप ही अनुकूल परिस्थितियाँ कभी-न-कभी पैदा हो जायेंगी । हिन्दुस्तान की जनता का एक ऐसा ही चित्र कवि की निम्नलिखित पंक्तियों में देखा जा सकता है-

हाथ पर हाथ धरे हिन्दुस्तान की जनता बैठी है
कभी कभी सोचती है : देखो, राम या अल्लाह
किसके पल्ले बाँधतें है हम सब को
हिन्दुस्तान ऐसा है
बस जैसा तैसा है । (२)

तुलनात्मक निष्कर्ष

केदार, नागार्जुन और त्रिलोचन ने लगभग एक सी विषय वस्तु को लेकर एक ही युग में एक से वातावरण में साँस लेते हुए काव्य-रचना की है । तीनों का सम्बन्ध हिन्दी की प्रगतिशील काव्य-धारा से रहा है फिर भी इन तीनों कवियों ने दृश्य-जगत का जो अंकन किया है, उसमें ऊपर-ऊपर से देखने पर पर्याप्त साम्य होते हुए भी, अन्तत: स्पष्ट अन्तर दृष्टिगोचर होता है । इसका कारण यही है कि कविता में वस्तु-जगत का यथातथ्य चित्रण प्राय: नहीं होता, उसे कवि की

१. ताप के ताए हुए दिन त्रिलोचन शास्त्री, पृ० ५२
२. धरती, त्रिलोचन शास्त्री, पृ० ९५

भावनाओं और विचारों के अनुरूप आकार मिलता है । तात्पर्य यह है कि कविता का विषय कवि के आत्मगत सौन्दर्य-बोध से परिचालित होकर कलात्मक रूप ग्रहण करता है । केदार-नागार्जुन और त्रिलोचन की कविता में जो सूक्ष्म अंतर दिखायी देता है, वह इनकी सौन्दर्य-दृष्टि की भिन्नता के कारण है ।

भाव-सौन्दर्य की दृष्टि से तीनों कवियों में पर्याप्त समानता और भिन्नता दिखायी देती है। तीनों कवियों ने प्रेम को कविता का अनिवार्य विषय बनाया है । प्रेम को इन्होंने किसी संकीर्ण दृष्टि से नहीं देखा, बल्कि उसके विविध रूपों, दाम्पत्य प्रेम, वात्सल्य, देश-प्रेम सख्य-प्रेम, प्रकृति-प्रेम और कुल मिलाकर मानवीय-प्रेम-आदि का व्यापक चित्रण किया है । यह प्रेम समाज-सापेक्ष होने के कारण अनेक रूपों में ढलता हुया दिखायी देता है । मानवीय-प्रेम की गहराई से इन कवियों के हृदय में मानवीय-करूणा का जन्म होता है और यह करूणा आँसूओं को पार करके शोषक वर्ग के प्रति घृणा और आक्रोश का रूप धारण कर लेती है ।

केदार अपनी कविताओं का आरम्भ वैयक्तिक प्रेम-चित्रण से करते है । यह प्रेम युवावस्था की सहजात भावना के रूप में व्यक्त हुआ है । प्रेम का आलम्बन परकीया नायिका न होकर, पत्नी है । पत्नी-प्रेम के माधुर्य से ओत-प्रोत अनेक चित्र केदार ने अंकित किये है । संयोग और वियोग दोनों अवस्थाओं पर कवि ने लेखनी चलायी है, किन्तु उनके काव्य में वियोग की अपेक्षा संयोग का चित्रण अधिक हुआ है । नागार्जुन और त्रिलोचन ने भी दाम्पत्य-प्रेम के अनेक सुन्दर चित्र खीचे हैं । इनके प्रेम-वर्णन भी परकीया नायिका के प्रति न होकर अपनी पत्नियों के प्रति है किन्तु जहाँ केदार संयोग चित्रण पर अपना ध्यान अधिक केन्द्रित रखते हैं, वहीं नागार्जुन और त्रिलोचन संयोग सुखों की अपेक्षा उसके वियोग पक्ष का चित्रण अधिक करते हैं । इसका कारण इन तीनों कवियों की अलग-अलग पारिवारिक स्थिति है । केदार एक सुविधा सम्पन्न मध्यमवर्गीय परिवार के कवि हैं, जिन्हें पढ़ाई के कुछ दिनों को छोड़कर शेष सारा समय पत्नी के पास रहने को मिला है । उन्हें रोजी-रोटी के लिये दर-दर की ठोकर नहीं खानी पड़ी । पढ़ाई पूरी करने के बाद वे अपने गृह जनपद बांदा मे वकालत करते रहे । किन्तु नागार्जुन और त्रिलोचन को जीविका के लिए कोई स्थायी साधन नहीं मिल सका, पारिवारिक-परिस्थितियाँ भी वैसी नहीं थीं जैसी केदार को प्राप्त थीं । आजीविका की तलाश मे इन कवियों को प्राय: परदेश में रहना पड़ा, जहाँ से घर-परिवार बहुत दूर था । नागार्जुन तो कई बार अपने अक्खड़ स्वभाव के कारण घर-बार छोड़कर बाहर निकल जाते रहे । इसी सनक में एक बार तो उन्होंने सिर मुड़ाकर बौद्ध - धर्म में दीक्षा भी ग्रहण कर ली थी । पर इस सबके बावजूद उनके हृदय का प्रेम रस सूखा नहीं, थोड़े ही दिनों मे वे पत्नी और परिवार से मिलने के लिए व्याकुल हो उठे । परिस्थितिवश उनकी कविता में संयोग-चित्रण का अवसर अधिक नहीं आ पाया उसमें वियोग-जन्य पीड़ा की ही प्रमुखता है । लगभग यही बात त्रिलोचन के बारे में भी कही जा सकती है । वे नागार्जुन की तरह घर से विरक्त होकर शान्ति की खोज में हिमालय की तराइयों में या बौद्ध मठों में तो नही भटके, किन्तु रोजी की तलाश

में उन्हें भी प्रायः घर से बाहर रहना पड़ा । परिणामतः उनकी कविता में भी वियोग जन्य अवसाद का ही चित्रण अधिक मिलता है ।

इन कवियों ने प्रेम की स्वच्छन्दतावादी मनोवृत्ति का समर्थन कभी नहीं किया । इनका प्रेम सामाजिक मर्यादाओं से पूर्णतः अनुशासित है । पत्नी इन कवियों के लिए मात्र श्रृंगार का विषय नही रही बल्कि उसकी उपस्थिति से इन्हें जीवन जीने का सम्बल मिलता रहा है । इनका पत्नी-प्रेम इनकी प्रगति में कभी बाधक नहीं हुआ, बल्कि प्रेम से इन्हें निरन्तर कर्म क्षेत्र में आगे बढ़ते रहने की प्रेरणा मिली है ।

केदार-नागार्जुन और त्रिलोचन तीनों के हृदय में वात्सल्य का भाव पूरे वेग के साथ प्रवाहित होता हुआ दृष्टिगोचर होता है । इनके वात्सल्य चित्रण का आलम्बन अपनी संतान के अतिरिक्त अपने सम्पर्क में आने वाले दीन-हीन बालक-बालिकायें भी रहे है । छोटे बच्चों के सम्पर्क में इन कवियों को लौकिक आनन्द की अनुभूति होती रही है । बच्चों का सरल स्वभाव इनके मन में नया उत्साह पैदा कर देता है ।

अपने मित्रों के प्रति आत्मीयता बोध और उनसे मिलकर होने वाली असीम प्रसन्नता का चित्रण तीनों कवियों ने किया है । केदार, नागार्जुन और त्रिलोचन प्रगतिशील चेतना सम्पन्न कवि है और 'स्वभावतः इनका मित्र मंडल भी प्रगतिशील खेमें से ही सम्बद्ध है । आपस में भी ये तीनों कवि एक दूसरे के प्रति मैत्री-भाव की सरल और सहज अभिव्यक्ति करते है । केदार जब नागार्जुन को गले लगाने की कामना करते है, तो वे अकेले नागार्जुन को ही नहीं बल्कि सम्पूर्ण मिथलांचल की सामाजिक-सांस्कृतिक परम्पराओं को गले लगा लेना चाहते है । नागार्जुन भी जब अपने समान धर्मा कवि मित्रों का स्मरण करते है तो इनका हृदय आत्मीयता से विभोर हो उठता है । केदार और नागार्जुन की मैत्री भाव सम्बन्धी कविताओं में एक उल्लेखनीय अंतर यह है कि केदार जहाँ अपने समान धर्मा कवि मित्रों के प्रति ही संवेदनशील होते है, वहाँ नागार्जुन भिन्न विचारधारा वाले कवियों से भी घुल मिलकर रहने की उदार भावना का परिचय देते है । वे केदार की तरह प्रयोगवादी या नयी कविता के कवि को अपने से दूर रखने के पक्षधर नहीं है । त्रिलोचन की दृष्टि में भी इस प्रकार की कोई संकीर्णता नही है, बल्कि वे अपने मित्रों के प्रति केदार और नागार्जुन से भी अधिक उदात्त भावना का परिचय देते है । केदार और नागार्जुन जहाँ अपने सख्य-भाव की दुनिया में खोकर आत्मीय सुख की अनुभूति करते है, वहाँ त्रिलोचन अपनी वैयक्तिक सुखानुभूति से आगे निकल कर अपने मित्रों के नित्य-प्रति फूलने-फलने की कामना भी करते है ।

केदार, नागार्जुन और त्रिलोचन मूलतः मानवीय-प्रेम के कवि है । उन्हें अपने देश, समाज और सम्पूर्ण मनुष्य जाति से प्रेम है । मनुष्य के दुख-दर्द को इन कवियों ने जिस आत्मीयता के साथ अपनी कविता मे उभारा है उससे साफ पता चलता है कि वे स्वयं उसका अभिन्न हिस्सा है। सामाजिक जीवन में व्याप्त शोषण और अनाचार का चित्रण करते समय केदार, नागार्जुन और त्रिलोचन शोषितों के प्रति सच्ची सहानुभूति और शोषकों के प्रति घृणा और आक्रोश का भाव व्यक्त करते

है । यह घृणा और आक्रोश इन कवियों के सच्चे मानवीय प्रेम का ही परिणाम है । जब वे देखते है कि राजनेता पूँजीपतियों से साँठ-गाँठ करके सर्वहारा के हितों की अनदेखी कर रहे हैं और मनुष्य होकर भी मनुष्यों का शोषण कर रहे हैं तो उनके प्रति घृणा और आक्रोश का भाव बहुत स्वाभाविक जान पड़ता है । पर इस प्रेम और घृणा के अन्तर्द्वन्द्व को चित्रित करने में तीनों कवियों के बीच तीव्रता का अन्तर दिखायी देता है । केदार एक निश्चित मान्यता से अनुप्राणित होकर सर्वहारा के प्रति प्रेम और शोषक वर्ग के प्रति घृणा का भाव व्यक्त करते हैं । बातें वही है किन्तु नागार्जुन इन भावनाओं को विशिष्ट घटनाओं के परिप्रेक्ष्य में व्यक्त करते हैं ।उन्होने स्वयं पूँजीवादी व्यवस्था के घातक प्रभाव को अपने जीवन में झेला है इसलिए उनके द्वारा व्यक्त की गयी पीड़ा में जो सच्चाई झलकती है, वह केदार के काव्य में उस तीव्रता के साथ व्यक्त नहीं हो सकी । केदार का प्रेम और घृणा एक दृष्टा कवि की भावनायें हैं, जबकि नागार्जुन उस सत्य के भोक्ता कवि है। त्रिलोचन ने भी जीवन की सच्चाई का सीधा साक्षात्कार किया है । इसलिए उनके द्वारा प्रदर्शित की गयी मानवीय करूणा और अन्याय के विरूद्ध उठायी गयी आवाज में पैनापन है । त्रिलोचन ने जिन घटनाओं को लेकर अपने उदात्त मानवीय प्रेम का उद्घाटन किया है, वे घटनायें उनके जीवन का अंग है ।

प्रकृति-प्रेम के प्रति भी तीनों कवियों का अदम्य उत्साह दिखायी देता है । प्रकृति के प्रति ये कवि उसके नैसर्गिक सौन्दर्य से आकृष्ट होकर भी समर्पित होते हैं और मानवीय सुख-दुःख को अभिव्यक्ति देने के लिए भी इन्होंने प्रकृति का उपयोग किया है, वल्कि मानव-जीवन के हर्ष-विषाद को चित्रित करने के लिए ही प्रकृति का अधिक प्रयोग किया गया है । प्रकृति के सामान्य रूपों की अपेक्षा केदार ने उनके विशिष्ट रूपों का अंकन अधिक किया है जो इस बात का प्रमाण है कि वे प्रकृति-चित्रण करते समय हवा में तीर नहीं चलाना चाहते बल्कि अपने सुपरिचित प्रकृति रूपों के साथ मिलकर एकात्म का अनुभव करते है । नागार्जुन ने भी अपनी आंचलिक प्रकृति के प्रति अधिक रूचि प्रदर्शित की है । मिथिला के रूचिर भू-भाग और वहाँ के नदी-पोखर, खेत-खलिहान उन्हें पूरी आत्मीयता के साथ अपनी ओर खींचते हैं । त्रिलोचन ने भी प्रकृति के विविध रूपों का अंकन करते समय उसे मानवीय संवेदनाओं से ओत-प्रोत करके प्रस्तुत किया है । प्रकृति के प्रति उनका प्रेम भी केदार और नागार्जुन की ही तरह मनुष्य-जीवन के साथ जुड़कर व्यक्त हुआ है । प्रकृति प्रायः मानव-सापेक्ष रूप में ही सामने आयी है ।

इस प्रकार केदार, नागार्जुन और त्रिलोचन की भाव सम्पदा उदात्त मानवीय मूल्यों से ओत-प्रोत है । वे अपने-अपने स्तर से मनुष्य के व्यापक हित की कामना करते हैं और उस हित में बाधक तत्वों की जमकर आलोचना करते हैं ।कमोवेश तीनों ही कवि भावना के स्तर पर उदार सामाजिक दिखायी देते है । वे समाज के सुख-दुःख को व्यक्तिगत सुख-दुःख से बड़ा मानते हैं।इसीलिए उनकी कविताओं में मनुष्य मात्र के प्रति तर्क-संगत रागात्मकता का दर्शन होता है ।

केदार, नागार्जुन और त्रिलोचन मार्क्सवादी विचारधारा से सम्बद्ध कवि है । इनकी

कविताओं में समाजवादी दर्शन के साथ प्रतिबद्धता का स्वर मुखरित हुआ है । इन्होने व्यक्तिवादी जीवन-दर्शन का खुलकर विरोध किया है । वर्गहीन समाज और राष्ट्र की स्थापना करना इनकी कविताओं का मंतव्य है । पूँजीपतियों के प्रति घृणा और आक्रोश तथा सर्वहारा के प्रति अपनेपन का भाव तीनों कवियों में दिखायी देता है । तीनो ने पूँजीवादी शासन व्यवस्था की कटु आलोचना की है । उनके विचार से भारतीय प्रजातन्त्र कांग्रेस पार्टी के हाथ में पड़कर पूँजीवादी प्रकृति का हो गया है । इसलिए कांग्रेस और कांग्रेसी नेताओं की उन्होंने तीखी आलोचना की है । आलोचना के इस क्रम मे नागार्जुन सबसे आगे हैं । इन्होंने कांग्रेसी चरित्र को बहुत निकट से देखा है इसलिए उनकी आलोचना में जो दर्द है वह केदार या त्रिलोचन की रचनाओं में नहीं मिलता । यद्यपि कांग्रेसी रीति-नीति की आलोचना करने में केदार और त्रिलोचन भी कम नहीं है ।

मार्क्सवाद के प्रति प्रतिबद्धता के कारण केदार नागार्जुन और त्रिलोचन ईश्वर और धर्म की खिल्ली उड़ाते दिखायी देते हैं । केदार इस दृश्य जगत से परे किसी अदृश्य सत्ता से साफ इन्कार करते हैं । उनका यह इंकार प्रत्यक्षत: मार्क्सवादी चिन्तन के प्रभाव स्वरूप है, किन्तु नागार्जुन का ईश्वर के प्रति नकारात्मक दृष्टिकोण अपने व्यक्तिगत अनुभवों और मार्क्सवादी चिन्तन के मिले-जुले प्रभाव का परिणाम है । उन्होंने दीर्घकाल तक बौद्ध-धर्म की आड़ में उस परम आनन्दमय स्रष्टा की खोज की, किन्तु जब उन्हें उसमें भटकाव के अतिरिक्त कुछ भी नहीं मिला, तब वे इस नतीजे पर पहुँचे कि ईश्वर सम्बन्धी परम्परागत मान्यताएं अर्थहीन हैं । त्रिलोचन यद्यपि ईश्वरीय सत्ता को खुलकर स्वीकार नहीं करते, किन्तु मनुष्य के कर्मक्षेत्र से परे नियति की महत्ता का वे बार-बार स्मरण करते हैं ।

धर्म के क्षेत्र में जो विसंगतियाँ व्याप्त हैं उनका तीनों कवियों ने मखौल उड़ाया है पर इस मखौल में भी नागार्जुन और त्रिलोचन की कविता में जो परिस्थिति सापेक्षता दिखायी देती है, वह केदार की कविताओं में प्राय: कम है । उन्होंने देवी-देवताओं और धार्मिक कर्मकाण्ड का मखौल उड़ाने के लिए ही मानो अनेक कविताएं लिखी है, जबकि नागार्जुन और त्रिलोचन ने विशिष्ट घटनाओं के परिप्रेक्ष्य में उसे अंकित किया है ।

जीवन की क्षण भंगुरता और उसके दु:ख-दर्दो से आहत होकर भी केदार, नागार्जुन और त्रिलोचन निराश नहीं होते, बल्कि जीवन का हर आघात उनके अन्दर जीवन के प्रति आस्था और विश्वास को दृढ़तर कर देता है । मृत्यु चिर सत्य है यह जानते हुए भी मृत्यु का भय इन कवियों मे दिखायी नहीं देता । जीवन पर्यन्त दमे का शिकार रहने के बावजूद नागार्जुन जीवन से कभी उकताये नही है । परिस्थितियों की मार त्रिलोचन ने भी कम नहीं सही, किन्तु इससे जीवन के प्रति उनकी आस्था कम नहीं हुयी, बल्कि जीवन की कठिनाइयों से उनकी जिजीविषा को और बल मिला है ।

अध्याय-५

आलोच्य कवियों का कल्पना-सौन्दर्य

(क) कल्पना का स्वरूप - पाश्चात्य दृष्टि, भारतीय दृष्टि, काव्य में कल्पना का महत्व ।

(ख) आलोच्य कवियों मे कल्पना सौन्दर्य -

(1) केदार के काव्य में कल्पना -

(अ) प्रकृति-चित्रण,

(ब) नारी-सौन्दर्य,

(स) मैत्रीभाव,

(द) सामाजिक यर्थाथ-चित्रण

(2) नागार्जुन के काव्य में कल्पना -

(अ) प्रकृति-चित्रण,

(ब) नारी-सौन्दर्य,

(स) मैत्रीभाव,

(द) सामाजिक यर्थाथ-चित्रण

(3) त्रिलोचन के काव्य में कल्पना -

(अ) प्रकृति-चित्रण,

(ब) नारी-सौन्दर्य,

(स) मैत्रीभाव,

(द) सामाजिक यर्थाथ-चित्रण

तुलनात्मक निष्कर्ष

अध्याय-५

आलोच्य कवियों का कल्पना-सौन्दर्य

सौन्दर्यशास्त्र में 'कल्पना' का प्रमुख स्थान है । यह अंग्रेजी शब्द 'इमेजीनेशन' का पर्यायवाची है, जिसका शाब्दिक अर्थ है 'सृष्टि करना' । हिन्दी साहित्य कोश के अनुसार "पूर्व अनुभूतियों की पुनर्योजना से अपूर्व की अनुभूति उत्पन्न करने की किया या शक्ति को कल्पना कहते है ।" वर्तमान का अवगाहन करने वाला प्रत्यक्ष, अतीत का अवगाहन करने वाली स्मृति तथा अनागत का अवगाहन करने वाली कल्पना ।"(1) कल्पना कवि-कलाकार की सृजनशक्ति का नाम है जिसके बिना नवनिर्माण कर सकना संभव नहीं । भारतीय साहित्यशास्त्र में काव्य-हेतुओं के अन्तर्गत जिस 'प्रतिभा' या 'शक्ति' का विवेचन दीर्घकाल तक हुआ है, वह कल्पना ही है और वहाँ भी इसका महत्व स्वीकार किया गया है । पं0 बलदेव उपाध्याय तथा अन्य मनीषियों की स्पष्ट मान्यता है कि पाश्चात्य आलोचना का 'इमेजिनेशन' भारतीय साहित्यशास्त्र की 'प्रतिभा' ही है ।(2) काव्य की सृजन शक्ति के रूप में भारतीय काव्यशास्त्र में प्रतिभा प्रतिष्ठित है और पाश्चात्य चिन्तन-परम्परा में कल्पना ।

पाश्चात्य दृष्टि :-

पाश्चात्य काव्यशास्त्र में कल्पना पर विचार करने वाले विचारकों की सुदीर्घ परम्परा है।(3) कल्पना का स्वरूप निर्णय करने का सर्वप्रथम प्रयास एडीसन ने किया था । परन्तु कल्पना पर तात्विक दृष्टि से विचार करने वालों में सर्वप्रमुख कॉलरिज हैं । इनके अतिरिक्त अन्य रोमांटिक कवियों ब्लैक, वर्ड्सवर्थ, शैली, कीट्स आदि ने भी कल्पना पर अपने विचार प्रकट किये हैं ।

एडीसन ने अपने कल्पना सम्बन्धी विचारों में उसके ऐन्द्रिय पक्ष और विशेषकर चाक्षुष, पर बल देकर आगे आने वाले चिन्तकों को चिन्तन की एक राह दिखलाई । इनके कल्पना सम्बन्धी विचारों पर हॉब्स और लॉक के 'सैन्सेशनलिज्म' का प्रभाव है ।(4) एडीसन ने कल्पना के आनन्द को दो प्रकार का माना है - प्राथमिक और गौण । वे कल्पना का प्राथमिक आनन्द वहाँ मानते हैं, जहाँ हम प्राकृतिक वस्तुओं के वास्तविक प्रत्यक्ष से अनुभव प्राप्त करते हैं, और गौण आनन्द

---

१. हिन्दी साहित्य कोश, पृ० २०५-२०६

२. भारतीय साहित्य शास्त्र, प्रथम खण्ड बलदेव उपाध्याय पृ० ४२३

३. "पाश्चात्य काव्यशास्त्र का इतिहास एक प्रकार से कल्पना की व्याख्या-पुर्नव्याख्या का ही इतिहास है ।" - मानविकी पारिभाषिक कोश (साहित्य खण्ड) पृ० १४१

4. "Nevertheless, the newly brightened meaning of "imagination" as that term appears in Addison's spectators is to a large extent determind by the sensationalism of hobbes and locke."
- Wimsatt & Brooks: Literary Criticism,- A short History, P-255

वहाँ मानते है, जहाँ हम प्राकृतिक वस्तुओं के कलात्मक अनुकरण द्वारा प्रस्तुत श्रेष्ठ प्रतिरूपों को देखते है । एडीसन के विचार से कलात्मक अनुकरण से आनन्द मिलता है । अरुचिकर वस्तु के अनुकरण की अपेक्षा सुखद वस्तु का अनुकरण अधिक आनन्ददायक होता है । लेकिन गौण कल्पना से प्राप्त आनन्द और कलात्मक अनुकरण से प्राप्त आनन्द में कोई तात्विक अन्तर एडीसनने स्पष्ट नहीं किया है । एडीसन ने कल्पना के प्राथमिक आनन्द की अपेक्षा गौण आनन्द की श्रेष्ठता प्रतिपादित की है ।

कॉलरिज की कल्पना लोकोत्तर निर्माणात्मक शक्ति की पर्याय है । यही कल्पना काव्य में सौन्दर्य की सृष्टि करती है । कॉलरिज का कथन है कि - आनन्द काव्य में कोई स्वतंत्र पदार्थ नहीं है । वह सौन्दर्य पर आश्रित है और सौन्दर्य कल्पना शक्ति पर आश्रित है ।(1)

कॉलरिज ने कल्पना के दो भेद माने हैं - 1. प्राथमिक या मुख्य कल्पना, 2. द्वितीयक या गौण कल्पना ।'प्राइमरी' या मुख्य कल्पना मानवीय ज्ञान की जीवन्त शक्ति और मुख्य माध्यम है । वह 'समीम' में 'असीम' की अभिव्यक्ति कही जा सकती है । 'सेकेण्डरी' या गौण कल्पना पुनर्निर्माण के हेतु पदार्थो को अवयवस: छिन्न-भिन्न करके देखती है । जहाँ यह प्रक्रिया असंभव होती है, वहाँ आदर्शीकरण तथा एकीकरण का प्रयास होता है ।(2) कॉलरिज के कल्पना-सम्बन्ध ी विचारों पर जर्मन दार्शनिक कान्ट का प्रभाव है ।कान्ट द्वारा विवेचित उत्पादक कल्पना (Productive Imagination) तथा सौन्दर्य कल्पना (Aesthetic Imagination) कमश: कॉलरिज की 'प्राइमरी' और 'सेकेण्डरी' कल्पना से तुलनीय है । बलदेव उपाध्याय ने इन्हें कमश: संस्कृत काव्यशास्त्र से 'सविकल्प प्रत्यक्ष' और 'कवि-प्रतिभा' के समकक्ष माना है ।(3)

कॉलरिज ने दृष्टा और दृश्य (Subject and object) के विरोधी गुणों में सन्तुलन स्थापित

---

1. पं0 जगन्नाथ तिवारी अभिनन्दन ग्रन्थ में आचार्य नन्द दुलारे बाजपेयी का लेख
   पाश्चात्य-समीक्षा: सैद्धान्तिक विकास पृ0 ५०२

2. "The IMAGINATION then, Icosxider either as primary, or secondary. The primary IMAGINATION I hold to be the living power and prime agent of all human perception and as a repetition in the finit mind of the eternal act of creation in the infinite I AM. The secondary imagination I consider as an echo of the former, co-existing with the conscous will, yet still as identical with the primary in the kind of its agency, and differing only in degree, and in the mode of its opration. It dissolves, diffuses, dissipatesm in order to recreateor where the process is rendered impossible, yet still at all events its struggles to idealize and to unify, It is essentially vital, even as all objects (as objects) are essentially fixed and dead."

   - S.T. coleridge : Biographia Literaria, I, p. 202

3. भारतीय साहित्य शास्त्र, प्रथम खण्ड, बलदेव उपाध्याय, पृ0 431

4. Biographia Literraria, Chap. XIV, II, 12, S.T. coleridge.

करने का कार्य कल्पना का माना है । (4) कॉलरिज की कल्पना विषयक विचारधारा का सौन्दर्यशास्त्रीय महत्व उनके विरोधियों तक ने स्वीकार किया है ।

अन्य रोमांटिक कवियों ने कल्पना का, कॉलरिज की भाँति, तात्विक विवेचन नहीं किया। विलियम ब्लेक का मानना है कि उन व्यक्तियों की कल्पनाशक्ति अधिक समृद्ध होती है, जो सहजानुभूति से सम्पन्न होते हैं । ब्लेक ने वस्तु-जगत को कल्पना का अहित करने वाला ही नहीं अपितु उसे कुंठित करने वाला कहा है । इसके विपरीत वर्ड्सवर्थ ने प्रकृति को कल्पना का सहायक माना है । शैली ने सामान्य अर्थो में काव्य को 'कल्पना की अभिव्यक्ति' के रूप में परिभाषित किया है ।(१)

भारतीय दृष्टि -

भारतीय काव्य शास्त्र में कल्पना के स्थान पर प्रतिभा को महत्व दिया गया है ।आलोचकों की धारणा है कि -"काव्य में रस ध्वनि वत्व के दृष्टा आचार्यो की प्रतिभा सम्बन्धी धारणा अपने आप मे इतनी पूर्ण है कि पाश्चात्य काव्यालोचकों की कवि - कल्पना (पोइटिक इमेजिनेशन) की सभी विश्लेषण -दृष्टियाँ इसमें समा जाती हैं और तब भी इसके लिए यही कहा जा सकता है कि यह इन सब कल्पनाओं से परे किन्तु इन सब कल्पनाओं का अक्षय स्रोत है ।"(२)

भामह ने काव्य - हेतुओं के प्रसंग में प्रतिभा को श्रेष्ठतम माना है । उन्होने प्रतिभा का उल्लेख करते हुये कहा है कि गुरू के उपदेश से जड़बुद्धि भी शास्त्राध्ययन कर सकता है, किन्तु काव्य तो कोई प्रतिभावान ही बना सकता है ।(३) रूद्रट ने प्रतिभा के स्थान पर 'शक्ति' शब्द का प्रयोग किया है और उसे ही काव्य का मुख्य हेतु माना है । उनके अनुसार -"मन की एकाग्रावस्था में जिसमें अभिधेय का अनेक रूपों में विस्फुरण होता है और जिसमें अक्लिष्ट पद सूझ पड़ते हैं, उसे 'शक्ति' कहते है ।"(४) इन्होने शक्ति के दो भेद किये है - सहजा और उत्पाद्या। सहजा स्वाभाविक शक्ति है और अत्पाद्या व्युत्पत्तिलभ्य ।(५) भट्टतौत ने 'प्रज्ञा' नवनवोन्मेषशालिनी प्रतिभा मता' कहकर प्रतिभा की परिभाषा दी है ।

राजशेखर ने भी प्रतिभा के महत्व को स्वीकार करते हुए प्रतिभा के दो भेद-कारयित्री प्रतिभा (जो कवि में पायी जाती है) और भावयित्री प्रतिमा (जो सहृदय सामाजिक में पायी जाती है)-

---

1. "Poetry in a genral sence, may be defined to be" the expression of imagination." Quoted from 'makers of Literary criticism' Vol 2, Edited by A.G. George.

२. हिन्दी काव्य प्रकाश, डॉ० सत्यव्रत सिंह, भूमिका पृ० १४

३. गुरूपदेशादध्येतु शास्त्रं जडधियोअप्यलभ् ।
काव्यं तु जायते जातु कस्याचित् प्रतिभावतः । - काव्यालंकार, पृ० १-५

३. काव्यालंकार, भामह पृ० १/१५

४. वही, पृ० १/१६ तथा १/१७

किये हैं । उन्होने कारयित्री के तीन भेद माने है -सहजा, अहार्या और औपदेशिकी । पूर्व जन्म के संस्कारों से प्राप्त जन्मजात प्रतिमा सहजा, वर्तमान जन्म के संस्कारों से उत्पन्न आहार्या और मन्त्र-तन्त्रादि साधनों से उत्पन्न औपदेशिकी होती है । इन्हीं के आधार पर कवि भी तीन प्रकार के होते हैं - सारस्वत, आभ्यासिक और औपदेशिक ।

अभिनवगुप्त द्वारा विवेचित प्रतिभा का स्वरूप कॉलरिज इत्यादि पाश्चात्य आलोचकों की मान्यताओं के बहुत निकट है, जिसमे प्रतिभा को नवनवरूपविधायिनी मानसिक शक्ति के रूप में माना गया है - 'प्रतिभा अपूर्व वस्तु निर्माण क्षमा प्रज्ञा । तस्या विशेषों रसावेशवैशद्यसौन्दर्यकाव्यनिर्माणक्षमत्वम्। (१) कवि प्रतिभा उस सामान्य प्रतिभा का एक विशिष्ट रूप है, जब कवि रसावेश की विशदता और सौन्दर्य के कारण काव्य निर्माण में समर्थ होता है ।

उपर्युक्त संस्कृताचार्यो के अतिरिक्त कुन्तक, महिमभट्ट, मम्मट, हेमचन्द्र और पण्डिराज जगन्नाथ आदि ने भी प्रतिभा को काव्य का मुख्य हेतु मानते हुए उसका महत्व स्पष्ट किया है ।

संस्कृत काव्यशास्त्र में विशेषत: रस-सिद्धान्त के अन्तर्गत विवेचित प्रतिभा और पाश्चात्य चिन्तन की परम्परा में विवेचित कल्पना के अन्तर को स्पष्ट करते हुए डॉ0 निर्मला जैन मानती है कि प्रतिभा में भावपक्ष प्रधान है और कल्पना में बोधपक्ष प्रधान होता है - "इसके अतिरिक्त पश्चिम में कल्पना जिस नूतन सृष्टि विधायिनी शक्ति के रूप में निरूपित की गई है, वह भारतीय प्रतिभा की अपूर्व सृष्टि की तुलना में नवीनता के प्रति अधिक आग्रहशील है । कल्पना और प्रतिभा का यह अन्तर वस्तुत: आधुनिक रोमांटिक और प्राचीन क्लासिकी दृष्टि का है । एक नवोन्मेष सम्बन्धी सीमा के अतिरिक्त संस्कृत काव्यशास्त्रगत 'प्रतिभा' पाश्चात्य 'कल्पना' से अधिक व्यापक अवधारणा है, क्योकि उसमें कल्पना के साथ ही सहजानुभूति का भी समावेश हो जाता है, यही नहीं बल्कि एक ओर वह बोधपक्ष के साथ भावपक्ष का समाहार करती है, तो दूसरी ओर बिम्बनिर्माण, भाषा का आलंकारिक प्रयोग, आत्मेतर व्यक्तियों की मन: स्थितियों का सहानुभूतिपूर्ण चित्रण, असम्बद्ध समझी जाने वाली वस्तुओं का संयोजन, परस्पर विरोधी तत्वों का समंजन आदि कार्यो को भी सम्पन्न करने में समर्थ है ।"(२)

हिन्दी के आधुनिक आलोचकों में आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने कल्पना पर मौलिक ढंग से विचार किया है इससे पूर्ण बाबू श्यामसुन्दर दास ने कल्पना का विवेचन किया है - "विज्ञान में जो बुद्धि है, दर्शन में जो दृष्टि है, वही कविता में कल्पना है ।"(३) परन्तु ऐसे कथनों में कल्पना के स्वरूप पर कोई विशेष प्रकाश नहीं पड़ता ।

आचार्य शुक्ल ने कल्पना की परिभाषा करते हुए लिखा है " जो वस्तु हमसे अलग है, हमसे दूर प्रतीत होती है उसकी मूर्ति मन में लाकर उसके सामीप्य का अनुभव करना ही उपासना है ।साहित्य वाले इसी को भावना कहते हैं और आजकल के लोग कल्पना ।"(४) तथा "मानसिक

---

१. ध्वन्यालोक लोचन, — अभिनव गुप्त — पृ० ९३
२. रस-सिद्धान्त और सौन्दर्यशास्त्र, — डॉ० निर्मला जैन — पृ० ४१५
३. साहित्यालोचन, — डॉ० श्याम सुन्दर दास — पृ० ७८
४. चिन्तामणि (पहला भाग) : — आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, — पृ० १६१

रूप-विधान का नाम ही संभावना या कल्पना है ।"(१) शुक्ल जी उसी काव्य को श्रेष्ठ मानते थे जो बिम्ब-ग्रहण कराये । कल्पना के बिना रूपविधान जिससे बिम्ब ग्रहण होता है, संभव नहीं है। कल्पना दो प्रकार की होती है - विधायक और ग्राहक। कवि में विधायक कल्पना कल्पना अपेक्षित होती है और श्रोता या पाठक में ग्राहक । (२) कवि के लिये कल्पना और भावुकता दोनों ही आवश्यकता मानकर जी शुक्ल जी ने रसवादी होने के कारण कल्पना को काव्य का साधन माना है, साध्य नहीं ।

रामदहिन मिश्र ने भी कल्पना के सम्बन्ध में विचार किया है । उनके अनुसार "अनुपस्थित वस्तु की मानस-प्रतिमा, खड़ी करने की शक्ति का नाम कल्पना है । कल्पना मन की एक विशिष्ट शक्ति है । कल्पना कवि को असत् से सत् की सृष्टि करने में समर्थ बनाती है । कल्पना के बल कवि मनुष्य के लिए जहाँ तक साध्य है, रचना कर सकता है ।साहित्यिक चरित्र की सृष्टि में कल्पना का जौहर खुलता है ।(३) उन्होनें कल्पना के तीन प्रकार माने है - १. उत्पादन कल्पना (Creative imigination) यह मन की वह निर्माणमयी वृत्ति है जो अकिंचित् से भी सब कुछ ला खड़ा कर देती है । २. संयोजन कल्पना (Associative imigination) इसका काम है एक वस्तु का दूसरी वस्तु से मेल करना । ३. अवबोधक कल्पना, इसका कार्य नवीन अर्थ का उद्भावन, अभूतपूर्व वस्तु का अश्रुतपूर्व सम्बन्ध स्थापित करना और ऐसी उड़ान उड़ना जिसमें तर्क की प्रबलता हो ।(४)

कल्पना के सम्बन्ध में डॉ० नगेन्द्र की मान्यता भी आचार्य शुक्ल जैसी ही है । उन्होने कल्पना के विषय में लिखा है कि - "कल्पना उस शकित का नाम है जो पहले कवि को वर्ण्य-विषय का मनसा साक्षात्कार कराती है और फिर भाषा में चित्रात्मकता का समावेश कर श्रोता के मनः चक्षु के सामने भी उसे प्रत्यक्ष कर देती है ।"(५) परन्तु उनकी दृष्टि में भी कल्पना से अधिक महत्व अनुभूति का ही है ।

छायावादी कवियों ने कल्पना का तात्विक विश्लेषण तो नहीं किया है परन्तु यत्र-तत्र काव्य में उसके महत्व तथा उपयोगिता पर विचार व्यक्त किये है । प्रसाद जी स्वीकार करते है कि - कल्पनाशक्ति के द्वारा ही कवि मधुरजगत की सृष्टि करनें में समर्थ होता है ।(६) निराला ने कविता को 'कल्पना के कानन की रानी' कहा । उनकी दृष्टि में कल्पना से अधिक महत्व अनुभूति

---

१. चिन्तामणि (पहला भाग) : आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, पृ० २४२
२. वही पृ० १६१
३. काव्य-दर्पण, राम दहिन मिश्र भूमिका पृ० ३२
४. वही पृ० ३२-३३
५. काव्य में उदात्त तत्व डॉ० नगेन्द्र पृ० १९
६. "आह कल्पना का सुन्दर यह जगत मधुर कितना होता ।
सुख-स्वप्नों का दल छाया में पुलकित हो जगता-सोता ।।" कामायनी-जयशंकरप्राद पृ० ३७

और चिन्तन का है । पन्त का काव्य सुन्दर से सत्य की ओर प्रयाण की कथा है । उनकी दृष्टि में कल्पना सौन्दर्य-सृष्टि में सहायक मुख्य उपकरण है । पन्त ने काव्य में कल्पना के विषय में लिखा है कि - "मैं कल्पना के सत्य को सबसे बड़ा सत्य मानता हूँ । मेरी कल्पना को जिन-जिन विचारधाराओं से प्रेरणा मिली है, उन सबका समीकरण करने की मैंने चेष्टा की है ।(१) पंत ने कल्पना का काव्य में अत्यधिक महत्व स्वीकार किया है । महादेवी वर्मा मानती हैं कि - "कलाकार यदि सत्य अर्थों में कलाकार हो, तो वह कल्पना को सौन्दर्यमय आकार देगा, उसमें वास्तविकता का रंग भरेगा और उससे जीवन-संगीत की सुरीली लय की सृष्टि कर लेगा ।(2) महादेवी जी ने कल्पना को अत्यधिक महत्व देते हुए भी उससे अनुभूति से निम्न माना है ।

छायावादी आलोचकों ने कल्पना को वस्तु जगत का विरोधी मानकर उसके पतन का एक प्रमुख करण कल्पना की अतिशयता भी स्वीकार की है । जबकि वास्तविकता यह है कि सभी छायावादी कवि कल्पना को काव्य-कला का तत्व स्वीकार करते हुए भी उसे उतनी प्रमुखता नहीं प्रदान करते जितनी अनुभूति को ।कल्पना के लिए कल्पना उनका उद्देश्य नहीं, अपितु अनुभूति को ही सौंदर्य प्रदान करने के हेतु उन्होंने कल्पना को ग्रहण किया है ।

काव्य में कल्पना का महत्व :-

कल्पना के स्वरूप के साथ काव्य-कला में उसके महत्व का प्रश्न भी जुड़ा है ।काव्य में कल्पना का उपयोग किस प्रकार और किन रूपों में सौन्दर्य की वृद्धि करता है, इस पर अनेक विद्वानों ने विचार किया है । श्री अरविन्द ने कल्पना के जो भेद माने हैं, उनकी राय मे उनमें से कोई भी व्यर्थ नहीं है ।(3) उनके अनुसार यह सारी कल्पनायें कवि को उसकी काव्यकृति के निर्माण में साधन प्रदान करती हैं । काव्यात्मक कल्पना इन तक ही सीमिति नहीं है । रस्किन ने भी कल्पना के कार्यो पर विचार किया है ।(4)

---

१. आधुनिक कवि - 2 सुमित्रानन्दन पंत, पृ० १९

२. महादेवी साहित्य (१) सं० ओंकर शरद, पृ० ३०९

3. "Objective imagination, subjective imagination, poetic fancy and Aesthetic Imagination."

"All these have place in poetry, but they only give the poet his materials, they are only the first. Instruments in the creation of poetic style. the essential poetic imagination does not stop short with even the most subtle reproductions of things exlernal or internal, with the richest or delicatest play of fancy or with the most beautiful colouring of word of image."

- The future poetry, P-34

4- "He speaks of three functions of the imagination." It combines, and by combination creates new forms. "(Imagination associative)" Agian, it treats, or regards, both the simple images and its own combinations in peculior ways." (imagination contemplative)" and thirdly it penetrates, analyses, and reaches truths by no other faculty discoverable." (imagination penetrative).

Quoted from 'the making of literature.' P-286

आचार्य शुक्ल ने 'रसात्मक बोध के विविध रूप' निबन्ध में कल्पना के चार मुख्य कार्यों का उल्लेख किया है - एक तो रूप - विधान करना, दूसरे मन के भीतर लोकोत्तर उत्कर्ष की झाँकिया तैयार करना, तीसरे अप्रस्तुत-योजना करना, चौथे, भाषा-शैली को अधिक व्यंजक, मार्मिक और चमत्कार पूर्ण बनाना । (१)

डॉ0 नगेन्द्र ने 'साहित्य में कल्पना का उपयोग' निबन्ध में कल्पना के प्रयोगों की चर्चा की है, ये है - बिम्ब और प्रतीकों का सृजन, अप्रस्तुत-विधान, आविष्कार तथा विषमताओं को एकसार करना । परन्तु उन्होनें कल्पना का सबसे सशक्त प्रयोग समन्वय करने में माना है। इस प्रसंग में उन्होनें कॉलरिज के उन शब्दों को भी उद्धृत किया है, जिनमें कल्पना को जादुई शक्ति माना गया है ।(2)

(ख) आलोच्य कवियों में कल्पना सौन्दर्य

काव्य का मुख्य आधार सौन्दर्य दर्शन है ।जो कवि सौन्दर्य की जितनी उदान्त कल्पना कर सकता है, उसकी कविता उतनी ही सुन्दर होती है । कवि में सह बहुत बड़ी शक्ति होती है कि वह विषय का तटस्थ-भावन करते हुए उत्कृष्ट सौन्दर्य की सृष्टि कर लेता है। वह विषय से अपनी सत्ता को पृथक रखकर उसका विश्लेषण भी कर लेता है और फिर इच्छानुसार उससे मिलकर एक भी हो जाता है । वह सौन्दर्य का जबरदस्त दृष्टा भी होता है और सौन्दर्य में तन्मय हो जाने की असाधारण शक्ति उसमें होती है । कवि की सौन्दर्य-चेतना का सम्बन्ध उसके अनुभूति-समृद्ध अन्तर्जगत से होता है, जिसका एक छोर 'जग जीवन की अन्तर्तम स्वर संगति' अर्थात शिव-तत्व से सम्बद्ध होता है और दूसरा छोर 'स्वप्नों के स्वर्णिम प्रवाह' अर्थात कल्पना से रसान्वित होता है । पंत ने सौन्दर्य-चेतना के इस स्वरूप का निम्नांकित शब्दों में संकेत किया है -

क्या है यह सौन्दर्य-चेतना ? जग जीवन की
अंतरतम स्वर संगति जो अब अन्तर्नभ के
शिखरों से उतर रही स्वर्णिम प्रवास से
स्वप्नों से शोभा उर्वर करने वसुधा को ।(3)

आलोच्य कवियों का मुख्य प्रतिपाद्य विषय मानव-समाज है । मानवेतर-जगत में प्रकृति को भी उन्होनें पूरी आत्मीयता से काव्य का विषय बनाया है, बल्कि प्रकृति उनके यहाँ मानव-जीवन के परिपार्श्व में ही अंकित हुयी है, और इस तरह उन्होने सौन्दर्य के दो प्रमुख रूपों मानवीय सौन्दर्य और प्राकृतिक सौन्दर्य पर सबसे अधिक ध्यान केन्द्रित किया है । यही मानवीय सौदर्य या मानवेतर जब कल्पना का स्पर्श पा जाता है, तब वह कलात्मक सौन्दर्य का रूप धारण कर लेता है । कल्पना

१. चिन्तामणि (पहला भाग) : आचार्य रामचन्द्र शुक्ल,
२. आस्था के चरण, डॉ० नगेन्द्र पृ० ११४
३. शिल्पी सुमित्रानन्दन पंत पृ० १०७

कवि की वह सर्जनात्मक शक्ति है, जिसके द्वारा वह अपनी कविताओं में अभिनव-रूप-व्यापारों और नूतन-सम्बन्ध सूत्रों का मानसिक विधान करता है । यह कल्पना-प्रियता अपने चरम रूप में छायावादी कविता का प्रमुख तत्व बनकर आयी है ।'प्रसाद' ने कामायनी के 'आशा' सर्ग में कल्पना का महत्व इन शब्दों में प्रतिपादित किया है -

आह ! कल्पना का सुन्दर यह
जगत मधुर कितना होता ।
सुख-स्वप्नों का दल छाया में
पुलकित हो जगता सोता ।(1)

प्रगतिशील कविता में, जो छायावाद के तत्काल बाद आयी, कल्पना के अतिरंजित-रूप को तो नहीं स्वीकार किया गया, किन्तु उसके सत्य-सापेक्ष रूप की कविगण उपेक्षा नहीं कर सके। छायावादी कविता के प्रमुख स्तम्भ निराला जी, जिन्हें प्रगतिशील कविता में ही यथोचित सम्मान प्राप्त है, कल्पना को सत्य की सहचरी के रूप में स्वीकार करते है ।(2) डब्लू0बी0 येट्स ने भी अपनी अनुभूतियों के आधार पर यह प्रतिपादित किया है कि कल्पना में सत्य रहता है तथा कल्पना में सत्य को उद्भाषित करने की शक्ति रहती है ।(3) इसका अर्थ यह हुआ कि कल्पना हमेशाा निराधार नहीं होती । उसमें भी सत्य की झलक रहती है, क्योंकि कल्पना कवि के मन की वह उपज है, जिसके आधार पर वह काव्य-रचना करता है और यदि कवि ईमानदार है, तो उसकी कल्पना भी उसकी आस्था का ही प्रतिविम्बन होगी और इस नाते वह असत्य नही हो सकती ।

कल्पना में अनुभूति का समावेश उसमें संवेदनशीलता ला देता है और पाठक को उसके साथ तादात्म्य स्थापित करने अथवा साधारणीकरण की दशा तक पहुँच पाने में सुविधा हो जाती है। कल्पना में स्वयंमेव एक अद्भुत शक्ति रहती है और उसमें प्रत्यक्ष की अपेक्षा सौन्दर्य भी अधिक रहता है, इसीलिए काव्य एवं अन्य कलाओं में प्रत्यक्ष-जीवन का सौन्दर्य कल्पना का स्पर्श पाकर परोक्ष-सौन्दर्य के रूप में प्रतिष्ठित हुआ करता है । इस प्रकार काव्य-सृजन में कल्पना को विधायक का पद प्राप्त है । क्योंकि यह विधायक कल्पना ही जीवन की प्रत्यक्ष वास्तविकता और काव्यगत-सत्य के बीच अभिन्नता का भ्रम पैदा करती है और कविता को रोचक बना देती है । कवि की कल्पना, उसके ज्ञान और अनुभूतियों से सिक्त होकर कविता को न केवल चित्रमय रूप देती है बल्कि उसे तुलनात्मक रूप से अधिक सम्प्रेषणीय भी बना देती है । कल्पना के बीच में सत्य का सौन्दर्य और भी मर्मस्पर्शी तथा हृदयद्रावक हो जाता है ।

---

१. कामायनी जयशंकर प्रसाद, पृ० ३७

२. रवीन्द्र-कविता-कानन, निराला, हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय, बनारस, १९५४ पृ० ८०-८१

3. Essays and Introduction, W.B. Yeats 1961 P-65

(1) केदार के काव्य में कल्पना

(अ) प्रकृति-चित्रण -

केदार मूलत: यथार्थवादी कवि है । उन्होने प्राय: उन्हीं विषयों को चुना है, जो प्रत्यक्षत: उन्हें दृष्टिगोचर हुए है । किन्तु उनकी आरम्भिक रचनाओं में रूमानी रूझान होने के कारण वे कई बार कल्पना का सहारा लेते है । उनकी आरम्भिक रचनाओं में छायावादी प्रभाव स्पष्ट है और वे उसी ढंग से रुमानी कल्पनाओं का आश्रय लेकर अपनी कविताओं का ताना बाना बुनते दिखते है । किन्तु उनकी कल्पनायें प्राय: मूर्त्त होती है । वे छायावादी कवियों की तरह अमूर्त्त कल्पनाओं का उपयोग नहीं करते । 'चन्द्रगहना से लौटती बेर' कविता में वे एक चने के खेत की मेड़ पर खड़े होकर खेत का सौन्दर्य दर्शन करते है और उन छोटे-छोटे पौधों में अत्यन्त भाव विभोर होकर एक स्वयंवर की कल्पना करने लगते है । उनकी कल्पना का आधार लोक संस्कृति के प्रति उनका प्रेम है -

एक बीते के बराबर
यह हरा ठिंगना चना
बाँधे मुरैठा शीश पर
छोटे गुलाबी फूल का,
स. कर खड़ा है ।
पास ही मिलकर उगी है
बीच में अलसी हठीली
देह की पतली, कमर की है लचीली,
नील फूले फूल को सिर पर चढ़ा कर
कह रही है, जो छुए यह
दूं हृदय का दान उसको।
और सरसों को न पूछो -
हो गयी सबसे सयानी,
हाथ पीले कर लिए हैं ,
ब्याह पंडप में पधारी ,
फाग गाता मास फागुन
आ गया है आज जैसे ।
देखता हूँ मै स्वयंबर हो रहा है (1)

इसी प्रकार कवि गेहूँ के खेत में पकी हुयी बालों का नृत्य देखकर रूमानी कल्पनाओं

---

१. फूल नही रंग बोलते है, केदारनाथ अग्रवाल पृ० १७-१८

में डूब जाता है और उसे हवा के झोंकों से हिलने वाले गेहूँ के पौधे और उनकी बालें ऐसी लगने लगती है, मानो वे हमजोली सखियाँ हों जो अत्यन्त उमंग में एक दूसरे से गले मिल रहीं हों ।

सर को खोले, गुहे चोटियाँ
गेहूँ की सुकुमार बालियाँ -
पके रंग दुबले शरीर की
खड़ी खेत में रंगी राजती,
चले हवा के हल्के झोंके
तन मे खुलते वस्त्र-पत्र के,
एक- एक से मिलकर सटकर
लज्जा से लग गयी सभलने, (१)

यही खेत का दृश्य कवि जब मार्क्सवादी दृष्टि से देखता है तो उसे वहाँ हमजोली सखियाँ नही दिखायी देतीं, बल्कि उसकी जगह लाल फौज के सिपाही नजर आते है, जो अपने शत्रु से जूझने के लिए मुट्ठी बाँधकर और भाले तानकर तैयार खड़े है -

आर पार चौड़े खेतों में
चारों ओर दिशाएँ घेरे
लाखों की अगणित संख्या में
ऊँचा गेहूँ डटा खड़ा है ।
ताकत से मुट्ठी बाँधें है,
नोकीले भाले ताने है,
हिम्मत वाली लाल फौज-सा
मर मिटने को झूम रहा है । (२)

इन कल्पनाओं को ध्यान से देखने पर एक बात स्पष्ट हो जाती है कि कवि जब सहज मानवीय संवेदना से ओत-प्रोत होकर खेतों को देखता है, तब उसे सारा दृश्य मादक और रास-रंग मे डूबा हुया दिखायी देता है, किन्तु जब उनके मन पर मार्क्सवादी दर्शन का प्रभाव प्रबल होता है, तब वह प्राय: कठोर और क्रान्तिपरक कल्पनायें करता है ।

केदार की कविता में प्रकृति के जिन रूपों को सबसे अधिक चित्रित किया गया है, उनमें खेतों के अतिरिक्त प्रात: सन्ध्या, दिन, रात, सूरज, चाँद, सितारे, धूप, किरणें, हवा, पानी, बादल, बिजली, नदी, पेड़-पौधे, और विभिन्न ऋतुयें प्रमुख है । कवि आशावादी है, इसलिए उसके यहाँ

१. जो शिलाएँ तोड़ते हैं, केदारनाथ अग्रवाल पृ० ८७
२. गुलमेंहदी, केदारनाथ अग्रवाल पृ० २१

अन्धेरे से अधिक उजाले के चित्र खींचे गये है । लोक-जीवन से जुड़ा होने के कारण कवि सूर्योदय और उसके प्रभाव का जब अंकन करता है, तब उसकी कल्पनायें लोक-जीवन की विभिन्न पर्तो को स्पर्श करती हुयी दिखायी देती हैं । खेत में खड़ा कवि धूप और हवा का कुछ ऐसा ही लोक-सांस्कृतिक चित्र खीचता है -

धूप चमकती है चाँदी की साड़ी पहने
मैके में आयी बेटी की तरह मगन है
फूली सरसों की छाती से लिपट गयी है
जैसे दो हमजोली सखियाँ गले मिली है
भैया की बाहों से छूटी भौजाई-सी
लहँगे की लहराती लचती हवा चली है । (२)

कवि प्रकृति के नैसर्गिक-सौन्दर्य से तो प्रभावित है ही, किन्तु वह केवल उतने भर से संतुष्ट नही है, उसकी कल्पना प्राकृतिक-सौन्दर्य-चित्रण के साथ-साथ मानव जीवन पर पड़ने वाला उसका प्रभाव भी रेखांकित करती है, बल्कि प्रभाव चित्रित करने में ही कवि का मन अधिक रमता है । धूप कवि के मनोरंजन का ही माध्यम नही है, वह उससे जीवन की प्रेरणा भी अर्जित करता है और धूप का स्पर्श उसमें एक नया उत्साह पैदा कर देता है -

धूप नही, यह
बैठा है खरगोश पलंग पर
उजला,
    रोएँदार, मुलायम -
इसको छू कर
ज्ञान हो गया है जीने का
फिर से मुझको । (२)

केदार को प्रकृति के सामान्य रूपों की अपेक्षा उसके विशिष्ट रूप अधिक प्रिय हैं । अपने आस-पास जाने-पहचाने पेड़-पौधे, नदी-पहाड़, खेत-खलिहान उनका ध्याान सबसे अधिक आकृष्ट करते हैं । बाँदा के पश्चिमी सिरे को छूकर बहने वाली केन केदार की सर्वाधिक चहेती नदी है । वे प्राय: उससे मिलने, उसके साथ बातें करने, उसका हाल-चाल पूछने उसके घाट तक जाते है पर उसे छेड़ते तभी है, जब उसका मन देखते हैं । अगर नदी किसी कारण वश उदास हो, तो वे मानवीय संवेदनावश उसके साथ कोई छेड़छाड़ नही करते, बल्कि दबे पाँव वापस आ जाते है -

आज नदी बिल्कुल उदास थी,

---

१. फूल नही रंग बोलते है, केदारनाथ अग्रवाल पृ० ६३
२. वही, पृ० ५०

सोयी थी अपने पानी में,
उसके दर्पण पर
बादल का वस्त्र पड़ा था ।
मैंने उसको नही जगाया,
दबे पाँव घर वापस आया । (१)

यही नही कवि को नदी कभी-कभी इतनी परूष और कर्मठ दिखायी देती है कि लगता है जैसे नदी का पानी, पानी न हो, बल्कि कोई कामरेड हो, जो सारी दीवारों को तोड़कर अपनी अभीष्ट दिशा में बढ़ जाने के लिए कृतसंकल्पित हो -

तेज धार का कर्मठ पानी,
चट्टानों के ऊपर चढ़ कर,
मार रहा है
घूँसे कस कर
तोड़ रहा है तट चट्टानी । (२)

दृश्य एक है पर कवि की दृष्टि उसे भिन्न-भिन्न रूपों में देखती है और अपनी कल्पना के रंग में रंग कर नये-नये रूपों में ढ़ाल देती है । कवि की कल्पना चाहे भावना से उद्वेलित हुयी हो, और चाहे उसकी वैचारिकता के कारण उपजी हो, किन्तु कहीं भी वह लोक की सीमाओं का अतिक्रमण नहीं करती । लगभग सभी कल्पनायें स्थूल-जगत से ही सम्बद्ध होती हैं ।

केदार की रचनाओं में प्रकृति के माध्यम से सामाजिक जन-जीवन की चेतना को भी अभिव्यक्ति मिली है, उनके लिए क्रान्ति एक उद्दाम प्रवाह है । क्रान्ति के इस प्रवाह को वे युग की गंगा के प्रवाह के रूप में कल्पना करते हैं -

युग की गंगा
गुहा - गर्त से
आगे जाकर
सूर्योदय से खेलेगी ही ।
युगी की गंगा
सूखी खेती सींचेगी ही,
भूखी, प्यासी,
दुर्बल, निर्बल धरती को हरियायेगी ही ।(३)

---

१. फूल नही रंग बोलते हैं, केदारनाथ अग्रवाल पृ० ४७
२. वही, पृ० ९७
३. गुलमेंहदी, केदारनाथ अग्रवाल पृ० १९

केदार ने अपनी रचनाओं में पौराणिक कल्पना का सहारा कम ही लिया है क्योंकि वे मार्क्सवादी सौन्दर्य-चेतना से प्रभावित थे, इस कारण उनकी दृष्टि मुख्यरूप से इस स्थूल जगत के यथार्थ-चित्रण में ही पड़ी है । वे ऐसे विषयों को अपनी रचनाओं का केन्द्र बनाते है, जो सामाजिक विकास में अपना योग दे सके । फिर भी कुछ रचनायें ऐसी हैं, जिनमें पौराणिक सन्दर्भ की कल्पनायें की गयी हैं जैसे -

धूप धरा पर उतरी
जैसे शिव के जटाजूट पर
नभ से गंगा उतरी ।(१)

उपर्युक्त पंक्तियों में कवि ने धूप को पृथ्वी पर उतरते हुये उसी रूप में पाया है जैसे शिव के जटाजूट से गंगा पृथ्वी पर उतर रही हो, और वे कल्पना करते हैं कि मानों धूप की गंगा उतरने से तम से आक्रान्त धरती उबर गयी हो ।

केदार की प्रारम्भिक रचनाओं में छायावादी प्रभाव स्पष्ट रूप से दिखायी पड़ता है । वे विशेष रूप से कविवर पंत से प्रभावित जान पड़ते हैं । इसलिए उनकी आरम्भिक रचनाओं में कहीं-कहीं सूक्ष्म कल्पनायें भी की गई है । 'कोयल' शीर्षक कविता में केदार ने 'छाया-सी' 'माया सी' आदि सूक्ष्म उपमानों के माध्यम से कोयल को चित्रांकित किया है -

ओ छोटी-सी छाया-सी ।
ओ प्यारी-सी माया-सी ।
ओ आमों की मुँह-बोली ।
तेरी है मीठी-बोली ।(२)

नारी-सौन्दर्य -

केदार की आरम्भिक रचनाओं में नारी-सौन्दर्य के अनेक प्रभावपूर्ण चित्र अंकित हुये हैं। नारियों में भी प्रेयसी और श्रमशील नारी के सौन्दर्य ने उन्हें सबसे अधिक आकृष्ट किया है । प्रेयसी भी परकीया नहीं है, उनकी व्याहता पत्नी है, जिसके सौन्दर्य से मुग्ध होकर वे नाना प्रकार की रूमानी कल्पनाए करते हैं ।उदाहारणार्थ -

मेरी प्यारी सबसे सुन्दर ।
दिन से सुन्दर, निशि से सुन्दर
सुन्दरतर रवि-शशि से सुन्दर
मेरी प्यारी सबसे सुन्दर ।(३)

---

१. फूल नही रंग बोलते है, केदारनाथ अग्रवाल पृ० ३२
२. गुलमेंहदी, केदारनाथ अग्रवाल पृ० १०६
३. वही पृ० ७७

इस सौन्दर्य-चित्रण में उनकी कल्पना नारी के नख-शिख के उपमान जुटाने का कार्य कम करती है, उनकी सर्वाधिक रूचि सौन्दर्य का प्रभाव चित्रित करने में दिखाई देती है ।

काव्य-यात्रा की आरम्भिक रचनाओं में कवि की कल्पना छायावादियों की तरह कभी-कभी जिज्ञासामूलक रहस्यभावना से भी अनुप्राणित हो उठी है । जैसे -

अयि रूपसि अनजान !
दिखलाती हो अरूणोदय में बिम्बाधर मुस्कान,
संध्या में जावक, रजनी में उडुयुत केश-वितान,
हिमकर में, मैने अवलोका तब-मुख आभावान,
किन्तु, कहाँ उसमें बतलाओं अधर-प्रबाल समान?
किस क्षण देखूँगा मै होकर पुलकित तन-मन-प्राण,
पद-नख से ले घने केश तक तेरा तन छविमान ? (१)

उक्त पंक्तियों में कवि ने विभिन्न प्राकृतिक उपादानों के माध्यम से किसी अनजान रूपसि के दर्शन किये है । वे हिमकर में रूपसी के आभावान मुख की कल्पना तो करते है, किन्तु प्रवाल समान अधरों का सौन्दर्य न पाकर प्रश्न भी खड़ा करते है । वे पद-नख से लेकर घने केश तक उसकी सम्पूर्ण छवि को देखने के लिए लालायित दिखायी पड़ते है ।'नींद के बादल' काव्य-संग्रह में कवि की तरूणााई के गीत संकलित है, जिनमें छायावादी कल्पनायें भरपूर है । वे कल्पना के स्वप्न लोक में अपने को राजा मानने लगते है, दास-दासियों से घिरा पाते है, मधुर-रागिनी और किन्नरियों का गुन्जन एंव नर्तन उन्हें आनन्द के सागर में डुबाये रहता है -

अनायास चकमक चकमक छवि बिछ जाती है ।
चन्द्र, चाँदनी दोनों मिल कर मुसकाते है,
सुधा-सुधा ही बरसाते है ।
मैं अतृप्त भी तृप्त सुधा से हो जाता हूँ ।।
मेरे लिए पलंग बिछता है ।
दास-दासियाँ प्रकटित होती है सेवा को ।
मै अधमूँदी आँखों से देखा करता हूँ ।
मधुर रागिनी छिड़ जाती है किन्नरियों की,
नूपुर ध्वनि गूँजा करती है,
मै मधु में डूबा रहता हूँ ....।(२)

स्वप्न, लोक की ऐसी कल्पनायें एक तो युवावस्था और दूसरे, कवि के खाते-पीते घर

१. गुलमेंहदी, केदारनाथ अग्रवाल पृ० ९४-९५
२. वही, पृ० ११०-१११

का होने के कारण उनके मानस-पटल से हटने का नाम ही नहीं लेती । तरूण कवि स्वयं को किसी किन्नर राज से कम कल्पित नहीं करता । कालान्तर में जब कवि का चिन्तन मार्क्सवादी दर्शन से प्रभावित होता है, तो इस प्रकार की कल्पनायें स्वमेव शान्त हो जाती हैं ।

मार्क्सवादी सौन्दर्य-चेतना से जुड़ने के बाद केदार की दृष्टि श्रमशील नारियों की ओर जाती है और वे किन्नरों का देश छोड़कर सड़ी-गली बस्तियों में किसी प्रकार जीवन-यापन करने वाली अभावग्रस्त नारियों में सुन्दरता की तलाश करने लगते हैं । उनका मन क्षोभ से भर उठता है, जब वे देखते हैं कि सीता और सावित्री के इस देश में नारियों की कितनी दुर्गति है ।वे ऐसी श्रमिक नारियों को अपनी कविता का विषय बनाते हैं और उनके सामाजिक योगदान को स्मरण कर उनके श्रम-श्लथ सौन्दर्य का मार्मिक चित्र अंकित करते हैं । उनकी कल्पना में पौराणिक काल से लेकर अब तक का सारा इतिहास तैरने लगता है और उनका हृदय नारी जाति के प्रति श्रद्धा से उमड़ पड़ता है -

चीकट गंदी निरी उटंगी
चिथड़ी धोती लिपटी है ।
हड्डी, पसली, चमड़ी, पिडुंली
दुनिया भर को दिखती है ।।
कौड़ी मोल नहीं रखती है,
आँखें भर कर रोती है ।
धरती माता की गोदी में,
सीता चुपके सोती है ।।(1)

इन पंक्तियों में नारी-सौन्दर्य के साथ करूणा का भाव स्वयमेव आ गया है ।

(स) मैत्री-भाव -

केदार की कल्पना का एक रूप वहाँ भी देखने को मिलता है, जहाँ वे अपने आत्मीय कवि मित्रों से मिलते हैं, या उनकी मधुर स्मृति में खो जाते है । उनके अभिन्न कवियों में डॉ0 रामविलास शर्मा, नागार्जुन और शमशेर बहादुर सिंह प्रमुख हैं । निराला जी के प्रति केदार के मन में अपार श्रद्धा है । नागार्जुन के बाँदा आने पर वे निराला जी के काव्य-पाठ का स्मरण करते हुए भाव-विभोर हो उठते हैं और कल्पना करते है कि मानो उस समय वे गन्धर्वो को भूल गये थे, तानसेन को भूल गये थे, सूर, कबीर, तुलसी को भूल गये थे, और यह बाँदा नगरी उनकी दृष्टि में काव्य-कला की नगरी बन गयी थी । उनकी कल्पनाओं का यह अंश द्रष्टव्य है -

और साल पर साल यहाँ मधुमास रहा था,
बम्बेश्वर के पत्थर भी बन गये हृदय थे,

---

१. जो शिलाएँ तोड़ते है; केदारनाथ अग्रवाल पृ० १५०-१५१

चूनरिया बन गयी हवा थी, गौने वाली,
यह धरती हो गयी बधू थी फूलों वाली,
और गगन का राजा सूरज दूल्हा बनकर
चूम रहा था प्रिय दुल्हन को । (१)

इसी प्रकार डॉ0 रामविलास शर्मा के बाँदा आगमन पर उन्होने जो काव्य-पंक्तियाँ लिखीं, उनमें उनके व्यक्तित्व की कल्पना देवदारू वृक्ष के रूप में करके उनके प्रति अपनी दृढ़ आस्था का परिचय दिया है -

न देखा था
मैंने
    देवदार
तुम
    आये
और दिख गया मुझे
दृढ़ स्तम्भ पेड़
मेरी आँखों में खड़ा
अटूट आस्था से । (२)

सामाजिक यथार्थ चित्रण -

केदार की कविताओं का सबसे महत्वपूर्ण और संख्या की दृष्टि से सबसे अधिक हिस्सा सामाजिक यथार्थ चित्रण से सम्बद्ध है । सामाजिक यथार्थ को वाणी देते समय कवि की दृष्टि मोटे-तौर पर यथार्थ-केन्द्रित ही रहती है और उसमें कल्पना का योग प्राय: नहीं के बराबर होता है, किन्तु कभी-कभी अत्यधिक भावुकता के क्षणों में वह सामाजिक यथार्थ की विभिन्न पर्तें उधाड़ने के लिए कल्पना का भी सहारा लेता है । ऐसे समय उसकी कल्पना मार्क्सवादी 'संज्ञान सिद्धान्त' से ही परिचालित होती है और वह अत्यन्त तर्कसंगत कल्पनाएँ करता है ।उदाहरण के लिए 'बालक' शीर्षक कविता में केदार कल्पना करते है कि छोटे से छोटा प्रयास भी बहुत शक्तिशाली होता है, वह दूर-दूर तक अपना व्यापक प्रभाव छोड़ सकता है, उसमें भी सामाजिक व्यवस्था में बदलाव लाने की सामर्थ्य होती है, ठीक उसी प्रकार जिस तरह बालक द्वारा फेंके गये कंकड़ से पूरे तालाब के पानी में कम्पन्न पैदा हो जाता है -

ताल को कँपा दिया
कंकड़ से बालक ने

---

१. फूल नही रंग बोलते है, . केदारनाथ अग्रवाल पृ० ८७
२. आग का आईना, केदारनाथ अग्रवाल पृ० ५३

ताल को कँपा दिया,

ताल को - नहीं

अनन्तकाल को कँपा दिया ।(1)

कवि यहाॅं तक कल्पना करता है कि कंकड़ पूरे तालाब में ही नही, वरन् अनन्तकाल में दूर-दूर तक कम्पन पैदा कर देने की क्षमता रखता है ।

श्रमजीवी एवं मेहनतकश किसान के हाथ केदार को कमल जैसे दिखते है, लाल कमल जैसे, जो सवेरा होते ही काम में लग जाते हैं । वे कल्पना करते हैं जिस तरह प्रातःकाल कमल खिलकर अपने आस-पास के सम्पूर्ण वातावरण को सुरभि से भर देता है और सर्वत्र सुन्दरता और प्रसन्नता का संचार करता है, उसी प्रकार श्रमजीवी सुबह होते ही सृजन के कार्य में जुट जाता है। उसका श्रम समाज को एक नयी दीप्ति से भर देता है । वह सामाजिक विकास को सद्‌गति देता है और दुनिया को बेहतर बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है । उसका श्रम वातावरण को इतना रूचिकर बना देता है कि सर्वत्र मनुष्यता की सुरभि फैलने लगती है -

छोटे हाथ

सवेरा होते

लाल कमल से खिल उठते हैं ।

करनी करने को उत्सुक हो,

धूप हवा से हिला उठते हैं ।(2)

इस सामाजिक व्यवस्था में केदार को सुविधा-भोगी वर्ग गिद्ध की भाँति तथा आर्थिक दृष्टि से विपन्न वर्ग देश के सच्चे पुत्र दिखायी पड़ते हैं । वे कल्पना करते है कि वे सुविधा भोगी वर्ग और अधिक पाने के लालसा में पागल होकर गिद्ध की तरह झपट्टा मारते हैं और दूसरों के अधिकारों को नोंच लेते हैं, जबकि समाज का एक बड़ा भाग जीवन की मूलभूत जरूरतों के लिए तरस कर रह जाता है -

सैकड़ों हजार गिद्ध
व्योम के प्रसार में उधार क्षुब्ध क्रुद्ध पंख
मांस की पुकार मार
अंधकार का आर-पार नोंचते ।
देश के करोड़ पुत्र
छोड़ सिंधु, गंग ब्रह्म, विन्ध्य के महाप्रदेश
क्षीण, वृत्तिहीन, त्रस्त
खा पछाड़, यत्र-तत्र पेट को मरोड़ते ।।(३)

---

१. फूल नही रंग बोलते है, केदारनाथ अग्रवाल पृ० ४१

२. गुलमेंहदी, केदारनाथ अग्रवाल पृ० १३३

३. फूल नही रंग बोलते है, केदारनाथ अग्रवाल पृ० ७०

समाज में फैली विषमता और विद्रूपता के लिए कवि पूँजीवादी व्यवस्था को जिम्मेदार मानता है । पूँजीवादी व्यवस्था में सर्वहारा का शोषण करने के लिए जिन रास्तों को मुख्यत:अपनाया जाता है, उनमें धर्म और ईश्वर-सम्बन्धी मान्यताएँ सबसे पहले आती है । पूंजीपतियों के हमशक्ल पण्डे और पुरोहित लोगो को अन्धी धर्मनिष्ठा का दोहन करते हैं और अपनी तिजोरियां भरते हैं। धर्मिक-पाखण्ड का आलम यह है कि बड़े-बड़े मंदिरो में पत्थरो की मूर्तियाँ तो सोने चांदी से लदी दिखाई देती हैं और उन मूर्तियों के प्रति अन्ध श्रद्वा रखने वाले तथाकथित भक्तिजन रूखी-सूखी रोटी के टुकडों के लिए छटपटाते फिरते हैं । यह अन्तर्विरोध कवि को अन्दर तक आहत कर देता है और वह जुगुप्सा से विकल होकर इस धार्मिक-अनाचार पर एक सार्थक और मार्मिक कल्पना में डूब जाता है । यह कवि की कल्पना का ही प्रभाव है कि एक गर्भवतीस्त्री अपने कोख से पाषाण को जन्म देने की कामना करती है -

वैभव की विशाल छत्रछाया में,
स्वर्ण -सिहांसन पर,
रक्खी -देख मंदिरों में पत्थरों की मूर्तियाँ
क्षुब्ध हो गर्भवती
ईश्वर से मांगती है वरदान,
केवल पाषाण हों,
कोख की मेरी भी संतान ।(१)

राजनीति भी केदार की कविता का एक प्रमुख विषय है । वे भारतीय लोकतंत्र से संतुष्ट नहीं है क्योंकि उन्हें लगता है कि यहाँ अधिकांश राजनेता सेवाभाव से नहीं बल्कि सत्ता-लोलुपता के कारण राजनीति में प्रवेश करते है । चुनाव के समय वे जनता को झूठे आशवासन देकर उन्हें अपने वाग्जाल में फंसाते हैं और फिर जब चुनाव जीत जाते है, तो जनता की कोई परवाह नहीं करते, चुनाव इनके लिए व्यक्तिगत सुख-साधन का विषय है और उसे पाने के लिए ये तथाकथित नेता एड़ी-चोटी का जोर लगा देते है । कवि इन छद्म राजनेताओं पर तीखा व्यंग्य करने के लिए उन्हें बरातियों के रूप में कल्पित करता है, जो दिल्ली की गद्दी पाने के लिए, और राजसुख भोगने के लए तरह-तरह का स्वांग करते हैं और गा-बजाकर राजतंत्र पर हावी हो जाते है -

नाचते-गाते
उड़ आये आँधी में,
राजमार्ग पर,
लोकतंत्र के बराती

---

१. गुलमेंहदी, केदारनाथ अग्रवाल पृ० २६

दिल्ली की दुल्हन

ब्याहने के लिए -

राजतंत्र पर हावी होने के लिए -

तरह-तरह के स्वरूप भरे ।(1)

नागार्जुन के काव्य में कल्पना

(अ) प्रकृति-चित्रण -

नागार्जुन के कवि व्यक्तितत्व पर संस्कृत-साहित्य के गहन अध्ययन का व्यापक प्रभाव परिलक्षित होता है । उनकी आरम्भिक रचनाओं में संस्कृत के लब्ध-प्रतिष्ठ कवियों का प्रभाव और छायावादी कविता का संस्कार स्पष्ट दिखायी देता है । प्रकृतिं, मनुष्य-जीवन के बाद उनकी कविता का प्रमुख विषय है । प्राकृतिक दृश्यों का अवलोकन करते समय कवि इतना आत्मविभोर हो जाता है कि अनायास ही वह कल्पना-लोक में विचरण करने लगता है । प्रकृति के प्राय: सभी रूपों ने कवि को अपनी ओर आकृष्ट किया है । विशेष रूप से ऋतु-चित्रण करने में कवि का मन अधिक रमा है । ऋतुओं में उन्हें सबसे अधिक प्रिय पावस ऋतु है । वे बादल के भिन्न-भिन्न रूपों को देखकर प्रसन्न तो होते ही हैं, पर इससे अधिक वे बादल के लोकोपकारी रूप से अभिभूत होकर उसके प्रति अपनी कृतज्ञता भी ज्ञापित करते हैं । पावस के प्रति अपना प्रणाम निवेदित करते हुए उन्होनें लिखा है -

लोचन अंजन, मानस रंजन

पावस, तुम्हें प्रणाम

तापतप्त वसुधा दुख भंजन

पावस, तुम्हें प्रणाम । (२)

नागार्जुन बहुत दिनों तक राहुल सांस्कृत्यायन के सम्पर्क में रहे और शान्ति की खोज में हिमालय प्रान्त में विचरण करते रहे । हिमालय की चोटियों पर पावस का दृश्य अपने समूचे सौन्दर्य के साथ अवतरित होता है ।श्वेत हिम शिखरों पर जब बादल यहाँ से वहाँ उन्मुक्त विचरण करते है और बीच-बीच में बूँदा-बाँदी करते है, तो ऐसा लगता है मानों सृष्टि का सारा सौन्दर्य पुंजीभूत हो गया हो । प्रकृति के इस अद्‌भुत सौन्दर्य से मुग्ध होकर कवि नाना प्रकार की कल्पनाओं में डूब जाता है ।

अमल धवलगिरि के शिखरों पर

बादल को घिरते देखा है ।

छोटे-छोटे मोती जैसे

---

१. मार प्यार की थापें, केदारनाथ अग्रवाल पृ० २३

१. नागार्जुन, प्रभाकर माचवे द्वारा संपादित पृ० ५१

उसके शीतल तुहिन कणों को,
मानसरोवर के उन स्वर्णिम
कमलों पर गिरते देखा है,
बादलों को घिरते देखा है ।
तुंग हिमालय के कन्धों पर
छोटी-बड़ी कई झीले है,
उनके श्यामल-नील सलिल में
समतल देशों से आ-आकर
पावस की ऊमस से आकुल
तिक्त-मधुर विसतन्तु खोजते
हंसों को तिरते देखा है,
बादल को घिरते देखा है ।(1)

बादल नागार्जुन को कई कारणों से बहुत प्रिय रहे हैं । वे इन्हें दया और करूणा का प्रतीक मानते है, इसलिए जब बादलों का वे जिक्र करते हैं, तब उनका हृदय श्रद्धा और प्रेम से भर जाता है । बादल उनके लिए कोई जड़ रूप नही रह जाते, बल्कि पूरी सजीवता के साथ क्रिया व्यापार में अनुरक्त दिखायी देते हैं । बादलों को लेकर नागार्जुन ने अनेक कल्पनाएं की है । आकाश में घिरते हुए बादल और उनके बीच चमकती हुयी बिजली का दृश्य कवि का ध्यान बार-बार आकृष्ट करता है । बादलों की छोटी-छोटी टुकड़ियों हवा के साथ जब आकाश में चारों तरफ मँडराती दिखायी देती हैं, तब कवि को ऐसा लगता है, मानों हिरन के छोटे-छोटे बच्चे आपस में कीडा कर रहे हों -

नभ में चौकड़ियाँ भरें भले
शिशु घन-कुरंग
खिलवाड़ देर तक करें भले
शिशु घन-कुरंग
लो आपस में गुंथ गये खूब
शिशु धन-कुरंग
लो, घटा जाल में गए डूब
शिशु घन-कुरंग ।(२)

---

१. नागार्जुन : चुनी हुई रचनाएं, शोभाकान्त मिश्र पृ० १९-२०
२. नागार्जुन : चुनी हुई रचनाएं -2 शोभाकान्त मिश्र पृ० १५७

ऋतुओं में पावस के बाद ऋतुपति बसंत ने नागार्जुन की कविताओं में महत्वपूर्ण स्थान पाया हैं । वसन्त के आममन पर प्रकृति अपनी तरूणाई में आ जाती है । जगह-जगह वनस्पतियाँ फूल-पत्तियों से लद जाती हैं । एक उमंग और उल्लास का वातावरण सर्वत्र छा जाता है । लेकिन जब तक कोयल न कूके, तब तक वसंत के आगमन की विधिवत् घोषणा नही हो पाती है । सारी प्रकृति को प्रसन्न देखकर कोयल भी जब अपना उल्लास व्यक्त करने के लिए कूकती है, तो कवि का हृदय आनन्द से भर जाता है-

टूसों को उमगे कई दिन हो गए
टेसू को सुलगे कई दिन हो गए
अलसी को फूले कई दिन हो गए
बौरों को महके कई दिन हो गए
झपटी पछिया
दरक गए केलों के पास
लेते ही करवट
तेजाब की फुहारें
छिड़कने लगा सूरज
मुँह बा दिया कलियों ने
देखती रह गई निठुराई के खेल
चुपचाप कलमुँही
जोरो से कूक पड़ी
अब के इस मौसम में
कोयल आज कूकी है
पहली बार (१)

प्रकृति-सौन्दर्य का चित्रण कल्पना के बिना अधूरा-सा लगता है । इसलिए जब कभी कवि प्रकृति-सौन्दर्य का चित्र खींचता है, तब स्वभावत: उसका मन कल्पना-लोक में विचार करने लगता है । शिशिर जब अपने आक्रामक रूप में प्रवेश करती है, तब वह कवि को हजार बाहों वाली विषकन्या के समान प्रतीत होती है और स्पर्श ऐसा लगता है मानों प्रलय होने वाली हो । हिमानी का यह श्रृंगार नागार्जुन के शब्दों में इस तरह चित्रित हुआ है -

हजार बाहों वाली शिशिर-विष-कन्या
उतरी लेकर साँसो में प्रलय की वन्या
हिमदग्ध होंठो के प्राणशोषी चुम्बन

---

१. नागार्जुन : चुनी हुई रचनाएं - 2 शोभाकान्त मिश्र पृ० १४९-५०

तन-मन पर लेप गए ज्वालामय चन्दन
एक-एक शिरा में सौ-सौ सुइयों की चुभन
अद्भुत यह भुजपाश अद्भुत आलिंगन
तृण-तरू झुलस गए, पड़ा है ओसमय तुषार
किया है महाकाल ने हिमानी का श्रंगार । (१)

प्रकृति कवि को अपने हर रूप में सुन्दर लगती है । शरद ऋतु समशीतोष्ण होने के कारण सबके लिए सुखकर होती है । कवि शरद ऋतु के आने पर प्रकृति के सौन्दर्य से तो आह्लादित होता ही है, पर उसके सुख का एक बड़ा कारण धरती की वह समृद्धि है जिसे पाने के लिए किसान-मजदूर कड़ी मेहनत करता है । पकी हुयी खेती का दृश्य कवि को असीम आनन्द प्रदान करता है । साथ ही शरद-पूर्णिमा की नक्षत्रों से सजी हुयी रात्रि कवि का मन मोह लेती है -

पके धान की कनक मंजरी एक नही सौ बनी झालरें
उड़द-मूँग की फलियों वाली बेलों की बिछ गयी चादरें
चौकस खेतिहारों ने पाए ऋद्धि-सिद्धि के आकुल चुम्बन
शरद पूर्णिमा धन्य हुयी जन-लक्ष्मी का करके अभिनन्दन
कुमुद मुदित है कहीं-कहीं मुकुलित है कमलों के कानन
श्वेत घनों से प्रतिबिम्बित है श्याम सलिल झीलों के आनन
लाख-लाख नक्षत्र टँक गए नीली चादर बनी अनूठी
शरद जुन्हाई के आगे दुनियाँ की सुषमा लगती झूठी ।। (२)

रात में चमकते हुए तारे कवि को सर्जनात्मक प्रेरणा देते है । जब वह शरद ऋतु के स्वच्छ आसमान में झिलमिलाते हुए नक्षत्र गणों को देखता है, तो उसे ऐसा महसूस होता है मानों कोई विराट सत्ता सृष्टि रचना की कल्पना में डूबी हुयी सुशोभित हो रही है । कवि अपनी कल्पना को इन शब्दों में बाँधकर प्रस्तुत करता है -

सो गया तो स्वप्न में तारे मुझसे कहने लगे
जागो, नयन खोलो, अजी दिन में जगे तो क्या जगे ?
अचकचा कर उठा, देखा गगन में नक्षत्रगण
श्रान्त श्यामल हृदय पर ज्यों झलमलाते स्वेद कण
ओढ़ मणि मुक्ता जड़ित नवनीत चीनांशुक निशा
मानों विराट विधान की परिकल्पना में लीनं था । (३)

---

१. नागार्जुन चुनी हुई रचनाएं - 2 शोभाकान्त मिश्र पृ० १६६
२. नागार्जुन : रचनावली पृ० २२०
३. तालाब की मछलियाँ, नागार्जुन पृ० २५

नागार्जुन मूलत: जीवन और जगत के कवि है । प्रकृति उनके लिए जीवन से हार कर थके हुए मन को शान्ति देने का विश्राम स्थल नहीं है । प्रकृति जीवन के सहज क्रम में उनकी कविता का आधार बनती है और इसीलिए प्रकृति के प्राय: हर दृश्य में जीवन की पुकार सुनायी देती है । गेहूँ की पकी फसलें देखकर कवि को ऐसा लगने लगता है मानों सोने का समुद्र लहलहा रहा हो । गेहूँ मनुष्य की भूख मिंटाने का अत्यावश्यक साधन है, इसलिए कवि प्रकृति सौन्दर्य का अंकन करते समय उसके पीछे छिपे जीवन यथार्थ को विस्मृत नहीं कर पाता । कवि की कल्पना यर्थाथ को विकृत करने के लिए नहीं, बल्कि उसकी प्रभविष्णुता बढ़ाने का कार्य करती है । गेहूँ की पकी फसलें देखकर कवि आनन्दमग्न होता है और उस आनन्द को कल्पना के सहारे इस रूप में चित्रित करता है -

सोनिया समन्दर
सामने
लहराता है
जहाँ तक नजर जाती है,
सोनिया समन्दर !
बिछा है मैदान में
सोना ही सोना
सोना ही सोना
सोना ही सोना
गेहूँ की पकी फसलें तैयार है - (१)

कवि को प्रकृति अपनी ओर खीचती है, किन्तु इतना दूर नही ले जा पाती कि वह यर्थाथ से पूरी तरह कट जायें । जाड़े की धूप भला किसे प्रिय नही लगती । केदार को यह धूप 'उजले रोंयेदार मुलायम खरगोश' की तरह जीवन जीने का संदेश देती है, तो कभी मानो वह उनकी प्रिया का प्यारा दुपट्टा हो जाती है, जो छत पर पड़ा हो । नागार्जुन को धूप पल भर के लिए सुहावनी लगती है, पर जीवन का कड़ुवा यर्थाथ उन्हें बहुत देर तक उस सुहावनेपन की कोमल कल्पनाएं नहीं करने देता -

पूस मास की धूप सुहावन
घिसे हुए पीतल-सी पांडुर

---

१. नागार्जुन : चुनी हुई रचनाएं - 2 शोभाकान्त मिश्र पृ० २७८

पूस मास की धूप सुहावन
स्तनपायी नीरोग गौर छवि
शिशु के गालों जैसी मनहर
पूस मास की धूप सुहावन
फटी दरी पर बैठा है चिर-रोगी बेटा
....
....
सब कुछ है कोयला नही है
कैसे काम चलेगा बोलो
चावल नहीं सिझा सकती है
रोटी नही सेंक सकती है
भाजी नहीं पका सकती है
पूस मास की धूप सुहावन । (१)

(ब) नारी-सौन्दर्य :-

नागार्जुन स्वभावत: फक्कड़ और घुमक्कड़ स्वभाव के है । विवाह के कुछ ही दिनों बाद वे अपना घर-परिवार छोड़कर सैर-सपाटे पर निकल गये । देश-विदेश की यात्राएँ करते रहे। बौद्ध-धर्म में दीक्षा ग्रहण कर ली और सन्यस्त-जीवन बिताने लगे, पर उनके हृदय में दबी पड़ी कोमल भावनाएं समाप्त नही हुयीं । परदेश में भी उन्हें अपनी धर्म पत्नी और परिवेश की याद बार-बार आती रही । अपने एकाकी जीवन से ऊबकर उनका मन अपने घर और उसके आस-पास के आंचलिक प्रेम में मग्न होता रहा । 'सिन्दूर तिलकित भाल' कविता में वे अपने घर से हजारो मील दूर बैठे गृह जनपद की मधुर कल्पना में डूबे दिखायी देते हैं -

घोर निर्जन में परिस्थिति ने दिया है डाल ।
याद आता है तुम्हारा सिन्दूर तिलकित भाल ।
....
याद आते है स्वजन
जिनकी स्नेह से भीगी अमृतमय आँख
स्मृति विहंगम की कभी थकने न देगी पाँख
याद आता मुझे अपना वह 'तरउनी' ग्राम
याद आती लीचियाँ, वे आम

१. नागार्जुन : चुनी हुई रचनाएं - 2 शोभाकान्त मिश्र पृ० ८५-८६

याद आते मुझे मिथिला के रुचिर भू-भाग
याद आते कमल, कुमुदिनी और तालमखाना
याद आते शस्य-श्यामल जनपदों के
रूप-गुण-अनुसार ही रक्खें गये वे नाम
याद आते वेणुवन की नीलिमा के निलय अति अभिराम । (१)

कवि की सहानुभूति केवल अपने घर-परिवार तक ही सीमित नही है, वह निम्न मध्यवर्गीय समाज में असुविधाओं के बीच जीते हुए लोगों के प्रति भी पूरी आत्मीयता के साथ जुड़ता है । 'जया' ऐसी ही कविता है, जिसमें कवि एक अबोध चार वर्षीय बहरी, गूँगी निम्न मध्यम वर्गीय बालिका का चित्र अंकित करता है और अपनी उर्वर कल्पना से उसके भावी जीवन-यापन का मार्ग खोजने का प्रयास करता है -

यह बोल नहीं सकती
लेकिन उसकी भी अपनी भाषा है
काफी है सूझ-समझ उसमें, सुख है, दुख है, अभिलाषा है
माँ-बाप गरीब, न कर सकते कुछ प्रतीकार बहरापन का
सोचा होगा, पकड़ा देंगे, कोई पथ जीवन-यापन का
बन सकती है वह चित्रकार
ले सकती है वह नाँच सीख
जिससे न किसी पर पड़े भार
जिससे न मांगनी पड़े भीख
लेकिन यह तो बस सपना है । (२)

(स) मैत्री-भाव :-

नागार्जुन की कल्पना का उत्कर्ष उन कविताओं में विशेष रूप से दिखायी देता है जिनमें वे अपने इष्ट-मित्रों के प्रति स्नेहासिक्त होकर अपनी भावनाओं को व्यक्त करते है । केदार, नागार्जुन के समान-धर्मा कवि-मित्रों में से एक है । वे कई बार उनसे मिलने बाँदा आ चुके है । वे जब-जब केदार को नजदीक से देखते है और उनके व्यक्तितत्त का आकलन करते है, तब-तब उन्हें ऐसा लगता है कि मानों केदार के समग्र व्यक्तितत्व को सही अर्थो में लोग पहचान नहीं सके है । केदार के व्यक्तितत्व से प्रभावित होकर नागार्जुन उदात्त कल्पनायें करते है और उनके व्यक्तितत्व का एक सुन्दर शब्दांकन प्रस्तुत करते है -

प्यारे भाई, मैने तुमको पहचाना है

---

१. नागार्जुन, डॉ० प्रभाकर माचवे पृ० २९-३०
१. नागार्जुन : चुनी हुई रचनाएं - 2 शोभाकान्त मिश्र पृ० २६-२७

समझा-बूझा है, जाना है ....
केन-कूल की काली मिट्टी, वह भी तुम हो ।
कालिंजर का चौड़ा सीना, वह भी तुम हो ।
ग्रामवधू की दबी हुई कजरारी, वह भी तुम हो ।
कुपित कृषक की टेढ़ी भौहे, वह भी तुम हो
खड़ी-सुनहली फसलों की छवि-छटा निराली, वह भी तुम हो ।
लाठी लेकर कालरात्रि में करता जो उनकी रखवाली,
वह भी तुम हो । (१)

(द) सामाजिक यर्थाथ-चित्रण :-

नागार्जुन मूलतः सामाजिक यर्थाथवादी कवि है ऐसा कवि अपना सम्पूर्ण ध्यान सामाजिक यर्थाथ चित्रण में केन्द्रित रखता है । इसलिए कल्पना की गुंजाइश बहुत कम होती है, तो भी कविता को प्रभावशाली बनाने के लिए आवश्यकतानुसार कवि यत्र-तत्र कल्पना का सहारा लेता है । समाज वर्ग-विभक्त है । गरीब और अमीर के बीच गहरी खाई है । मुट्ठी भर धनिक, बहुसंख्यक गरीबों का शोषण करते हैं । कवि का हृदय इस कटु यर्थाथ से चीत्कार कर उठता है और कल्पना का पुट देकर वह अपने आक्रोश को इन शब्दों में व्यक्त करता है -

बताऊँ ?
कैसे लगते है -
दरिद्र देश के धनिक ?
कोढ़ी कुढ़ब तन पर मणिमय आभूषण । (२)

एक ओर पूँजीपतियों के प्रति कवि के मन में घृणा और आक्रोश है तो दूसरी ओर मजदूर वर्ग के प्रति अपार स्नेह । जब वह किसी मजदूर को श्रम करते हुये देखता है, तो उसके मन में उदात्त कल्पनायें जन्म लेती है । एक रिक्शा-चालक को देखकर कवि का ध्यान उसके खुरदरे पैरों पर केन्द्रित हो जाता है और वह उन पैरों की प्रशंसा में त्रिविक्रम वामन को भी पीछे छोड़ देता है -

धँस गए
कुसुम-कोमल मन में
गुट्ठल घट्ठों वाले कुलिश-कठोर पैर
दे रहे थे गति
रबड़-विहीन ठूँठ पैडलों को

---

१. नागार्जुन : चुनी हुई रचनाएं - 2 शोभाकान्त मिश्र पृ० ११७-१८
२. हजार-हजार बाहों वाली नागार्जुन, पृ० ५४

चला रहे थे
एक नही, दो नही, तीन-तीन चक्र
कर रहें थे मात त्रिविक्रम वामन के पुराने पैरों को
नाप रहें थे धरती का अनहद-फासला
घण्टों के हिसाब से ढोय जा रहे थे । (१)

कवि की दृष्टि में इस सामाजिक वर्ग-विषमता को केवल साम्यवादी तरीके से ही समाप्त किया जा सकता है । साम्यवाद आना यद्यपि इतना आसान नहीं है, तो भी कवि साम्यवादी समाज के स्वरूप की भावी कल्पना करके पल भर के लिए संतोष की साँस लेने से नही चूकता । वह सोचता है कि जब साम्यवाद आयेगा तब -

सेठ और जमीदारों को नहीं मिलेगा एक छदाम,
खेत-खान-दूकान-मिलें सरकारी करेगी दखल तमाम,
खेत-मजदूरों और किसानों में जमीन बट जायेगी,
नही किसी कमकर के सिर पर बेकारी मँडरायेगी, (२)

प्राचीन परम्पराओं और रूढ़ियों से पीछा छुड़ाकर ही प्रगति की जा सकती है । कवि कल्पना करता है कि साम्यवाद एक-न-एक दिन सड़ी-गली मान्यताओं को ध्वस्त करके अवश्य आयेगा और तब वह मनुष्य मात्र के लिये कल्याण का दिन होगा । अपनी इस सोच को कवि एक अन्योक्ति के माध्यम से चित्रित करता है, और कल्पना करता है कि जैसे पतझड़ आने पर पीपल के पत्ते एक-एक करके स्वत: गिर जाते हैं और उनके स्थान पर नयी कोंपले निकल आती हैं, ठीक उसी तरह प्राचीन दकियानूसी विचारों का धीरे-धीरे क्षरण हो जायेगा और उनके स्थान पर नयी साम्यवादी मान्यतायें स्थापित हो जायेंगी । साम्यवाद की मधुर कल्पना पीपल के लाल-गुलाबी पत्तों के रूप में की गई है और उसके स्वागत में कवि अपने भाव इस प्रकार व्यक्त करता है -

लाल गुलाबी पत्ते कैसे
लह-लह-लह-लह-लहा रहें है
कैसी सुन्दर रात, चाँद की
किरनों मे ये नहा रहे है
छलक रहा इनमें जीवन रस
दौड़ रही है इन पर लाली
बुनने लगे आँख खुलते ही
ये स्वर्णिल सपनों की जाली (३)

१. नागार्जुन : चुनी हुई रचनाएं - 2 शोभाकान्त मिश्र पृ० १२१
२. वही, पृ० ६०
३. वही, पृ० १८-१९

कवि जानता है कि सामाजिक वर्ग-विषमता के लिए धार्मिक रूढ़ियों और पम्परायें एक बड़ी सीमा तक जिम्मेदार है । कवि लक्ष्मी की प्रतिमा को माध्यम बना कर समाज में व्याप्त विषमता का चित्र अंकित करता है और अपनी कल्पना से लक्ष्मी (धन) के असमान वितरण को प्रतीकात्मक अभिव्यक्ति देता है -

जय-जय हे महारानी
दूध को करो पानी
आपकी चितवन है प्रभु की खुमारी
महलों में उजाला
कुटियों पर पाला
कर रहा तिमिर प्रकाश की सवारी । (१)

नागार्जुन केवल भारत के ही नही, अपितु विश्व के उन तमाम राजनेताओं की प्रति श्रद्धा भाव रखते हैं जो मानवीय मूल्यों की स्थापना के लिए अपना सर्वस्व निछावर करने के लिए तैयार रहते हैं । अफ्रीका के साम्यवादी नेता 'लुमुम्बा' की हत्या से क्षुब्ध होकर वे उसके पीछे अग्रेजों के साम्राज्यवादी षड्यन्त्र का अनुमान करते हैं और राष्ट्रसंघ की संदिग्ध भूमिका को उजागार करते हैं -

अफ्रीका की काली मिट्टी लाल हो गई आज
गोरे बौनों की साजिश विकराल हो गई आज
....
मैं सुनता हूँ कीलों वाली बूटों की ठनकार
मैं सुनता हूँ जंग-लगी हथकड़ियों की झनकार
मैं सुनता हूँ राष्ट्र संघ की छलनामय चुमकार
मैं सुनता हूँ बन्धु तुम्हारा प्रतिरोध हुँकार । (२)

राजनीतिक स्थितियों का मूल्याकंन करते समय कभी-कभी राजनेताओं के छद्म चरित्र से कवि इतना आहत अनुभव करता है कि वह अपनी अभिव्यक्ति में कवि जनोचित मर्यादा का अतिक्रमण करता हुआ भी दिखायी देता है । कांग्रेस पार्टी और उसके नेताओं के प्रति नागार्जुन के मन में आरम्भ से ही तीव्र आक्रोश रहा है । यह आक्रोश श्रीमती इन्दिरा गाँधी के प्रति उस समय विकराल रूप धारण कर लेता है, जब वे 1975 में अपने राजनीतिक स्वार्थो के लिए सारे देश पर आपातकाल लागू कर देती है । उस सयम नागार्जुन ने इन्दिरा जी के चरित्र को उजागार करने के लिए जिन प्रतीकों और बिम्बों की कल्पना की है वे बहुत तीखे और उद्दण्ड प्रतीक हैं जैसे -

१. हजार-हजार बाहों वाली — नागार्जुन, — पृ० ५२
२. नागार्जुन, — डॉ० प्रभाकर माचवे, — पृ० ३७

देखो, यह बदरंग पहाड़ी गुफा-सरीखा
किस चुड़ैल का मुंह फैला है ।
देखो, ये जबड़े लगते कैसे डरावने
देखो, इस विकराल बदन के अन्दर कैसे
सारा ही कानूनी ढ़ाँचा खिंचा आ रहा
संविधान का पोथा, देखो,
पूरा का पूरा ही कैसे लील रही है ।
यह चुड़ैल है ।
देशी तानाशाही का पूर्णावतार है
महा-कुबेरों की रखैल है
यह चुड़ैल है । (१)

(३) त्रिलोचन के काव्य में कल्पना

(अ) प्रकृति-चित्रण :-

कविता का कथ्य कितना ही महत्वपूर्ण क्यों न हो, किन्तु जब तक उसकी अभिव्यक्ति में कल्पना का योग नहीं हो पाता, तब तक वह काव्य-सौन्दर्य की सृष्टि नहीं करता । त्रिलोचन जमीन के कवि हैं । उनके लिये विषय की प्राथमिक महत्ता है, कल्पना के हवाई महल खड़े करना उनका स्वभाव नहीं है, फिर भी विषय प्रतिपादन में किसी न किसी स्तर पर कल्पना का भी आवश्यकतानुसार उपयोग किया है । वे चाहे प्रकृति-सौन्दर्य का अंकन कर रहे हों या मानव-जीवन से सम्बन्धित वैयक्तिक और सामाजिक यर्थाथ का अंकन, हर जगह कल्पना के योग से वे अपनी प्रस्तुति को प्रभावपूर्ण बना देते हैं ।

त्रिलोचन के काव्य मे प्रकृति की भिन्न-भिन्न मुद्राओं के सुन्दर चित्र खींचे गये है । उन्होने खेत, नदी, धूप, हवा, बादल और बदलती हुयी ऋतुओं के सौन्दर्य-दर्शन से मुग्ध होकर श्रेष्ठ कविताओं का सृजन किया है । जब ऋतु संक्रमण होता है और एक ऋतु का स्थान दूसरी ऋतु लेने लगती है, तो सम्पूर्ण प्रकृति आनन्द से झूम उठती है । त्रिलोचन का सम्बन्धर गाँव और उसमें रहने वाले किसानों के साथ बहुत स्वाभाविक है । वे जानते हैं कि किसान के लिए सबसे प्रसन्नता का समय वह होता है, जब खेत में फसल पक कर तैयार हो जाती है । यह समय गाँव में चैती के नाम से जाना जाता है । कवि खेत की मेड़ पर खड़े होकर न केवल उसकी समृद्धि का चित्र खींचता है, बल्कि खेतों के मनोभाव को भी बड़ी सूक्ष्मता से पकड़ने का प्रयास करता है । इस प्रक्रिया में उसे कल्पना का सहारा लेना पड़ता है । पर उसकी कल्पना खेतों को महिमा मंडित करने

---

१. खिचड़ी विप्लव देखा हमने नागार्जुन, पृ० २८

के लिए नहीं, बल्कि समूचे परिदृश्य को व्यंजित करने के लिए उपयोग में लायी गयी है -

चैती अब पक कर तैयार है । खेतों के रंग बदल गये हैं ।
मटर उखड़ रही है । गेहूँ जौ खड़े हैं, हवा में झूम रहे हैं ।
हवा की लहरों पर धूप का पानी चढ़ जाता है । (१)

यहाँ पर चैती का पक कर तैयार होना, खेतों का रंग बदलना, मटर का उखड़ना, गेहूँ-जौ का हवा में झूमना और हवा की लहरों पर धूप का पानी चढ़ना सामान्य कथन नहीं है, इनके पीछे कवि का विस्तृत कल्पना-लोक है जिसमें खेत के साथ-साथ पूरे समाज के बदलते परिवेश को व्यंजित किया गया है ।

त्रिलोचन ने कल्पनाओं के महल नहीं खड़े किये । वे प्रकृति-सौन्दर्य से जब मुग्ध होते हैं, तो जैसी भावनाएं उनके अन्दर हिलोर मारती है, उनकी वे प्रायः व्यंजना करते हैं । उनकी कल्पना उसी व्यंजना के माध्यम से मूर्त्त रूप धारण करती है । ऋतुओं में मधुमास को ऋतुराज कहा गया है । मधुमास के आने पर प्रकृति के आँचल में जो-जो परिवर्तन होते हैं, उनका चित्रण तो बहुतों ने किया है किन्तु त्रिलोचन ने मधु-ऋतु के आने पर मन के उत्साह और उमंग को व्यंजित करने में अपना ध्यान अधिक केन्द्रित किया है । मधुमास का अभिनन्दन एक ओर वृक्षों पर आसन जमाए कोयल करती है, तो दूसरी ओर स्वयं कवि का हृदय गा उठता है और वह फिर से एक बार स्वयं को युवा अनुभव करने लगता है -

आज मधुमास आ रहा है फिर
और पिक गान गा रहा है फिर
तुमने भव को अभी कहाँ देखा,
भाव क्या-क्या दिखा रहा है फिर
और देखो उमंग आने दो
रंग यौवन दिखा रहा है फिर (२)

ऋतुओं में वर्षा का अपना विशिष्ट स्थान है । वैसे तो वर्षा-ऋतु जीवमात्र के लिए जीवन संदेश लेकर आती है, किन्तु किसानों के लिये उसका आकर्षण कुछ और ही है । त्रिलोचन किसानों की पीड़ा को गहराई से जानते हैं इसलिये वे आकाश में छाये हुए बादलों को देखकर पूरे उत्साह के साथ उसका अभिनन्दन करते हैं । बादलों के आकाश मे छाने मात्र से गर्मी का प्रभाव कम होने लगता है । वनस्पतियाँ पुनः गर्मी की तपन से मुक्त होकर हरी भरी हो जाती है । कवि बादलों के आगमन को इन शब्दों में चित्रित करता है -

---

१. चैती — त्रिलोचन शास्त्री, पृ० ४८
२. गुलाब और बुलबुल : त्रिलोचन शास्त्री, पृ० ७४

बादल घिर आए
ताप गया पुरवा लहराई
दल के दल घन लेकर आई
जगी वनस्पतियाँ मुरझाई
जलधर तिर आए । (१)

यह चित्रण ऊपर-ऊपर से वर्षागम का सौन्दर्य बिम्बित करता है, किन्तु कवि की कल्पना इस दृश्य में किसी और ही ऋतु-परिवर्तन का आभास देती है । ताप का जाना, पुरवाई का लहराना, दल-बल के साथ बादलों का घिरना और परिणामत: मुरझाई वनस्पतियों का जाग पड़ना कवि की प्रगतिशील विचारधारा को व्यंजित करते हैं । वह जानता है कि जब बादल आते हैं, तब प्रकृति की छोटी-से छोटी और उपेक्षित वस्तु भी महत्वपूर्ण हो उठती है । जो दूब गर्मियों में अपना रंग खो चुकी थी और ऐसा लगने लगा था कि अब इसके प्राण न बचेंगे, वही दूब बादलों के घिरते ही, पुरवा के चलते ही नये तेवर दिखाने लगी । उसका मन खिल उठा और वह उसी पवन को जिसने उसे अभी थोड़े दिन पहले झुलसने पर विवश कर दिया था, मुँह बिराने लगती है । पवन इस ऋतु-परिवर्तन से पानी-पानी हो जाता है -

दूब, गर्मियों में देखा, भूरी-भूरी थी
लगा कि बस दो चार दिनों के लिए और है,
पर दो चार दिनों की यह दूरी दूरी थी
ऐसी जो न समाप्त हुई, चल रहा है दौर है
अभी भोग का उसके मुझको जान यों पड़ा ।
वर्षा आई । घटा घिरी । पूर्वा लहराई ।
कल्प हो गया उसी दूब का और सब झड़ा
पहले का संकोच, नई ही चाल दिखाई
सौ-सौ अँखुओं से करने लग गई इशारा
उसी पवन को जिस पर पानी पड़ा हुआ था । (२)

नदियों मे गंगा को जो गौरव प्राप्त है, वह अन्य किसी को नहीं । गंगा जब लहराती हुई आगे बढ़ती है, तो कवि के मन में नई-नई उमंगे तरलायित होने लगती हैं । गंगा के दोनों तट की हरीतिमा कवि का मन मोह लेती है । गंगा की तरंगों के साथ-साथ कवि का मन भी बहता चला जाता है-

उठती तरंग पर नव तरंग
जैसे उमंग पर नव उमंग

---

१. सबका अपना आकाश — त्रिलोचन शास्त्री, पृ० ९
२. उस जनपद का कवि हूँ : — त्रिलोचन शास्त्री, पृ० ५१

मन वह चलता है संग-संग
दृग में छा जाती है नूतन
तट - हरियाली
गंगा बहती है, लहराती
लहरों वाली । (१)

नदी ही की तरह धूप भी कवि को अपनी ओर आकृष्ट करती है । धूप के अनेक इन्द्र-ध
ानुषी चित्र कवि ने अपनी कल्पना के रंग में रंग कर अंकित किये हैं । धूप अपनी हर अवस्था में सुन्दर प्रतीत होती है । उसकी सुन्दरता केवल उसी तक सीमित नही रहती, बल्कि वह अपनी सौन्दर्य राशि सृष्टि के कण-कण में बिखेर कर उसे भी सुन्दर बना देती है । चर-अचर सभी पर धूप के सौन्दर्य का प्रभाव देखा जा सकता है । सायं दिन ढ़लते समय धूप का ताप कम हो जाता है और उसमें शीतलता आ जाती है । 'ढ़ल गया दिन धूप शीतल हो गयी' कविता में कवि ने धूप के व्यापक प्रभाव को इन शब्दों में चित्रित किया है -

आज निर्मल नील नभ के
चिर सुषमा सम्पर्क से
पृथ्वी सुनहरी स्वर्ण चम्पक
सुघर चर सस्वर सजीले
अचर नीरव से रंगीले । (२)

हवा अपने भिन्न-भिन्न रूपों में कवि के आकर्षण का केन्द्र बिन्दु बनती है । जीवन में वायु की अनिवार्यता स्वतः सिद्ध है । त्रिलोचन के यहाँ कई प्रकार की हवाएं चलती हैं । शिशिर की प्रखर वायु जब लहराते हुए चलती है, तो ऐसा प्रतीत होता है मानो वह ऋतु परिवर्तन का संदेश सुना रही हो । कवि की प्रगतिशील चेतना शिशिर की वायु में एक नई सर्जना-शक्ति का आभास पाती है । पुराने पत्तों का गिरना और प्रकृति में नई सुन्दरता आना इस वायु संचरण का उद्देश्य जान पड़ता है । कवि कल्पना करता है कि मानों बसन्त के आने की सूचना शिशिर की यह प्रखर वायु दे रही है -

शस्य लता तरू के चुन-चुन कर
पात पुराने गिरा गिरा कर
करती सुन्दर और मनोहर
सज कर आती
प्रिय बसन्त के
गीत सुनाती
प्रखर शिशिर की वायु लहराती । (३)

---

१. धरती त्रिलोचन शास्त्री, पृ० ३५
२. वही पृ० ८५
१. वही पृ० ९९

(य) नारी-सौन्दर्य :-

त्रिलोचन के काव्य में नारी के विश्वास और प्रेम को आदर के साथ स्मरण किया गया है । वे जब कभी प्रेयसी का स्मरण करते है, तब उनके प्रेम में दाम्पत्य-भाव की मिठास विद्यमान रहती है । अपनी व्यस्तताओं के कारण कवि को प्राय: घर से बाहर आना-जाना पड़ता है । परदेश में जब कवि बिल्कुल एकान्त में होता है, तब उसे प्रेयसी की याद आती है और स्मृति में ही कवि मिलन की कल्पनाओं में डूब जाता है -

मैं जब कभी अकेला बिल्कुल हो जाता हूँ
ध्यान तुम्हारा आता है लय हो जाता हूँ
आँखे मूँदे तुम्हे देखता हूँ :
तुम आती हो
पास खड़ी होकर
मुसकाती कहती हो
कहो कहाँ से आए हो परदेसी
कैसा है घर बार तुम्हारा
तुम्हें खबर है । (१)

प्रेयसी कवि को केवल स्वप्न-लोक के मधुर दृश्य ही नही दिखाती, बल्कि वह उसे कर्मक्षेत्र में आगे बढ़ने की प्रेरणा भी देती है । कवि उसके सौन्दर्य-निर्झर का दर्शन कर जीवन में नई स्फूर्ति का अनुभव करता है और एक नई आशा लेकर कर्मक्षेत्र में आगे बढ़ता है । इस प्रकार प्रेयसी का सौन्दर्य कवि को जीवन-जगत से दूर नही करता, बल्कि वह जीवन के प्रति और अधिक ईमानदार हो उठता है -

देखता हूँ नयन खोल
स्वप्नों से भी सुंदर
सुंदरता का निर्झर
वन जाता जीवन स्वर
स्वप्न छोड़ उड़ता हूँ
नूतन धृति बल ले कर
आशा विश्वास ले कर
प्राण सखा
मन में रहने वाले (२)

त्रिलोचन नारी-जीवन को मानव की काया में अपने से अभिन्न देखते है । वे उसे

१. धरती त्रिलोचन शास्त्री, पृ० ५२
२. वही पृ० ६९

पृथ्वी-पुत्री सीता के रूप में भी कल्पित करतें है । नारी अपने हर रूप में वंदनीय है । इस धरती पर उसकी उपस्थिति को कवि वरदान मानता है ।नारी के प्रति कवि जिन भावों की परिकल्पना करता है, उनमें कवि की कल्पना-शक्ति का प्रसार देखा जा सकता है -

देख रहा हूँ मैं तुम को मानव काया में
अपने से अभिन्न लेकिन विश्वास न होता
तुम भी पृथ्वी की पुत्री हो, स्वर्ग न होता
तुम को तो नभ की नीरव सुनील छाया में
इस दुनिया में, कहो कहाँ से प्रभा तुम्हारी
छा जाती वरदान रूप में, जग का जीवन
धन्य तुम्हारी आँखों से है, आत्म समर्पण
करता हूँ मैं उसी भाव से, जैसे नारी । (१)

(स) मैत्री-भाव :-

गहन भावुकता के क्षणों में कवि अधिक कल्पनाशील हो उठता है । अपने प्रिय जनों से दूर जब अकेलापन उसे व्याकुल कर देता है, तो अपने निकटस्थ लोंगो की याद आना स्वाभाविक है । कवि अपने मित्रों की स्मृति में इतना अधीर हो उठता है कि एकान्त में भी उसे आवाज देकर पुकारने लगता है, उसका हृदय अकेलेपन से विदीर्ण हो जाता है एकान्त का अन्धेरा छुरी की तरह उसके अन्तःस्तल को चीर देता है -

मित्र, मित्र, हे मित्र, कहाँ हो । मै अधीरता
से तुमको कब से पुकारता हूँ, बोलो तो
अपने मन का मौन इस हृदय में घोलो तो
अंधकार यह छुरी की तरह आज चीरता
है मेरे अंतस्तल को .... (२)

(द) सामाजिक यर्थाथ-चित्रण :-

त्रिलोचन मानवीय स्वतंत्रता और समानता पर विश्वास करते है । दुनिया से दुःख और द्वन्द्व मिटाने का एक यही उपाय है कि प्रत्येक देश का नागरिक स्वतंत्र रहकर अपनी अभिव्यक्ति करे । मनुष्यता का सम्यक् विकास तभी हो सकता है, जब सामाजिक जीवन से जाति, धर्म और वर्ग की दीवारें हटा दी जायं । एक वर्गहीन सामाजिक व्यवस्था में ही 'वसुधैव कुटुम्बकम्' का भाव जाग सकता है । मन की शुद्धता पर जोर देते हुए कवि पूरी मनुष्य जाति का आह्वान करता है कि -

---

१. अनकहनी भी कुछ कहनी है, त्रिलोचन शास्त्री, पृ० १२
२. उस जनपद का कवि हूँ : त्रिलोचन शास्त्री, पृ० १००

नई ऊषा आई है आज जगाने
हृदय - हृदय मे फूल नवीन लगाने
सब मनुष्य अपने है, नहीं बिराने
मन को शुद्ध बनाओं आगे आओ । (१)

कवि सामाजिक न्याय के प्रति आश्वस्त है । उसे भरोसा है कि एक-न-एक दिन समाज से पूँजीवादी मानसिकता निश्चय ही समाप्त होगी । पूँजीवाद के पोषक आज भले ही अपनी उपलब्धियों पर गर्व कर लें, किन्तु एक न एक दिन उनकी शक्ति की ऐंठ समाप्त होकर ही रहेगी। लूट-खसोट की सभ्यता शाश्वत नहीं है । कवि भविष्य की उसी सुनहरी कल्पना के सहारे पूँजीपतियों के अस्तित्व पर प्रश्नचिन्ह लगाता है :-

आज जो गाजते है
कल गाज लें
क्या बरसों वह गाजते जायेंगे ?
शक्ति की ऐंठ में
लूट के माल को
लूटक गर्व से साजते जायेंगे ।(२)

समाज में व्याप्त पूँजीवादी शोषण से कवि बहुत क्षुब्ध है । वह देखता है कि मुट्ठीभर पूँजीपति पहले से अधिक मोटे होते चले जा रहे हैं और अधिकाधिक संख्या में लोग सर्वहारा होते जा रहे हैं । जीवन के सारे व्यापार एकाधिकर के पंजे में सिमटते जा रहे हैं । यह क्रम तब तक नही रूक सकता, जब तक समाज में पूजी का साम्राज्य रहेगा । कवि कल्पना करता है कि एक न एक दिन पूँजीवाद का अवसान होगा और सर्वहारा नये जीवन का आरम्भ करेगा । कवि की कल्पना यथार्थ से बहुत दूर नही हैं, वह सोचता है कि -

पूँजीवाद जिस डाल पर बैठता है
वही डाल काटता है, सर्वनाश करता है स्वयमेव
अतुलित धन राशि पर
साँप के समान जब कुछ पूँजीपति
अपने विष बल का आतंक फैलाए हुए
शेष रह जायेंगे
तब जनता उनसे उस धन का उद्धार करके
जीवन के नए भवन
निर्माण करेगी । (३)

---

१. सबका अपना आकाश	त्रिलोचन शास्त्री,	पृ० ४५
२. ताप के ताए हुए दिन	त्रिलोचन शास्त्री,	पृ० २८
२. धरती :	त्रिलोचन शास्त्री,	पृ० ९७

कवि मूलतः यर्थाथ प्रेमी है । वह एक ऐसा यर्थाथ चाहता है, जिसमें शिव और सुन्दर दोनों का योग हो । सामाजिक जीवन पर जो अमानवीय विचारों की छाया पड़ रही है, कवि उसे हटाना चाहता है, ताकि समाज में सभी को समान रूप से सुख-सुविधायें सुलभ हो सकें, इसीलिए वह झूठ, छल, द्वेष और घृणा का तीव्र विरोध करता है । उसकी कामना है कि सभी सुखी हों-

.... मै यर्थाथ का
प्रेमी हूँ, शिव हो सुन्दर हो । पद पदार्थ का
संग चाहता हूँ जो जमा हुआ है गर्दा
सामाजिक जीवन समाज पर वह झड़ जाए
सहज प्रसन्न रूप सब का हो, ... (१)

त्रिलोचन ने कल्पना की उड़ान इतनी दूर तक नहीं भरी कि यर्थाथ से उसका कोई सम्बन्ध न रह जाए । जब वे पूँजीपतियों के छद्म व्यवहार से बहुत क्षुब्ध होते हैं, तब उनकी वाणी में व्यंग का पैनापन आ जाता है । ऐसे स्थलों में कल्पना का हल्का स्पर्श लेकर वे यर्थाथ को प्रभावपूर्ण ढ़ग से व्यक्त कर देते हैं । लाला ओम प्रकाश की दान वीरता को कवि ने एक चुटीले व्यंग के माध्यम से इन शब्दों में अपना लक्ष्य बनाया है -

लाला ओम प्रकाश कर्ण जैसे दानी हैं ।
दान करेंगे तभी घूँट पानी का उन के
गले उतर सकता है । ब्रम्हा ने भी चुन के
उन्हें संपदा सौंपी है । कितने ज्ञानी हैं,
    दोनों हाथ लुटाते है । मन के मानी है
खिचड़ी बटवाते है, ... (२)

कवि ने एक ओर जहाँ पूँजीपतियों के प्रति घृणा और आक्रोश का भाव व्यक्त किया है, वही दूसरी ओर धनहीन और साधनहीन लोगों के प्रति उसके मन में गहरी सहानुभूति भी है । वह स्वयं जीवन की सामान्य सुख-सुविधाओं से वंचित व्यक्ति है, इसलिए उसके मन में इस वर्ग के प्रति सहानुभूति होना स्वाभाविक भी है । कई बार ऐसा भी होता है कि धनभाव के कारण वह अपने घर-परिवार की छोटी-छोटी जरूरतें भी पूरी नहीं कर पाते । अपने दुःख को सामान्यीकृत करते हुए कवि यर्थाथ को कल्पना से अनुरंजित कर दुःख में भी संतोष खोजने का प्रयास करता है -

ऐसे भी मनुष्य है जन्मे
दुनिया में, जिन को दुर्लभ है कानी कौड़ी ।

---

१. उस जनपद का कवि हूँ : त्रिलोचन शास्त्री, पृ० ८६
२. दिगंत, त्रिलोचन शास्त्री, पृ० ४९

प्यार उन्हें भी मिलता है, सुख का कोलाहाल
उन्हें नहीं सुन पड़ता है, विपत्ति ही दौड़ी
दौड़ी उन्हे भेंटती है, करती है विह्वल । (१)

सामाजिक यथार्थ का चित्रण करते-करते कवि कई बार दार्शनिक हो उठता है ।वह देखता है कि गहन विपत्तियो में भी जीवन का क्रम अनवरत रूप से चलता रहता है । मनुष्य का जीवन एक लम्बी यात्रा है । जिस प्रकार वर्षा होने पर यात्री पल भर के लिए कहीं छाया में रूक जाता है और पुनः धूप निकलने पर अपने गंतव्य की ओर बढ़ जाता है, उसी प्रकार मनुष्य-जीवन में यात्रा क्रम निरन्तर चलता रहता है । महत्वपूर्ण बात यह है कि अपने लक्ष्य के प्रति समर्पित होकर, जो यात्री एकनिष्ठ भाव से आगे बढ़ता है, अन्ततः सफलता उसी के कदम चूमती है -

वर्षा हुई घनी छाया में खड़े हो गये,
घाम हुआ तो छाँह ताक कर पाँव बढ़ाए
सड़कों पर, धुन की चोटी पर चित्त चढ़ाए
चलते रहे, कहे कोई कुछ, नहीं खो गए(२)

मनुष्य की इच्छाएं अनन्त हैं । जब कभी कोई बात मन के अनुकूल नहीं होती, तो मनुष्य उदास हो जाता है । कई बार मन उन बातो की भी इच्छा करता है, जो पूरी नहीं हो सकती, तो भी सम्भवनाओं और आशाओं की डोर पकड़कर मनुष्य उनके पूरा होने की प्रतीक्षा करता रहता है, पर इस प्रतीक्षा से उसे अन्ततः हताशा ही मिलती है। जीवन के इस कटु यथार्थ को कवि ने अपनी कल्पन से रंग इन शब्दों में उद्घाटित किया है-

इन्द्रधनुष कितने
इच्छाओ के
बन बन कर मिटते है,
सांवली घटाओं के,
कीचड़ ही पैरों के
आसपास होता है (3)

त्रिलोचन प्रगति के पक्षधर हैं इसलिए यथार्थ का साथ वे कभी नही छोड़ते । कल्पना का उपयोग उन्होने यथार्थ को सुरूचिपूर्ण बनाने सके लिए अधिक किया है । समाज से अन्याय और अपनाचार को मिटाने के लिए वे बार-बार सर्वहारा को आगे बढ़ने का संदेश देते है । सांकेतिक रूप से वे उन घावों की भी चर्चा करते है, जो पूंजीवादी समाज ने सर्वहारा के हृदय पर किये

---

१. उस जनपद का कवि हूँ : त्रिलोचन शास्त्री, पृ० ४२
२. अनकहनी भी कुछ कहनी है त्रिलोचन शास्त्री, पृ० ८६
३. ताप के ताये हुए दिन त्रिलोचन शास्त्री, पृ० ४२

हैं । प्रभात की मधुर कल्पना करते हुये कवि सभी से एकजुट होकर आगे बढ़ने की बात करता है, और समय को व्यर्थ न जाने देने का संदेश देता है -

कदम बढ़ाओ
समय नही यह फिर आयेगा
तुम्हें प्रभात पुकार रहा है,
वे पहाड़ ललकार रहें हैं,
उठो, तुम्हारे घाव पुराने गरज-गरज धिक्कार रहें है (1)

देश की दुरवस्था के लिए दूषित राजनीति सबसे अधिक जिम्मेदार है । देश की स्वतंन्त्रता के बाद से लेकर अब तक जनहित की योजनाएं मात्र दिखावे के लिए बनी हैं, वस्तुत: हित साधन केवल राजनीतिज्ञो और उनसे जुड़े पूंजीपतियों का ही हुआ है । सरकार बातें तो बड़ी-बड़ी करती है, किन्तु कार्य ऐसा नहीं करती जिससे आम जनता को राहत मिले । जीवन की मूलभूत वस्तुओं पर भी सरकार का नियंन्त्रण रहता है ।जब कभी नीतियो के विरूद्व तेज आवाज उठती है, तब थोड़ी बहुत दिखावे के लिए ढ़ील दे दी जाती है । यही कारण है कि कवि राजनीति की जमकर आलोचना करता है और कल्पना का स्पर्श देकर राजनेताओं पर तीखे व्यंग्य करता है -

छोड़ा है सरकार ने गेहूँ का व्यापार
हुआ मण्डियों में शुरू व्यापारी त्योहार
व्यापारी त्योहार लगा है तुलने गल्ला
दर्शक डाँड़ी देख चकित है गल्ला गल्ला
फखरूद्दीन अली अहमद को यह थोड़ा है
बातों के घोड़ो को संसद में छोड़ा है ।(२)

कवि को पूर्ण विश्वास है कि सामाजिक न्याय की प्रतिष्ठा केवल लाल कान्ति के माध्यम से ही हो सकती है । उसने भिन्न-भिन्न देशों में साम्यवादी कान्ति का सुपरिणाम देखा है। आज यदि भारतीय समाज से विषमता को दूर करना है, तो लाल-कान्ति का ही सहारा लेना पड़ेगा ।चीन की लाल कान्ति का समाचार सुनकर कवि प्रसन्न होता है और कल्पना करता है कि निकट भविष्य में इस क्रान्ति का प्रभाव भारत में भी व्यापक रूप से पड़ेगा और वह दिन मनुष्यता की विजय का दिन होगा । चीन की लाल कान्ति की सफलता पर उसका अभिनन्दन करते हुए कवि ने इस प्रकार अपनी भावनाओं को व्यक्त किया है -

गिरि, नदी, नद पार करती आ रही ललकार बढ़ती
छिन्न भिन्न समाज में नव सभ्यता की मूर्ति गढ़ती
दूर आगामी जनों के लिए मंगल पाठ पढ़ती
स्तब्ध महलों में लगाती है मरण की छाप
द्वार पर आई विजय ।(३)

---

१. तुम्हें सौपता हूँ — त्रिलोचन शास्त्री, — पृ० १२७
२. वही — पृ० ९९
३. सबका अपना आकाश — त्रिलोचन शास्त्री, — पृ० ४८

तुलनात्मक निष्कर्ष

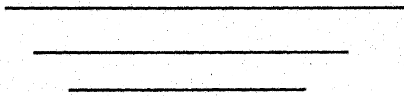
केदार, नागार्जुन और त्रिलोचन मूलतः यथार्थवादी कवि है । जीवन के समग्र यथार्थ को चित्रित करना उनकी कविता का उद्देश्य है । कल्पना का उपयोग इन कवियों ने कविता की प्रभविष्णुता बढ़ाने के लिए किया है; इसलिए इनकी कविताओं में वायवीय कल्पना के दर्शन नहीं होते। जो भी कल्पना की गयी है, वह किसी न किसी रूप में यथार्थ जगत से जुड़ी हुयी है । केदार की आरम्भिक कविताओं में रूमानी कल्पनाओं का प्राधान्य है । वे प्रकृति के सौन्दर्य का अंकन करते समय प्रायः रूमानी कल्पनाओं में खोये हुये दिखाई देते है । किन्तु प्रगतिशील विचारधारा से जुड़ने के बाद उनकी कल्पना का स्वरूप बदल जाता है और वे जीवन के प्रति कठोर और कान्तिकारी कल्पनायें करने लगते हैं । केदार की कल्पनाओं में जीवन के प्रति आस्था और विश्वास का भाव दृष्टिगोचर होता है । वे प्रकृति के जड़ पदार्थो में भी जीवन की कल्पना करते है और उससे जीने का संदेश प्राप्त करते हैं । केदार की परवर्ती कविताओं में कल्पना की उड़ान यथार्थ जगत से सम्बद्ध दिखायी देती है, जबकि उनकी आरम्भिक कविताओं में छायावादी प्रभाव के कारण ही कहीं-कहीं बहुत सूक्ष्म कल्पनायें भी की गयी हैं । जीवन-यथार्थ का चित्रण करते समय केदार जो कल्पनाये करते हैं, उनमें उनकी प्रगतिशील चेतना का दर्शन होता है । सर्वहारा का चित्र खींचते समय उनके प्रति सहानुभूति होने के कारण वे कोमल कल्पनायें करते है, पर पूँजीपतियों का ध्यान आते ही उनकी कल्पना का रूप अत्यन्त कठोर हो उठता है ।

नागार्जुन के कल्पना-संसार में रुमानियत का स्थान केदार से बहुत कम है । वे जिन कल्पनाओं को आधार बनाकर अपनी कविताओं का ताना-बाना बुनते हैं, वे प्रायः इसी जीवन-जगत से सम्बन्धित होती हैं । प्रकृति-सौन्दर्य का चित्र खींचते समय वे कुछ दूर तक कल्पना का सहारा लेते हैं, पर शीघ्र ही जीवन का कटु यथार्थ कल्पना के तार छिन्न-भिन्न कर देता है । नागार्जुन की कल्पनाओं में भी निराशा को कोई स्थान नहीं मिला । समाज की वर्तमान अवस्था से क्षुब्ध होकर भी वे भावी जीवन की सुन्दर और स्वस्थ कल्पना ही करते है । राजनीतिक छल छद्म का चित्रण करते समय उनकी कल्पना जिन उपमानों को खोजती है, वे अत्यन्त कठोर और विकराल होते हैं ।

त्रिलोचन मूलतः लोक-जीवन के कवि हैं । वे कविता में कल्पना के हवाई महल नहीं खड़े करते, पर जहाँ कविता को प्रभावपूर्ण बनाने- के लिए कल्पना का प्रयोग करते हैं, वहाँ उनकी दृष्टि में सबसे पहले लोक-जीवन ही आता है । उनकी कल्पना लोक-संस्कृति को जीवन्त रूप में प्रस्तुत करती है । उनकी हर कल्पना में जीवन के प्रति एक नया उत्साह प्रतिबिम्बित होता है । उनकी दृष्टि ग्रामीण जीवन के विविध रूपों को बहुत बारीकी के साथ पकड़ती है और कल्पना का हल्का स्पर्श देकर उसे काव्य के रूप मे ढ़ाल देती है । त्रिलोचन भी केदार और नागार्जुन की तरह

प्रगतिशील विचारधारा के पोषक कवि हैं, इसलिए उनकी कविताओं में भी सर्वहारा के प्रति जो कल्पनाएं की गयी हैं, वे तुलनात्मक रूप से कोमल हैं और पूँजीपतियों के लिए जो कल्पनाएँ की गई हैं उनमें अनादर का भाव विद्यमान है, पर वे अपने मन के क्षोभ को व्यक्त करने के लिए नागार्जुन की तरह भावावेश में आकर गाली-गलौज के स्तर पर नहीं उतरते । उनकी कल्पनाओं में काव्यात्मक शिष्टता का निर्वाह सर्वत्र दिखायी देता है ।

कल्पना आलोच्य कवियों का अभीष्ट नहीं है, इसलिए इनकी कविताओं में वैसी कल्पनाओं का सर्वथा अभाव है जिनका कोई आधार न हो । इनकी अधिकांश कल्पनाएं सुपरिचित वस्तुओं और क्षेत्रों से ही सम्बन्धित हैं । बल्कि यह कहना अधिक उचित प्रतीत होता है कि इन कवियों ने यथार्थ को कलात्मक ढंग से प्रस्तुत करने के लिए ही कल्पना का आवश्यकतानुसार उपयोग किया है ।



अध्याय-६

आलोच्य कवियों का बिम्ब सौन्दर्य

(१) बिम्ब का स्वरूप

(क) पाश्चात्य विचारक,

(ख) हिन्दी आलोचक

(2) बिम्ब के विविध प्रकार

(3) आलोच्य कवियों में बिम्ब-सौन्दर्य

(क) केदार का बिम्ब-विधान - दृश्य-बिम्ब, ध्वनि-बिम्ब, मिश्रित संवेदनाओं के बिम्ब, यथातथ्य वस्तु बिम्ब, गतिशील-बिम्ब, लोक सांस्कृतिक-बिम्ब, कल्पना-बिम्ब, भाव-बिम्ब, सान्द्र-बिम्ब, विवृत-बिम्ब आदि ।

(ख) नागार्जुन का बिम्ब-विधान - दृश्य-बिम्ब, मिश्रित संवेदनाओं के बिम्ब, यथातथ्य वस्तु-बिम्ब, गतिशील-बिम्ब, लोक सांस्कृतिक-बिम्ब, कल्पना-बिम्ब, भाव-बिम्ब, सान्द्र-बिम्ब, विवृत-बिम्ब आदि ।

(ग) त्रिलोचन के काव्य में बिम्ब विधान - मिश्रित संवेदनाओं के बिम्ब, दृश्य-बिम्ब, श्रव्य-बिम्ब, स्पर्श-बिम्ब, घ्राण-बिम्ब, यथातथ्य वस्तु बिम्ब, गतिशील-बिम्ब, सांस्कृतिक-बिम्ब, कल्पना-बिम्ब, भाव-बिम्ब, सान्द्र-बिम्ब, विवृत-बिंम्ब आदि ।

तुलनात्मक निष्कर्ष

अध्याय- ६

आलोच्य कवियों का बिम्ब-सौन्दर्य

(1) बिम्ब का स्वरूप-

बिम्ब वस्तुतः अंग्रेजी शब्द 'इमेज' का पर्यायवाची है। इसके विषय में शरीर-विज्ञान, मनोविज्ञान, सौन्दर्य-शास्त्र तथा दर्शन में पर्याप्त विचार-विवेचन हुआ है। प्रसिद्ध शब्द-कोशों तथा साहित्य-कोश में बिम्ब का अर्थ निम्न प्रकार किया गया है-

(अ) "किसी पदार्थ का मनश्चित्र या मानसिक प्रतिकृति।"(१)

(आ) "कल्पना अथवा स्मृति में उपस्थित चित्र अथवा प्रतिकृति जिसका चाक्षुष होना अनिवार्य नहीं है।"(२)

(इ) "सूर्यमण्डल या चन्द्रमण्डल, प्रतिभा, छाया, प्रतिबिम्ब, दर्पण।"(३)

(ई) "प्रस्तुत परिवेश के संवेदनों और प्रत्यक्ष के अतिरिक्त मनुष्य के मानस में अतीत की तथा कभी अस्तित्व न रखने, न घटने वाली वस्तुओं और घटनाओं की असंख्य प्रतिमाएं भी रहती है। 'बिम्ब' शब्द इसी मानस प्रतिभा का पर्याय है।"(४)

मनोविज्ञान के अनुसार भी बिम्ब का अर्थ लगभग यहीं किया गया है।(५)

(क) पाश्चात्य विचारक-

पाश्चात्य सौन्दर्य शास्त्र में बिम्ब पर गम्भीर एवं सविस्तार विचार हुआ है, तथा वहाँ बिम्ब को काव्य का अनिवार्य उपकरण माना गया है। शैली लिखते हैं कि एक कविता अपने शाश्वत सत्य को व्यक्त करने वाले जीवन का एक बिम्ब ही है।(६) आस्टिन

1- Shorter Oxford Dictionary P. 958

2- Chamber's Dictionary P. 527

३. संस्कृत हिन्दी कोश : डी०एस० आप्टे पृ० ७१७

४. हिन्दी साहित्य कोश : पृ० ५१४

5- " A revived sence experience, in the absence of the sensory stimulation, e.g. seeing with the mind's eye."

- A dictionary of phychology, James Drever, P. 129

6- A poem is the very image of life expressed in its enternal truth.

- Quoted by C.P. Lewis ' In the Poetic image' P. 93

वारेन एवं रेने बैलक ने बिम्ब-विधान का सम्बन्ध मनोविज्ञान और साहित्य दोनों से माना है।(१) उन्होंने लिखा है कि बिम्ब-विधान छन्द की ही तरह कविता का सम्पूर्ण ढांचा होता है। अतः उसका अध्ययन कृति की पूर्णता की दृष्टि से ही होना चाहिये।(२) लैम्बार्न ने बिम्बों को यथार्थता से भी अधिक यथार्थ माना है।(३)

बिम्ब-विधान पर स्वतंत्र रूप से विचार करने वाले आलोचकों में तीन उल्लेख्य है- स्पर्जन(४), फोगल(५) एवं लीविस।(६) स्पर्जन ने शेक्सपीयर के बिम्ब-विधान पर विस्तृत ग्रन्थ लिखा है और काव्य-बिम्बों को कवि के व्यक्तित्व को जानने का प्रमुख साधन माना है। उसने बिम्ब शब्द का प्रयोग उपमा तथा रूपक के व्यापक अर्थों में किया है।(७) फोगल ने बिम्ब-विधान का अर्थ 'आलंकारिकता' लिया है।(८) परन्तु यह आलंकारिकता केवल अलंकारों तक सीमित नहीं, अपितु भाव एवं कला के समन्वय द्वारा कविता को अलंकृत करने वाली है।

लिविस ने अपनी पुस्तक में बिम्ब पर व्यापक विचार किया है। उसके अनुसार काव्य-बिम्ब एक प्रकार का भाव गर्भित शब्द-चित्र है।(९) किसी कविता में बिम्ब

1- " Imagery is a topic which belongs both to psychology and to literary study."
- Theory of Literature, P. 191

2- " Like metre, imagery is one component structure of a poem ... ... It must be studied finally not in isalation from the other stratas but as an element in the totality the integrity of the literary work."
-I bid, P. 218

3- Indeed we might even say that the images of poetry are more real than reality,"
- Lamborn : The Rudiments of criticisn, P. 70

4- Coroline F.E. spurgeon :
- Shakeshpear's imagery and what it tells us.

5- Fogal :
- The imagery of John Keats and P.B. shelley.

6- C.Day Lewis :
- The potic images.

7- " I use the term 'Images' here as the only available word to cover kind of simile, as well as every kind of what is compresed simile - Metapher
- Shakespeare's imagery and what is tell us.

" The word image precisely because it is used to cover both metapher and simile, can be used to point towards their fundamental unity.... If we conceive the image' not as primary and independent, but as the most singular and potent instrument of the faculty of imagination-it is a more valuable work than those which is subsums : Metapher & Simile,"
- John Middleton Murray : Countries of the mind ; P. 4

8- " In the study Imagery will be used to signifiy the principle of ' figurative ness'."
- The imagery of John Keats and P.B. shelley. P. 4

9- " The potic Image, C Day Lewis
P. 19

भिन्न-भिन्न कोणों पर स्थित दर्पणों के समान है। ज्यों-ज्यों 'थीम' आगे बढ़ता है, त्यों-त्यों वह विभिन्न रूपों में प्रतिबिम्बित होता है। बिम्ब केवल 'थीम' को ही प्रतिबिम्बित नहीं करते, उसे जीवन तथा आकार भी देते हैं।(१)

(ख) हिन्दी-आलोचक

हिन्दी साहित्य में आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने प्रासंगिक रूप से और नगेन्द्र जी ने तात्विक रूप से बिम्ब का विश्लेषण किया है। आचार्य शुक्ल लिखते हैं कि "काव्य में अर्थग्रहण मात्र से काम नहीं चलता, बिम्ब ग्रहण अपेक्षित होता है। यह बिम्ब-ग्रहण निर्दिष्ट, गोचर और मूर्त विषय का ही हो सकता है।"(२) तथा "वस्तुओं के रूप तथा आसपास की परिस्थितियों का ब्यौरा जितना ही स्पष्ट तथा स्फुट होगा, उतना ही पूर्ण बिम्ब ग्रहण होगा, और उतना ही अच्छा दृश्य-चित्रण कहा जायेगा।"(३) शुक्ल जी का दृश्य से अभिप्राय केवल दृष्टि से सम्बन्धित नहीं अपितु "दृश्य शब्द के अन्तर्गत केवल नेत्रों के विषयों का ही नहीं, अन्य ज्ञानेन्द्रियों के विषयों (जैसे- शब्द, गन्ध, रस) का भी ग्रहण समझना चाहिये।"(४)

डॉ० नगेन्द्र ने अपना निष्कर्ष देते हुये लिखा है कि "काव्य-बिम्ब शब्दार्थ के माध्यम से कल्पना द्वारा निर्मित एक ऐसी मानस छवि है जिसके मूल में भाव की प्रेरणा रहती है।"(५) स्पष्ट ही उन्होंने भाव का महत्व अधिक माना है। बिम्ब को काव्य-मूल के रूप में स्थापित करने के बारे में नगेन्द्र का विचार है कि "बिम्ब काव्य का अत्यन्त

1- " The images in a poem are like a series of mirrors; set at different angles so that as the theme moves on, it is reflected in a number of different aspects. But they are magic-mirrors. They do not mearly refelect the theme, they give it life and form."

- The potic image, C, Day Lewis P.80

२. चिन्तामणि (पहला भाग), आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, पृ० १४५

३. चिन्तामणि (दूसरा भाग), आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, पृ० २

४. वही पृ० १

इस सम्बन्ध में फोगल नें लिखा है कि -

" The psychogists and to many critics imagery in poetry is the expression of sense-experience channelled through sight, hearing smell,touch and taste, through these channels impressed upon the mind, and set fourth inverse in such fashion as to recall as vividly and faithfully as possible the original sensations."

- The imagery of John Keats and P.B. shelley. P. 3

५. काव्य-बिम्ब, डॉ० नगेन्द्र पृ० ५

प्रभावी माध्यम है और इसलिये काव्य के संदर्भ में उसका मूल्य असंदिग्ध है, परन्तु वह स्वतंत्र नहीं है, माध्यम ही है, प्राणतत्व नहीं। काव्य का सहकारी मूल्य अवश्य है, प्राथमिक मूल्य नहीं है।''(१)

हिन्दी में कुछ अन्य आलोचकों ने भी बिम्ब पर तात्विक दृष्टि से विचार किया है। डॉ0 कुमार विमल की मान्यता है कि- ''बिम्ब-विधान'' कला का क्रिया-पक्ष है, जो कल्पना से उत्थित होता है। कला-जगत में कल्पना के विकास की एक सरणि है। कल्पना से बिम्ब का आविर्भाव होता है और बिम्बों से प्रतीक का।''(२) केदारनाथ सिंह ने लिखा है कि ''काव्यगत बिम्ब वह शब्द चित्र है, जो ऐन्द्रिय-गुणों से अनिवार्य रूप से समन्वित होता है।''(३)

काव्य-बिम्ब की उपर्युक्त परिभाषाओं का विश्लेषण करने पर कई मुख्य बिन्दु उभरते हैं-

1. बिम्ब के लिये कल्पना और स्मृति अनिवार्य है।
2. बिम्ब एक मानसिक चित्र है।
3. बिम्ब यथार्थ की पुनः सृष्टि है।
4. बिम्ब ग्रहण के लिये इन्द्रियों की क्रियाशीलता अनिवार्य है।
5. बिम्ब में भावोद्बोधन की शक्ति है और यही इसका मुख्य कार्य है।

इस प्रकार, उपर्युक्त विद्वानों के मतों के आधार पर काव्य-बिम्ब इन्द्रियों की क्रियाशीलता से कल्पना और स्मृति द्वारा शब्दार्थ के माध्यम से निर्मित वह मानसिक चित्र है, जिसमें भावोद्बोधन की शक्ति हो।

आलोचकों ने बिम्ब के गुणों पर भी विचार किया है। डॉ0 नगेन्द्र ने बिम्ब के तीन गुण माने हैं- सजीवता, समृद्धि और औचित्य।(४) सजीवता से तात्पर्य है- बिम्ब की सुस्पष्टता जिससे ऐन्द्रिय साक्षात्कार तुरन्त हो सके। समृद्धि से उनका अभिप्राय मधुर-कोमल, उदात्त और विराट तत्वों की प्रचुरता से है और औचित्य का अर्थ है प्रसंगानुकूलता एवं सार्थकता। डॉ0 कुमार विमल ने यह स्वीकार करते हुये कि कवि के

---

१. 'धर्मयुग' (१८.१२.६६) में प्रकाशित लेख से उद्धरित।
२. 'सौन्दर्यशास्त्र के तत्व' कुमार विमल पृ० २०१
३. छायावाद (सं० उदयभानु सिंह), 'बिम्ब विधान' शीर्षक निबन्ध पृ० १२६
४. ' आस्था के चरण' डॉ० नगेन्द्र पृ० १७७
५. सौन्दर्य शास्त्र के तत्व : डॉ० कुमार विमल पृ० २१२

भावों को बिम्ब ही प्रेषणीय और ग्राह्य बनाते हैं, बिम्ब के तीन गुण माने है- प्रत्यग्रता, तीव्र घनता और उद्बोधनशीलता।(१) केदारनाथ सिंह ने काव्यगत बिम्ब में तीन विशिष्ट गुणों का होना आवश्यक बतलाया है- पूर्वस्मृति को जगा देने की शक्ति, नवीनता और तीव्रता।(२) उनकी राय में बिम्बरहित काव्य की कल्पना भी नहीं की जा सकती।

आलोचकों द्वारा निर्देशित ये गुण निस्संदेह बिम्ब के लिये आवश्यक है। परन्तु बिम्ब का ऐन्द्रिय और भावोद्बोधक होना भी अनिवार्य है। बिम्ब में ऐन्द्रियता और भावोद्बोधन की शक्ति इन गुणों के संगठित प्रभावों से ही सम्भव हो पाती है।

संस्कृत काव्यशास्त्र में आधुनिक अर्थों में प्रयुक्त बिम्ब का उल्लेख नहीं है, लेकिन उत्कृष्ट बिम्ब-योजना के दर्शन संस्कृत-काव्य की सुदीर्घ परम्परा में मिलते हैं। संस्कृत काव्यशास्त्र की मान्यतानुसार अलंकारशास्त्र में विवेचित सादृश्यमूलक अलंकार ही बिम्ब-योजना में अत्यन्त सहायक होते हैं। परन्तु डॉ0 नगेन्द्र ने बिम्ब-विधान का क्षेत्र अप्रस्तुत-विधान की अपेक्षा अधिक व्यापक मानते हुये अप्रस्तुत विधान को बिम्ब-विधान का एक अंग स्वीकार किया है- ''भारतीय अलंकारशास्त्र में सादृश्यमूलक अलंकार अप्रस्तुत-विधान पर निर्भर करते हैं। अप्रस्तुत विधान में प्रस्तुत तथ्य अथवा अभीष्ट अर्थ को प्रभावी रीति से व्यक्त करने के लिये कल्पनात्मक साम्य पर आधृत अप्रस्तुत उपकरणों का प्रयोग किया जाता है। ये उपकरण प्रस्तुत विषय के अंग न होकर कल्पनाजात होते हैं, अत: इनके लिये 'अप्रस्तुत' शब्द का प्रयोग होता है और सामान्यत: प्रस्तुत विषय का इनके साथ उपमेय-उपमान सम्बन्ध होता है। इस प्रकार यह अप्रस्तुत विधान सादृश्यमूलक होने के कारण प्राय: बिम्बात्मक ही होता है। परन्तु आधुनिक आलोचनाशास्त्र का बिम्ब-विधान और भारतीय अलंकार शास्त्र का अप्रस्तुत-विधान एक नहीं है- उनमें सहव्यक्ति भावना समीचीन नहीं है। विम्ब विचार की परिधि में प्रस्तुत और अप्रस्तुत दोनों का समावेश हो जाता है, केवल अप्रस्तुत ही नहीं, प्रस्तुत भी बिम्ब रूप हो सकता है और होता है।(३)

१.	'सौन्दर्यशास्त्र के तत्व'	कुमार विमल	पृ० २१२
२.	छायावाद,	सं० उदयभानु सिंह में सकंलित निबन्ध 'बिम्ब-विधान'	पृ० १३०
३.	'आस्था के चरण'	डॉ० नगेन्द्र	पृ० १४६

(2) बिम्ब के विविध प्रकार-

मनोविज्ञान और सौन्दर्यशास्त्र के समान काव्यशास्त्र में बिम्ब के अनेक भेदोपभेद किये गये है तथा उन पर सविस्तार विचार हुआ है। रोबिन स्केलटन ने काव्य-बिम्ब के अनेक भेद किये हैं जैसे- साधारण बिम्ब, अमूर्त बिम्ब, तात्कालिक बिम्ब, संयुक्त-बिम्ब, संकुल-बिम्ब इत्यादि।''(१)

स्केलटन ने बिम्ब को केवल शब्दाश्रित माना है और शब्दों के आधार पर ही भेद किये हैं। फोगल ने बिम्ब के दो प्रकार बतलाये हैं, मूर्त और अमूर्त। बिम्ब की अमूर्त्तता का प्रश्न चिन्त्य है।(२) एच0 कुम्बे के अनुसार बिम्ब के दो भेद हैं- संक्षिप्त-बिम्ब या व्यंजक-बिम्ब और शिथिल-बिम्ब या प्रसृत-बिम्ब।

डॉ0 कैलाश बाजपेई ने बिम्बों को मुख्यतः छः वर्गो में बांटा है-

1) दृश्य-बिम्ब- (गन्ध-संवेद्य बिम्ब, नाद, स्वाद्य, घ्राण एवं स्पर्श-बिम्ब)।
2) वस्तु-बिम्ब- यथातथ्य एवं व्यापार व्यंजक
3) भाव-बिम्ब
4) अलंकृत-बिम्ब
5) सांद्र-बिम्ब
6) विवृत-बिम्ब।(३)

डॉ0 उमा अष्टवंश ने काव्य-बिम्बों को तीन प्रमुख वर्गो में विभक्त किया है

(1) रूपात्मक अथवा लक्षित- इसके अन्तर्गत ऐन्द्रिय बिम्ब आयेगें।

(2) भावात्मक- इसके अन्तर्गत लक्षणा के चमत्कार से मुक्त वे बिम्ब आयेगें, जो ठोस आधार के द्वारा भाव को चित्रात्मकता प्रदान करते हैं।

(3) क्रियात्मक-बिम्ब- जो न केवल वाह्य गति का चित्रण करता है वरन् अंतस् के द्वन्द्व को भी मूर्त करता है।(४)

---

1. Simple image, abstract image, Immediate image, Combined image and Complex image. - **The Poetic Pattern P. 90-91**

२. डॉ० नगेन्द्र ने यह प्रश्न उठाया है। उनका कहना है कि " बिम्ब का मूल विषय मूर्त्त और अमूर्त्त दोनों प्रकार का हो सकता है अर्थात पदार्थ का भी बिम्ब हो सकता है और गुण का भी। किन्तु उसका रुप मूर्त्त ही होता है, अमूर्त्त बिम्ब नही होता। जिन बिम्बों कों अमूर्त्त माना जाता है वे चाक्षुष होते है, अगोचर नही होते।"- काव्य बिम्ब : डॉ० नगेन्द्र पृ० ०५

३. आधुनिक हिन्दी कविता में शिल्प : डॉ० कैलाश बाजपेयी, पृ० ८१

४. छायावादोत्तर हिन्दी काव्य में बिम्ब-विधान, : डॉ० उमा अष्टवंश पृ० १६

डॉ0 रणजीत ने विभिन्न आधारों पर काव्य-बिम्बों का वर्गीकरण इस प्रकार किया है-

(क) प्रस्तुति-अप्रस्तुति के आधार पर-

1. प्रस्तुत रूप में लाये हुये बिम्ब (डायरेक्ट इमेज)।

2. अप्रस्तुत रूप में लाये हुये बिम्ब (फिगरेटिव इमेज)।

(ख) संवेदित इन्द्रियों के आधार पर-

1. दृष्टि-बिम्ब 2. ध्वनि-बिम्ब 3. स्वाद-बिम्ब 4. गंध-बिम्ब 5. स्पर्श-बिम्ब 6. मिश्रित संवेदनाओं के बिम्ब

अर्थात् एकाधिक इन्द्रियों को संवेदित करने वाले बिम्ब।

(ग) क्षेत्र के आधार पर-

1. प्राकृतिक 2. पौराणिक 3. ऐतिहासिक 4. सामाजिक-लोक-सांस्कृतिक 5. औद्योगिक-वैज्ञानिक

(घ) संक्षिप्ति- विस्तृति के आधार पर-

1. साँद्र बिम्ब 2. विवृत बिम्ब

(ड.) स्थिति गति के आधार पर-

1. स्थिर 2. गतिशील

(च) कवि की मानसिक अवस्था के आधार पर-

1. स्वस्थ 2. रुग्ण (१)

डॉ0 सिद्धेश्वर प्रसाद बिम्बों को 2 वर्गों में समाहित करते हैं-

1. पारदर्शी बिम्ब या पूर्ण बिम्ब

2. अपारदर्शी बिम्ब या खण्डित बिम्ब(२)

काव्य-बिम्बों की योजना में युग-संदर्भ अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। आलोच्य युग का संदर्भ बहुत बड़े पैमाने पर बदला है और उसी व्यापक पैमाने पर कवियों द्वारा नवीन काव्य-बिम्बों की सर्जना हुई है। इस युग का कवि जहाँ एक ओर भावानुप्राणित काव्य-बिम्ब के प्रयोग की आवश्यकता पर जोर देता है, वहीं वह सहज, बोधगम्य एवं जीवन तथा समाज के आसपास के बिम्बों की योजना करने की आकाँक्षा रखता है तथा राग एवं ज्ञान से पूरित, ऐन्द्रिय, आवेगाश्रित नवीन बिम्बों की योजना की बात करता है,

१. हिन्दी की प्रगतिशील कविता, डॉ० रणजीत पृ० ३१३

२. छायावादोत्तर काव्य डॉ० सिद्धेश्वर प्रसाद पृ० १८६

साथ ही उन्हें रचनात्मक रूप भी प्रदान करता है। वस्तुत: आलोच्य कवियों ने जीवन तथा समाज की जटिलताओं एवं विषमताओं को मूर्त रूप प्रदान करने हेतु तथा उसे सशक्त अभिव्यक्ति देने हेतु काव्य के अन्तर्गत बिम्बों की योजना की है और उसे काव्य में एक माध्यम के रूप में स्वीकार किया है।

बिम्ब-विधान का क्षेत्र काफी व्यापक रहा है। आलोच्य युग के बिम्ब-विधान का विवेचन करते हुये डॉ0 शम्भूनाथ चतुर्वेदी ने उसे दो कोटियों में विभाजित किया है पहला, ऐन्द्रिय बिम्ब और दूसरा मानस बिम्ब। ऐन्द्रिय बिम्ब के अन्तर्गत दृश्य संवेद्य बिम्ब, स्पर्श संवेद्य बिम्ब, श्रवण संवेद्य बिम्ब, सहज एवं अलंकृत वस्तु बिम्ब सहज एवं अलंकृत व्यापार बिम्ब, पशुचारण सम्बन्धी बिम्ब, कृषि सम्बन्धी बिम्ब, दैनिक जीवन से सम्बन्धित बिम्ब, सांस्कृतिक बिम्ब, प्रणय व्यापार सम्बन्धी बिम्ब तथा मानस बिम्ब के अन्तर्गत भाव एवं विचार सम्बन्धी बिम्ब, वैज्ञानिक एवं यांत्रिक युग से सम्बन्धित बिम्ब, ज्यामिति, तर्कशास्त्र एवं गणित पर आधारित बिम्बों को वर्गीकृत किया है।(१) इस प्रकार आलोच्य युग की बिम्ब योजना काफी व्यापक धरातल पर प्रतिष्ठित है।

आलोच्य कवियों में बिम्ब-सौन्दर्य

(क) केदार का बिम्ब-विधान-

केदार प्रगतिशील कवि है। उनके यहाँ रस, छन्द और अलंकार को कविता का अनिवार्य अंग नहीं माना गया। काव्य के परम्परागत शास्त्रीय लक्षणों में उन्हें कोई दिलचस्पी नहीं है। इस स्थिति में कविता को कलात्मक बनाने के लिये उनके पास बिम्ब का ही सहारा रह जाता है। यही कारण है कि उनकी कविताओं में बिम्ब को सर्वोच्च महत्ता प्राप्त हुई है। बिम्ब के कारण उनकी कविता न केवल कलात्मक हुई है, बल्कि उसकी प्रभविष्णुता भी बढ़ गयी है।

बिम्ब भावजगत में आयी हुई वस्तुओं या उनके आसंगों का कल्पनाशक्ति से निर्मित मानसिक चित्र होता है और इस प्रकार वह भावों को एक रूप देने में समर्थ होता है। कई बार बिम्ब कविता के क्षेत्र में अप्रस्तुत-विधान या शब्द-चित्र का रूप भी धारण कर लेता है। इतना ही नहीं रूपक, उपमा, मानवीकरण आदि को भी कवि अपनी कला-चातुर्य से बिम्बों का स्वरूप दे डालता है। ऐन्द्रियता बिम्ब-विधानका एक अनिवार्य तत्व है। केवल मानस-बिम्बों में जहाँ मूर्त के लिये अमूर्त विधान प्रस्तुत किया जाता है, ऐन्द्रियता का

---

१. नया हिन्दी काव्य और विवेचना, डॉ० शम्भूनाथ चतुर्वेदी पृ० ३३४

अभाव रहता है। अतः सशक्त बिम्ब प्रायः ऐन्द्रिय बिम्ब हुआ करते हैं। केदार के यहाँ मानस-बिम्बों का प्रायः अभाव है। वे इन्द्रिय-संवेद्य बिम्बों का निर्माण करने में ही अधिक रुचिशील दिखाई पड़ते हैं। उनके यहाँ दृष्टि, गंध, रस, स्पर्श, ध्वनि और गति को चित्रित करने वाले बिम्बों की बहुलता है। कई जगह तो उन्होंने मिश्रित संवेदनाओं के सुन्दर बिम्ब खड़े किये हैं।

दृश्य-बिम्ब-

केदार की कविताओं में देखने की क्रिया का सबसे अधिक चित्रण हुआ है। वे हर वस्तु को बड़े गौर से देखते हैं और तर्कसंगत ढंग से उसके विविध पक्षों का साक्षात्कार करते हैं इसलिये उनके यहाँ दृश्य-बिम्बों की तुलनात्मक रूप से अधिकता है। उनके देखने में भी एक अलग ढंग की गतिशीलता और सक्रियता दिखाई देती है जैसे-

मैंने उसको
जब-जब देखा,
लोहा देखा,
लोहा जैसा
तपते देखा,
गलते देखा,
ढलते देखा,
मैंने उसको
गोली जैसा
चलते देखा!(१)

इस कविता में उस व्यक्ति का नाम नहीं दिया गया है, जिसे कवि देख रहा है। लेकिन कवि ने जो देखा है, उससे इतना तो साफ व्यंजित होता है कि वह कोई सशक्त क्रान्तिकारी होगा या फिर अपने देश और समाज के लिये मर मिटने वाला कोई वीर सपूत होगा। कवि एक साथ उसमें अनेक दृश्य देखता है, इसलिये अनेक क्रियाओं का संयोजन करता है। पूरी कविता तेज गति से आगे बढ़ती हुई अन्ततः संघर्ष की चरम अवस्था में पहुँचकर समाप्त हो जाती है। केदार के चाक्षुष बिम्बों की यही विशेषता है कि वे किसी वस्तु या दृश्य को केवल सामने से ही नहीं देखते, बल्कि उसके ऊपर, नीचे,

---

१. फूल नहीं रंग बोलते हैं, केदारनाथ अग्रवाल पृ० ६८

दायें, बायें, चारों तरफ उलट-पुलट कर उसका समग्र दर्शन करते हैं।

कवि चाहे किसी सजीव का चित्रण करे या निर्जीव का, पर उसकी चेतना जड़ को भी चैतन्य रूप में ही पकड़ती है। सूर्यास्त का होना और रात का आना सभी देखते हंगै, किन्तु उस दृष्टि से नहीं जिस दृष्टि से उन्हें कवि देखता है। केदार को प्रकृति के ये जड़-रूप भी मानवीय संवेदनाओं से भरकर स्वीकार्य होते हैं। उन्हें दिन के समाप्त होने और रात के आगमन का दृश्य ऐसा दिखाई देता है, जैसे कोई हिरन चौकड़ी भरता निकल गया हो और दर्पण में प्रतिबिम्बित सारा दृश्य-जगत दर्पण टूट जाने के कारण, साथ-साथ दृश्य पटल से गायब हो गया हो। प्रकृति के इस जीवन्त रूप को केदार ने निम्नांकित बिम्ब के माध्यम से चित्रित किया है-

दिन हिरन-सा चौकड़ी भरता चला,
धूप की चादर सिमट कर खो गयी,
खेत, घर, वन, गाँव का
दर्पण किसी ने तोड़ डाला,
शाम की सोना-चिरैया
नीड़ में जा सो गयी,
पेड़-पौधे बुत गये जैसे दिये,
केन ने भी जांघ अपनी ढाँक ली,
रात है यह रात, अंधी रात,
और कोई कुछ नहीं है बात।(१)

ध्वनि-बिम्ब-

केदार की कविताओं में जीवन के विविध क्षेत्रों से सम्बन्धित दृश्य-बिम्ब भरे पड़े हैं, पर इसका अर्थ यह नहीं है कि उनकी अन्य इन्द्रियाँ कम संवेदनशील है। वे चीजों को देखते भर नहीं हैं, उन्हें छूते भी हैं उनकी आवाज भी सुनते हैं, उन्हें सूंघते भी हैं और उनका स्वाद भी लेते हैं। केदार के कान साधारणतया वो सब सुनते हैं, जो सामान्य

---

१. फूल नहीं रंग बोलते हैं, केदारनाथ अग्रवाल पृ० ५८

व्यक्ति नहीं सुन पाता। पत्थरों पर चिड़ियों का फुदकना एक आम बात है, पर केदार के लिये यह दृश्य विशिष्ट है, क्योंकि वे पत्थर को जड़ नहीं मानते। उन पर जब चिड़ियाँ बैठती हैं, तो वे भी उन्हीं की तरह सचेतन व्यवहार करने लगते हैं और उनका हृदय चिड़ियों के सानिध्य से द्रवित हो उठता है। केदार पत्थरों की इस संवेदना को बहुत ध्यान से पकड़ते हैं और उनके लिये चिड़ियों और पत्थरों का संवाद बहुत प्रेरणादायी सिद्ध होता है। निम्नलिखित पंक्तियों में केदार के द्वारा निर्मित ध्वनि-बिम्ब और उससे प्रसूत स्वाद-बिम्ब का उत्साहवर्धक चित्र खड़ा किया गया है-

पत्थर भी बोलते हैं-
जब चिड़ियों का झुण्ड
बैठ जाता है उन पर
और वे चहकती हैं आपस में।
पत्थर के ये बोल
मुझे मीठे लगते हैं,
और हृदय में रस भरते हैं
अंगूरों से निकला
मीठा-मीठा ताजा।(१)

<u>मिश्रित संवेदनाओं के बिम्ब-</u>

केदार के यहाँ प्रायः भिन्न-भिन्न इन्द्रियों से सम्बन्धित स्वतंत्र ऐन्द्रिय बिम्बों की सृष्टि हुई है। पर उनकी अनेक कविताएं ऐसी भी हैं, जहाँ बिम्ब खड़ा करने में उन्होंने एकाधिक इन्द्रियों का उपयोग किया है। कई कविताएं तो ऐसी है, जिनमें मिश्रित संवेदनाओं के बड़े सुन्दर चित्र अंकित हुये हैं। वस्तुतः वे दृश्य को ही उसकी समग्रता में नहीं देखते, बल्कि स्वयं भी समग्र रूप से उस दृश्य के साथ तन्मय होते हैं। ऐसी ही तन्मयता वसन्त के इस चित्र में दिखाई देती है, जहां एक साथ दृश्य, स्पर्श, नाद, गन्ध और स्वाद बिम्बों का अवतरण हुआ है-

clUr vk;k
iykl ds cwas o{kas us
Vsw dh yky eg flj ij /kj yhA

---

१. फूल नहीं रंग बोलते हैं, केदारनाथ अग्रवाल पृ० ४८

विकराल वनखण्डी
लजवन्ती दुलहिन बन गयी,
फूलों के आभूषण पहन आकर्षक बन गयी।
अनंग के
धनु-गुण के भौरें गुनगुनाने लगे,
समीर की तितलियों के पंख गुदगुदाने लगे।
आम के अंग
बौरों की सुगन्ध से महक उठे,
मंगल-गान के सब गायक पखेरू चहक उठे ।(१)

यथातथ्य वस्तु-बिम्ब-

केदार ने वस्तुओं का दो तरह से चित्रण किया है- यथातथ्य रूप में और गतिशील रूप में। जब वे यथातथ्य रूप में भी किसी वस्तु या दृश्य का चित्रण करते है, तब भी उनकी सादगी से सुन्दर वस्तु-बिम्ब खड़ा हो जाता है। उदाहरण के लिये 'पैतृक सम्पत्ति' शीर्षक, कविता में कवि ने यद्यपि किसान के बेटे को उत्तराधिकार में मिलने वाले समान की सूची भर प्रस्तुत की है तो भी एक श्रेष्ठ वस्तु-बिम्ब निर्मित हो गया है-

जब बाप मरा तब यह पाया
भूखे किसान के बेटे ने
घर का मलवा, टूटी खटिया,
कुछ हाथ भूमि वह भी परती।
चमरौधे जूते का तल्ला,
छोटी, टूटी बुढ़िया औगी,
दरकी गोरसी, बहता हुक्का,
लोहे की पत्ती का चिमटा (२)

गतिशील-बिम्ब-

केदार की शुरू-शुरू की कविताओं में यथार्थ चित्रण के प्रति अतिरिक्त मोह होने के कारण वस्तुपरक बिम्बों की बहुलता है। किन्तु वे वस्तुओं के मात्र स्थिर सौन्दर्य से संतुष्ट नहीं होते। उन्हें वस्तुओं के व्यापार व्यंजक रूप अधिक आकृष्ट करते है। यही

---

१. फूल नहीं रंग बोलते है, केदारनाथ अग्रवाल पृ० ११०
२. फूल नहीं रंग बोलते है, केदारनाथ अग्रवाल पृ० ७४

कारण है कि वे प्रकृति के निर्जीव पदार्थों को भी जीवन्त बनाकर उनकी गत्यात्मक भूमिका में उन्हें चित्रित करते हैं। इस दृष्टि से बसन्ती हवा उनकी एक सुन्दर रचना कही जा सकती है। इस कविता में उन्होंने हवा के स्वच्छन्द विचरण का अत्यन्त मनोहारी एवं सजीव गतिशील बिम्ब अंकित किया है-

जिधर चाहती हूँ उधर घूमती हूँ।
हवा हूँ, हवा, मैं बसन्ती हवा हूँ।
जहाँ से चली मैं, जहाँ को गयी मैं,
शहर, गांव, बस्ती,
नदी, रेत, निर्जन, हरे खेत, पोखर,
झुलाती चली मैं, झुमाती चली मैं,
हवा हूँ हवा, मैं बसन्ती हवा हूँ।(१)

लोक सांस्कृतिक बिम्ब

केदार मूलतः लोक-जीवन के कवि है और उसमें भी उन्हें किसानी जीवन से अधिक लगाव है। जब वे फसलों से लहलहाते हुये खेतों को देखते हैं, तो उनका हृदय खुशी से नाच उठता है और सारी धरती ऐसी दिखाई देने लगती है मानों राधा हो, जो अपने प्रिय कृषक सवंरिया से मिलकर रास-लीला रचा रही हो। राधा और कृष्ण की यह परिकल्पना एक सुन्दर लोक-सांस्कृतिक बिम्ब को जन्म देती है-

आसमान की ओढ़नी ओढ़े,
धानी पहने,
फसल घँघरिया,
राधा बनकर धरती नाची,
नाचा हँसमुख
कृषक संवरिया।(२)

कल्पना-बिम्ब-

केदार को केन नदी बहुत प्रिय है। उन्होंने केन को केन्द्र में रखकर पचासों कविताएं लिखी हैं। कभी उन्हें केन उदास दिखती है, तो कभी किसी तरुण नायिका की

१. फूल नहीं रंग बोलते हैं केदारनाथ अग्रवाल पृ० २१
२. वही पृ० ३१

तरह इठलाती हुई प्रतीत होती है। कभी उसका रूप बहुत सौम्य दिखता है, तो कभी वह अपने कठोर रूप में कवि के सामने आती है। कुल मिलाकर कवि केन की भिन्न-भिन्न मुद्राओं की कल्पना-प्रसूत छवियाँ उतारने से थकता नहीं है। चौमासे में जब नदी बढ़कर बाम्बेश्वर पर्वत तक लहरें मारने लगती है, तब भी कवि उससे आतंकित नहीं होता, बल्कि ऐसा अनुभव करता है मानों वह शिव की पूजा-अर्चना के लिये ही इतनी दूर तक मंत्रोच्चार करते हुये आयी हो और फिर शिव से वरदान पाकर प्रसन्न मन वापस लौट गयी हो। केदार का यह कल्पना (अलंकृत-बिम्ब) बिम्ब निम्नलिखित पंक्तियों में देखा जा सकता है-

चौमासे में चढ़ी जवानी में मदमाती
केन नदी इठलाती गाती मिलने आती
बम-भोले की पूजा में जल-फूल चढ़ाती
लहरों से पहरों तक मंत्रोच्चार कराती
कर्णवती फिर लौट किनारे पर आ जाती
आंचल में वरदान लिये शिव का लहराती।(१)

भाव-बिम्ब-

यद्यपि केदार यथार्थवादी कवि है, पर इसका अर्थ यह नहीं है कि उनके हृदय में आम लोगों की तरह भावनाओं का ज्वार न उमड़ता हो। वस्तुतः वे बड़े सहृदय हैं और विशेष रूप से उनकी सहृदयता का भाव-भीना रूप तब और जोर पकड़ता है, जब उन्हें अपने प्रिय कवि-मित्रों से मिलने और उनके साथ कुछ पल बिताने का सुअवसर मिलता है। 'नागार्जुन' के बांदा आने पर वे अपने बीते हुये कल का स्मरण करते है, जब मुन्शी जी के 'पुस्तक घर' में डॉ0 रामविलास शर्मा और महादेव साहा जैसे अभिन्न कवि-मित्रों के साथ बैठकर घंटों काव्य-पाठ हुआ था। ऐसे क्षणों का स्मरण करते हुए कवि भावना के प्रवाह में बहने लगता है और स्वभावतः उसकी कलम से सुन्दर भाव-बिम्ब निकलने लगते हैं-

एक बार फिर मिला सुअवसर मधु पीने का
कविता का झरना बनकर झरझर जीने का
लगातार घंटों, पहरों तक
एक साथ सांसें लेने का

---

2. गुलमेंहदी, केदारनाथ अग्रवाल पृ0 151

एक साथ दिल की धड़कन से ध्वनि करने का
ऐसा लगा कि जैसे हम सब,
एक प्राण हैं, एक देह हैं, एक गीत हैं, एक गूँज हैं(१)

सान्द्र-बिम्ब-

केदार प्राय: अपनी बात को स्पष्ट शब्दों में व्यक्त करते है, पर कई बार वे अपनी बात को कलात्मक ढंग से व्यक्त करने में पर्याप्त रुचिशील दिखाई देते हैं। इसलिये उनकी परवर्ती कविताओं में पहले की अपेक्षा कसावट अधिक है। बड़ी बात को नपे-तुले थोड़े से शब्दों में कह डालना केदार की काव्यात्मक अभिरुचि बनती जा रही है। कई बार तो वे एक दो पंक्तियों के चमत्कारपूर्ण कथन द्वारा ही कविता की पूर्णाहुति कर देते हैं और कभी दो-चार पंक्तियों में ही उसे समेट देते हैं। ऐसी स्थिति में सुन्दर सान्द्र-बिम्ब स्वयमेव निर्मित हो जाते हैं। उदाहरणार्थ निम्न पंक्तियाँ दृष्टव्य हैं, जिनमें कवि ने लाल गुलाब के फूल को क्रान्ति चेतना का प्रतीक मानते हुये उसे इस रूप में बिम्बायित किया है, मानो आग फाग गा रही हो। फाग एक मस्ती का गीत होता है, जिसे सुनकर सर्वत्र एक नशा-सा छा जाता है। केदार को गुलाब के फूल में फाग का कुछ ऐसा ही मादक संगीत सुनाई देता है-

जल रहा है
जवान होकर गुलाब
खोलकर होंठ
जैसे आग
गा रही है फाग।(२)

विवृत्त-बिम्ब-

कभी-कभी केदार वस्तुओं का वर्णन करते समय इतने भावुक हो उठते हैं कि उनकी कल्पना वस्तु का विवरण देने के साथ-साथ भावों से अटूट जाल भी बिछाती चलती है। केदार की काव्य-यात्रा में ऐसे अनेक पड़ाव आते हैं, जब वे अपने देश और समाज की माटी से भावात्मक स्तर पर जुड़ जाते हैं। पल भर के लिये वे यथार्थ-चित्रण के साथ भाव-चित्रों की लड़ियाँ पिरोने में खो जाते है और तब विवृत बिम्ब अपनी पूरी

---

१. फूल नहीं रंग बोलते हैं : केदारनाथ अग्रवाल पृ० ८८
२. फूल नहीं रंग बोलते हैं : केदारनाथ अग्रवाल पृ० १७१

सुन्दरता के साथ खड़ा हो जाता है-

मेरा देश गगनचुम्बी शिखरों का घर है,
उत्तर के बलवान पहरूये की चौड़ी बाहों का घर है,
तरुओं का अनगिन कुनबों का कुसुमित घर है,
पल्लव-पुलकित-हरियाली का सस्मित घर है,
मेरा देश,
वृहत-वक्षस्थल
उपजाऊ धरती का घर है,
गेहूँ, धान, चने का घर है,
गन्ना, रुई, तिली, सरसों, अलसी का घर है,
अति उत्तम खेती का घर है,
मेरा देश, महापुरुषों की आत्माओं का प्यारा घर है,
श्रमजीवी के निर्माणों का सुन्दर घर है।
इसके पैरों पर सागर भी नत-मस्तक है।(१)

(ख) नागार्जुन का बिम्ब-विधान-

प्रगतिशील कविता बिम्ब रचना की दृष्टि से बहुत सम्पन्न है। जब कवि परम्परागत काव्य-मूल्यों से हटकर एक नये तेवर में अपनी बात कहना चाहता है, तब उसके पास बिम्ब ही एक ऐसा साधन बचता है जो उसकी कविता को काव्यात्मक-सौन्दर्य प्रदान करता है। नागार्जुन यद्यपि अपनी बात की सीधे-सीधे शब्दों में व्यक्त करने के पक्षधर है, पर उनकी सादगी में भी ऐसा चमत्कार उभर आता है, जो पाठक को मन का अन्दर तक छू लेता है। यह चमत्कार उनके सुगठित बिम्बों के कारण ही उत्पन्न होता है।

दृश्य-बिम्ब-

नागार्जुन अतिशय संवेदनशील कवि है। उनकी इन्द्रियाँ असाधारण रूप से तीक्ष्ण है। वे सामान्य बातों में भी अद्भुत सौन्दर्य का दर्शन कर लेते है। उनके काव्य में दृश्य, ध्वनि, घ्राण, स्पर्श और स्वाद बिम्ब जगह-जगह दिखाई देते है। दृश्य बिम्बों की दृष्टि से उनकी कविता बहुत धनी है। वर्षा ऋतु में प्रकृति की सुन्दरता स्वभावतः बढ़ जाती है। सर्वत्र हरीतिमा छा जाती है। पेड़ों के पत्ते, जो ग्रीष्मकाल में तपन के कारण

---

१. गुलमेंहदी केदारनाथ अग्रवाल पृ० १५२

मुरझाने लगते है, वर्षा के आगमन के साथ ही पुनः हरे-भरे हो जाते हैं। पत्तों का सौन्दर्य उस समय देखते ही बनता है, जब वे पानी से नहाकर हवा के झोकों के साथ मस्ती में हिलते-डुलते है। कवि न केवल इस सौन्दर्य से मुग्ध होता है, बल्कि स्वयं भी पत्तों के साथ एक विचित्र आनन्द की अनुभूति सा करता हुआ दिखाई देता है-

वर्षा में अनावृत धुले पात
फीके थे कल, आज खुले पात
धूप के जादू में खिले पात
मस्तानी हवा में हिले पात
जादुई सांचे में ढले पात
भूल गये दाह-दिन भले पात
वर्षा में अनावृत धुले पात
फीके थे कल आज खुले पात।(१)

कवि जब किसी दृश्य का वर्णन करता है, तब वह उस दृश्य से स्वयं को तटस्थ नहीं रख पाता, बल्कि उस दृश्य के अन्दर तक घुसकर उसका अभिन्न हिस्सा बन जाता है। कई दृश्य ऐसे होते है, जो अपने मौन संकेतों से ही उस सत्य को अनावृत्त कर देते हैं, जो ऊपर-ऊपर से दिखाई नहीं देता। जब कवि अपने परिवार का बहुत दिनों तक विश्वास नहीं जीत पाता और फिर भी यह अपेक्षा करता हैं कि उसे इस पारिवारिक उदासीनता के लिये दोष न दिया जाय, तो स्वयं अन्तर्मन उसे कोसने लगता है। वह बहुत दिनों के बाद जब अपनी गृहस्थी में पुनः प्रवेश करता है, तो उसे संशय और अविश्वास की दृष्टि से देखा जाता है और वह स्वयं एक घुटन और बेचैनी का अनुभव करता है।न वह कुछ बोलता है और न उसकी प्रिया, पर बिना बोले ही अन्दर की सारी पीड़ा मूर्त हो जाती है-

खुले नहीं होंठ,
हिली नहीं जीभ,
गतिविधि में उभरी संशय की गंध
इंगितों में छलका अविश्वास
अनचाहे भी बहुत कुछ

---

१. नागार्जुन : चुनी हुई रचनाये-२ शोभाकान्त मिश्र पृ० १५८-१५६

कह गई फीकी मुस्कान
लदी रही पलकों पर देर तक झेंप
घुमड़ता रहा देर तक सांसों की घुटन में
बेचैनी का भाफ
बनती रही
मिटती रही
देर तक भौंहों की सिकुड़न
हिली नही जीभ
खुले नहीं होंठ।(१)

मिश्रित संवेदनाओं के बिम्ब-

नागार्जुन के इन्द्रिय-संवेद्य बिम्बों में ऐसे बिम्बों का आधिक्य है, जिनमें मिश्रित संवेदनाओं को अंकित किया गया है। जब कवि किसी दृश्य को चित्रित करने के लिये कलम उठता है, तब उसके सामने केवल नेत्र-ग्राह्य चित्र ही नहीं आता, बल्कि उसकी त्वचा, नाक, कान और जिह्वा सभी इन्द्रियाँ एक साथ सक्रिय हो जाती हैं। बहुत दिनों के बाद जब कवि अपने गाँव वापस लौटता है, तब वह वहाँ के हरे-भरे खेतों को देखकर मुग्ध हो जाता है। फिर उसे उन खेतों से उपजे धान को कूटकर उससे चावल निकालती नवयुवतियों का सुरीला गीत भी सुनायी देता है, और वह मौलसिरी के टटके फूलों की गन्ध से आह्लादित भी होता है वह अपने गाँव की मिट्टी को छूकर आत्मगौरव का अनुभव करता है और तालमखाना तथा गन्ने के रस का जीभर स्वाद लेता है। इस प्रकार गन्ध, रूप, रस, शब्द और स्पर्श सभी का सुख उसे एक साथ प्राप्त हो जाता है। इस आनन्दातिरेक को छोटे-छोटे बिम्बों में ढ़ालकर कवि ने इस तरह प्रस्तुत किया है-

बहुत दिनों के बाद
अब की मैंने जी भर देखी
पकी सुनहली फसलों की मुस्कान
बहुत दिनों के बाद
बहुत दिनों के बाद
अब की मैं जी भर सुन पाया

१. नागार्जन चुनी हुई रचनायें-२ शोभाकान्त मिश्र पृ० १२६

घान कूटती किशोरियों की कोकिल कण्ठी तान
बहुत दिनों के बाद
बहुत दिनों के बाद
अब की मैंने जी भर सूंघे
मौलसिरी के ढ़ेर-ढ़ेर से ताजे-तटके फूल
बहुत दिनों के बाद
बहुत दिनों के बाद
अब की मैं जी भर छू पाया
अपनी गँवई पगडण्डी की चंदनवर्णी धूल
बहुत दिनों के बाद
बहुत दिनों के बाद
अब की मैंने जी भर तालखाना खाया
गन्ने चूसे जी भर
बहुत दिनों के बाद
बहुत दिनों के बाद
अब की मैंने जी भर भोगे
गन्ध-रूप-रस-शब्द-स्पर्श सब साथ-साथ इस भू पर
बहुत दिनों के बाद।(१)

इसी प्रकार 'तन गयी रीढ़' कविता में भी कवि स्पर्श, घ्राण, दृश्य, और ध्वनि बिम्बों की एक श्रृंखला बना देता है। किसी कोमल हथेली का स्पर्श पाकर, किसी के श्वांस को महसूस करके, किसी के दृष्टि-निक्षेप से प्रभावित होकर, किसी की खिलखिलाहट सुनकर या अलकों के सुगन्धित तैल से अभिभूत होकर कवि की रीढ़ तन जाती है। हर बिम्ब अपने आप में इतना पूर्ण और प्रभावशाली है कि कवि जीवन में एक नई स्फूर्ति और उत्साह का अनुभव करने लगता है।

यथातथ्य वस्तु-बिम्ब-

नागार्जुन की कविता में जिन विषयों का चित्रण हुआ है, वे वस्तु-जगत से संबंधित है। इसलिये उनकी कविता में वस्तु-बिम्बों का चित्रण स्वाभाविक है। ये वस्तु-बिम्ब दो प्रकार के हैं- यथातथ्य वस्तु-बिम्ब और गतिशील वस्तु-बिम्ब। जब कभी

---

१. नागार्जन चुनी हुई रचनायें-२ शोभाकान्त मिश्र पृ०१२३-१२४

किसी बात को लेकर हड़ताल होती है, तो कई-कई दिनों तक बाजार बन्द हो जाते हैं, यातायात रुक जाता है, और सामान्य जीवन अस्त-व्यस्त हो जाता है। बिहार के पूर्णिया जिले में एक बार तीन दिनों तक कर्फ्यू लगा रहा, जिसके कारण सारा कामकाज ठप्प पड़ गया। इस स्थिति को कवि एक यथातथ्य बिम्ब के माध्यम से रूपायित करता है-

ठप थी अदालतें
सस्ते थे वकील व मुख्तार
तीन दिन, तीन रात
वीरान थे होटल
धीमी थी धुएँ की रफ्तार
तीन दिन, तीन रात
सरकारी जीप-ट्रक
पीती रहीं पेट्रोल
तीन दिन, तीन रात
बस वाले पीते रहे
मालिकों की खीझ का
मट्ठा और घोल
तन दिन, तीन रात।(१)

यह स्थिति का यथातथ्य चित्र है। इसी प्रकार एक सर्वहारा के दीन-हीन जीवन को ज्यों का त्यों अंकित करने के लिये कवि एक बिम्ब खड़ा करता है। निम्नलिखित पंक्तियों में न केवल उस गरीब बालक की शारीरिक क्षीणता को इंगित किया गया है, बल्कि उसके पूरे परिवेश को उभारने का प्रयत्न परिलक्षित होता है-

बढ़ा है आगे को बे तरह पेट
धँसी-धँसी आँखे
फूले-फूले गाल
टाँग है कि तीलियाँ, अटपटी चाल
दो छोटी, एक बड़ी
लगी है थिगलियाँ पीछे की ओर
मवाद, मिट्टी, पसीना और वक्त
चार-चार दुश्मनों की खाये हुये मार
निकर मना रही मुक्ति की गुहार।(२)

---

१. नागार्जुन : चुनी हुई रचनायें-२ शोभाकान्त मिश्र पृ० १८६
२. वही पृ० ६१

गतिशील बिम्ब-

नागार्जुन के वस्तु-बिम्ब यथातथ्य परक होने के साथ-साथ अपनी गत्यात्मक भूमिका का भी निर्वाह करते हैं। जब वे किसी दृश्य को देखकर उससे प्रभावित होते हैं, तो वे उसका चित्र उसके सक्रिय रूप के साथ खीचते हैं। रात्रि में चाँदनी का सौन्दर्य देखकर कवि इतना मुग्ध होता है कि वह घण्टों अपनी नजर गड़ाये चारों तरफ दृष्टिपात करता है। चाँदनी सहसा एक अल्हड़ नायिका के रूप में दिखाई देने लगती है। कवि को वह सर्वत्र नाचती-कूदती आनन्द मनाती हुई अपनी गतिशील भूमिका में दिखायी देती है-

पीपल के पत्तों पर फिसल रही चाँदनी
नालियों के भीगे हुए पेट पर, पास ही
जम रही, घुल रही, पिघल रही चाँदनी
पिछवाड़े, बोतल के टुकड़ों पर
चमक रही, दमक रही, मचल रही चाँदनी
दूर उधर, बुर्जों पर उछल रही चाँदनी
आँगन में, दूबों पर गिर पड़ी
अब मगर, किस कदर, सँभल रही चाँदनी
वो देखो सामने
पीपल के पत्तों पर फिसल रही चाँदनी।(१)

लोक सांस्कृतिक-बिम्ब-

नागार्जुन लोक-जीवन से गहराई के साथ जुड़े हुये हैं। गाँव के लोग तीज-त्योहार बड़े उल्लास के साथ मनाते हैं। क्या गाँव? क्या शहर? सभी जगह होली का त्योहार धूम-धाम के साथ मनाया जाता है। होली उल्लास और मस्ती का त्योहार है। सन् 1976 में यह त्योहार उस समय आया, जब नागार्जुन जेल में थे। उन्हें जेल की यह होली खल गयी, पर उन विकट परिस्थितियों में भी वे लोक-संस्कृति को भुला नहीं पाये। जेल की सीमाओं में भी उन्हें ऐसे साथी मिल गये, जिनके साथ मिलकर उन्होंने उत्साहपूर्वक होली मनाने का अवसर हाथ से जाने नहीं दिया। उनकी निम्नलिखित पंक्तियों में जेल के अन्दर होली मनाने का सुन्दर लोक सांस्कृतिक बिम्ब उभरा है-

---

१. नागार्जुन : प्रभाकर माचवे पृ० ६०

होली हमें बुरी तरह खल गई इस साल
जिन नाजुक गालों पर मला करते थे गुलाल
और जिन्हें गालियाँ देकर होते थे निहाल
हाय वो सामने नहीं थे इस साल
मगर यहाँ भी हमें
रहने नहीं पाया मलाल
यहाँ भी हमें मिल गई थी ढोलक और झाल
हमी में एक बन गया था छोकरी, कर दिया था कमाल
बाकी, हम सभी नाचे थे उस दिन ताल-बेताल
भंग भी छनी, मालपुए भी कटे, उड़े भी गुलाल
फिर भी हमें बुरी तरह खल गई होली इस साल।(१)

कल्पना-बिम्ब-

नागार्जुन ने मुख्य रूप से ऐसे बिम्बों का सृजन किया है, जिनमें अलंकारों का कम से कम प्रयोग हुआ है, पर कभी-कभी किसी दृश्य को देखकर कवि कल्पना संसार में डूब जाता है। उदाहरण के लिये कवि एक सर्वहारा के घर एक नवजात शिशु की हथेली देखकर उसके अतीत और भविष्य की कल्पनाओं में डूब जाता है। और इस तरह छोटे-छोटे कल्पना-बिम्बों का सृजन होने लगता है। इन कल्पनाओं में कवि की मार्क्सवादी चेतना स्पष्ट दिखाई देती है। वह उसी के अनुरूप अपनी कल्पना की दिशा निध ारित करता है। कवि के मानस पर संस्कृत-साहित्य का भी प्रभाव है, इसलिये उस बालक में उसे वराह भगवान की सम्भावना भी दिखायी देने लगती है और वह एक ऐसा कल्पना-बिम्ब बनाता है मानों वह बालक आगे चलकर सारी धरती को शोषण और उत्पीड़न से मुक्त कर देगा-

देख रहा था नवजातक के
दाएं कर की नरम हथेली
सोच रहा था इस गरीब ने

---

१. नागार्जुन चुनी हुई रचनायें-२ शोभाकान्त मिश्र पृ० २३२

सूक्ष्म रूप में विपदा झेली
आड़ी-तिरछी रेखाओं में
हथियारों के ही निशान थे
खुखरी है, बम है, असि भी है
गण्ड़ासा भाला प्रधान है-
दिल ने कहा-दलित माँओ के
सब बच्चे अब बागी होंगे
अग्निपुत्र होंगे वे, अन्तिम
विप्लव में सहभागी होंगे
दिल ने कहा-अरे यह बच्चा
सचमुच अवतारी वराह है
इसकी भावी लीलाओं का
सारी धरती चारागाह है।(१)

नागार्जुन कभी तो विराट कल्पना करने लगते है और कभी उनकी कल्पना का स्तर बहुत सहज और सामान्य होता है। बहुत वर्षा और उस पर कई-कई दिनों तक लगातार छाने वाला कोहरा असह्य हो जाता है, पर कवि कभी निराश नहीं होता। उसे बराबर भावी सुख की कल्पना सम्बल देती रहती है। वह प्रकृति की ओर दृष्टिपात करता है और कल्पना करता है कि यहं कोहरा जल्दी ही छँट जायेगा और आकाश में चारों ओर सूरज का प्रकाश फैल जायेगा। सारी प्रकृति सौन्दर्य में नहा जायेगी-

अभी-अभी
कोहरा चीरकर चमकेगा सूरज
चमक उठेगी ठूँठ की नंगी भूरी डालें
अभी-अभी
थिरकेगी पछिया बयार
झरने लग जायेगें नीम के पीले पत्ते
अभी-अभी
खिलखिलाकर हँस पड़ेगा कचनार

---

१. नागार्जुन : चुनी हुई रचनायें-२ शोभाकान्त मिश्र पृ० २४५-२४६

गुदगुदा उठेगा उसकी अगवानी में
अमलतास की टहनियों का पोर-पोर
अभी-अभी
करवटें लेगें बूँदों के सपने
फूलों के अन्दर
फलों-फलियों के अन्दर।(१)

भाव-बिम्ब-

नागार्जुन मूलतः आलोचनात्मक दृष्टि के कवि है। उनकी कविता में इसीलिये व्यंग की प्रधानता रहती है। पर इसका अर्थ यह नहीं है कि उन्हें हृदय को छूने वाले भाव स्पन्दित न करते हों। महात्मा गाँधी की हत्या से वे इतना अधिक द्रवित होते हैं कि उनके हृदय में दुख की उत्ताल तंरगे उठने लगती है और उन्हें अपने साथ-साथ सारी प्रकृति बापू के वियोग में दुखी जान पड़ती है। भाव-विह्वलता के ऐसे ही क्षणों में उन्होंने सुन्दर भाव-बिम्बों की सर्जना की है। उदाहरण के लिये 'शपथ' कविता की निम्नलिखित पंक्तियाँ दृष्टव्य है-

गंगा-यमुना सभी रो रहीं
दसों-दिसाएं ध्वनित हो रहीं
पृथ्वी उन्मन
विकल है गगन
नील जलधि शतत: उद्वेलित
स्तब्ध हिमालय के शिखरों पर धनीभूत हो रहे तुहिन
तृण-तरु-वृक्ष-वनस्पति सारे खिन्न खड़े है।
मृदुल मनोरम लतिकाओं की कान्ति म्लान है।(२)

नागार्जुन का मित्र मण्डल बहुत व्यापक है। उनके अनेक प्रगतिशील कवि-मित्रों में से केदारनाथ अग्रवाल का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। केदार के सौम्य व्यक्तित्व और उनकी आत्मीयता से प्रभावित होकर नागार्जुन ने कई बार केदार के गृह जनपद-बाँदा की यात्रा की है। वे जब-जब केदार से मिलते हैं, उनका हृदय आनन्द

---

१. नागार्जुन चुनी हुई रचनायें-२ शोभाकान्त मिश्र पृ०
२. वही पृ० ६३

से पुलकित हो उठता है। वे जब केदार से बातें करते बाँदा के बामदेवेश्वर पर्वत पर कुछ देर के लिये बैठते है, तो उन्हें पर्वत के नीचे बाँदा की मध्यवर्गीय बस्ती दिखायी देती है। यह बस्ती केदार के निवास स्थान से सम्बन्धित होने के कारण नागार्जुन को इतनी सुन्दर दिखायी देती है कि वे बाँदा जैसे पिछड़े टाउन को भाव-विभोर होकर किसी गन्धर्व नगर के रूप में देखने लगते हैं। पल भर के लिये उनका यथार्थ-बोध उदान्त भावनाओं की भेंट चढ़ जाता है और वे एक सुन्दर भाव-बिम्ब की रचना कर डालते हैं-

छतों और खपरैलों वाली
सादी-उजली लिपी-पुती दीवारों वाली
सुन्दर नगरी बिछी हुई है
उजले पालों वाली नौकाओं से शोभित
श्याम-सलिल सरवर है बाँदा
नीलम की घाटी में उजला श्वेत कमल-कानन है बाँदा
अपनी इन आँखों पर मुझको
मुश्किल से विश्वास हुआ था
मुँह से सहसा निकल पड़ा-
क्या सचमुच बाँदा इतना सुन्दर हो सकता है
यू0 पी0 का वह पिछड़ा टाउन कहाँ हो गया गायब सहसा
बाँदा नहीं, अरे यह तो गन्धर्व नगर है..........(१)

सान्द्र-बिम्ब-

नागार्जुन ने केदार की तरह दो-दो, चार-चार पंक्तियों की कविताएं लिखने में कोई रुचि प्रदर्शित नहीं की है। उनकी कविताएं तुलनात्मक रूप से लम्बी होती है। इसका कारण यही है कि नागार्जुन कविता के चमत्कार वाले रूप पर विश्वास नहीं करते। वे कविता में वस्तु की प्रभावशाली अभिव्यक्ति पर अपना सारा ध्यान केन्द्रित रखते है। स्वभावतः उनके काव्य में सान्द्र बिम्ब कम ही मिलते हैं। उनकी लम्बी कविताओं में ही अनेक कविताएं ऐसी है, जिनमें उन्होंने दो-दो, तीन-तीन पंक्तियों के छोटे-छोटे छन्दों में

---

१. नागार्जुन : चुनी हुई रचनायें-२ शोभाकान्त मिश्र पृ० ११६

एक ही भाव के अनेक सान्द्र बिम्ब गढ़ दिये हैं। 'यह तुम थी' कविता की आरम्भिक चार पंक्तियाँ सान्द्र-बिम्ब का सुन्दर उदाहरण है-

कर गई चाक
तिमिर का सीना
जोत की फाँक
यह तुम थी।(१)

विवृत बिम्ब-

इसी प्रकार 'तन गयी रीढ़' कविता में कवि ने पांच छोटे-छोटे बिम्बों को एकत्र करके सान्द्र-बिम्बों की एक माला-सी तैयार कर दी है। नागार्जुन के बिम्बों का सौन्दर्य विवृत-बिम्बों में अधिक उजागर हुआ है। 'जयति जयति जय सर्व मंगला' उनकी एक लम्बी कविता है, जिसमें उन्होंने कई सफल विवृत बिम्ब खड़े किये हैं। स्वतंत्रता के बाद कांग्रेस सरकार जिस तरह साम्राज्यवादी देशों के साथ मेल-जोल बढ़ा रही थी, उसे देखकर कवि का हृदय बहुत व्यथित होता है। अमेरिका और फ्रांस की मित्रता भारत को ही नहीं, वरन् सम्पूर्ण एशिया के लिये घातक हो सकती है, यह सोचकर भावुक हो उठता है और एक सुन्दर विवृत बिम्ब की रचना सहज में ही हो जाती है-

लन्दन-पेरिस-न्यूयार्क से लाद-लादकर
अस्त्र-शस्त्र बारूद-बम सैनिक सेनापति
कैरो और कराँची होकर
ये पहले दिल्ली आते है
और वहाँ से कलकत्ता-रंगून की तरफ........
रामराज का निर्मल-नील गगन जो ठहरा
इसमें होकर आते जाते रावण के विध्वंसी पुण्यक
निकट-पूर्व क्या, दूर पूर्व क्या, सकल एशिया
मृगयोचित रमणीय क्षेत्र है इनके खातिर
नील नदी का तट-अचंल हो या दमिश्क के खुश्क इलाके
रत्नगर्भ भारत हो चाहे पाकभूमि हो स्वर्ण प्रसविनी

---

१. नागार्जन चुनी हुई रचनायें-२ शोभाकान्त मिश्र पृ० १२०

काश्मीर का नन्दन वन हो
या कि भग नेपाल देश हो
हरी-भरी बर्मी धरती हो
धानों से लहराता श्यामल थाईलैण्ड हो
टिन की खान, रबर का जंगल
उर्वर भूमि मलाया चाहे स्वर्णद्वीप या यवद्वीप हो
फारमोसा हो या जापान हो
वियतनाम हो या कि कोरिया
यह समग्र एशिया नहीं, इन्हीं का चारागाह है।(१)

(ग) त्रिलोचन के काव्य में बिम्ब-विधान-

मिश्रित संवेदनाओं के बिम्ब-

बिम्ब आधुनिक कविता का प्राण तत्व है। त्रिलोचन ने अपनी कविताओं में बिम्ब को इसी रूप में स्वीकार किया है। त्रिलोचन के बिम्बों की महत्वपूर्ण विशेषता यह है कि उन्होंने अपने सूक्ष्म निरीक्षण द्वारा प्रस्तुत के लिये तदनुरूप अप्रस्तुत का विधान किया है। यथार्थ के प्रति आग्रही होने के बावजूद त्रिलोचन ने पर्याप्त संख्या में प्रभावशाली बिम्बों का सृजन किया है। उनके काव्य में प्रायः हर प्रकार के बिम्ब मिल जाते हैं। इन्द्रिय संवेद्य बिम्बों की दृष्टि से त्रिलोचन का काव्य बहुत समृद्ध है। दृश्य, श्रव्य, स्पर्श, घ्राण और आस्वाद्य बिम्बों का त्रिलोचन ने यथास्थान प्रयोग किया है। कहीं-कहीं एकाधिक इन्द्रियों के योग से मिश्र बिम्बों का भी निर्माण हुआ है। जैसे-

आठ पहर की टिप-टिप
सड़क भीग गयी है
पेड़ों के पत्तों से बूंदें

---

१. नागार्जुन : चुनी हुई रचनायें-२ शोभाकान्त मिश्र पृ० ८६-८७

गिरती है टप्-टप्

हवा सरसराती है

चिड़ियां समेटे पंख यहाँ वहाँ बैठी है।(१)

यहाँ पर स्पर्श, श्रव्य और दृश्य बिम्बों को एक साथ प्रस्तुत किया गया है। इसी प्रकार निम्नलिखित पंक्तियों में भी एक मिश्रित बिम्ब दृष्टव्य है, जहाँ दृश्य, घ्राण, आस्वाद्य और श्रव्य बिम्बों को जोड़कर एक कर दिया गया है-

नीम के फूलों की

हरी हरी सुगंध पिये

रात

मौन रहती है

बाँसुरी की तान सुना करती है।(२)

दृश्य-बिम्ब-

इन्द्रिय संवेद्य बिम्बों को अलग-अलग रूपों में भी त्रिलोचन ने सुन्दर ढंग से प्रस्तुत किया है। दृश्य-बिम्ब की दृष्टि से 'बरसाती रात' कविता की निम्नलिखित पंक्तियों को उद्धृत किया जा सकता है-

आई थी घटाएं अभी

नाच कर चली गयी

बिजली का मशाला जल जल कर

बुझ जाता था।(३)

श्रव्य-बिम्ब-

त्रिलोचन किसी दृश्य को केवल देखते ही नहीं, उसे सुनते, सूंघते और स्पर्श भी करते हैं। तात्पर्य यह है कि वे अपनी कविता की विषय-वस्तु के साथ पूरी तन्मयता के साथ जुड़ते हैं। 'बरसाती रात' की ही अगली पंक्तियों में उन्होंने एक सुन्दर श्रव्य-बिम्ब की रचना की है-

---

१. ताप के तापे हुये दिन — त्रिलोचन शास्त्री — पृ० ३७
२. वही — पृ० १६
३. वही — पृ० १८

केवल रिमझिम का संगीत सुन पड़ता था
बूँदों की छनकारें
ओलतियों की टप-टप टपकारें
पानी की कल-कल करते
बहते ही जाना।(१)

स्पर्श-बिम्ब-

त्रिलोचन एक सहृदय कवि हैं। काव्य-रचना के क्षणों में उनकी इन्द्रियाँ पूर्णतः जागरूक रहती हैं। इसी जागरूकता के कारण वे अपने कथ्य के साथ पूर्ण रागात्मकता स्थापित कर लेते हैं। वे केवल देखकर या सुनकर ही संतुष्ट नहीं हो जाते, बल्कि छूकर भी वस्तु स्थिति का साक्षात्कार करना आवश्यक समझते हैं। इसी प्रक्रिया में उन्होंने कई सुन्दर स्पर्श बिम्बों का सृजन किया है। उदाहरण के लिये निम्नलिखित पंक्तियाँ दृष्टव्य हैं-

सूने राजमार्ग पर
परस मिला मुझे
जरा गरमीला।(२)

घ्राण-बिम्ब-

इसी क्रम में वे आगे बढ़ते हैं और वस्तु-स्थिति को सूंघकर भी आँकने का प्रयास करते हैं। परिणामस्वरूप एक सुंदर घ्राण-बिम्ब की सृष्टि हो जाती है-

बौरे आम के तले
सुगन्ध मिली
मुझे आज
प्रातःकाल (३)

यथातथ्य वस्तु-बिम्ब-

त्रिलोचन के काव्य में यद्यपि हर प्रकार के इन्द्रिय संवेद्य बिम्ब मिलते हैं, किन्तु तुलनात्मक रूप से दृश्य और श्रव्य-बिम्बों की संख्या अधिक है। वे जब किसी वस्तु को देखते हैं, तो उसे उलट-पुलट कर हर तरफ से परख लेना चाहते हैं। वस्तु का यथातथ्य रूप तो उनकी कविताओं में अंकित होता ही है, पर साथ ही वे उस वस्तु को उसकी गत्यात्मक भूमिका में भी देखते हैं और तब कहीं जाकर उन्हें संतोष होता है। इस संसार

१. ताप के ताये हुये दिन त्रिलोचन शास्त्री पृ० १८
२. वही पृ० १६
३. वही पृ० २०

में कुछ भी स्थिर नहीं है तो भी कवि की दृष्टि पल भर के लिये किसी दृश्य में अटक जाती हैं और वह उस दृश्य का यथातथ्य चित्र अंकित कर देता है। बुढ़ापा अपने आपमें कष्टकारी होता है। फिर यदि कोई दुर्भाग्य का मारा हो, अर्थाभाव से पीड़ित हो, तो बुढ़ापे की पीड़ा और भी बढ़ जाती है। ऐसी ही एक बुढ़िया का यथातथ्य चित्र त्रिलोचन ने इन पंक्तियों में अंकित किया है-

सुकनी उस बुढ़िया को सभी कहा करते थे।
ऊसर पर उसकी मँड़ई थी। बिल्कुल सूखी,
हड्डी-हड्डी तन में थी। पीछे चरते थे
चौपाये।(१)

उपर्युक्त चित्र में जिस बुढ़ापे की पीड़ा को चित्रित किया गया है वह इस युग में किसी एक व्यक्ति की समस्या नहीं है, बल्कि आम लोगों के साथ गरीब, भुखमरी का गहरा रिश्ता हो गया है। कवि इस युग का एक यथार्थ बिम्ब इन पंक्तियों में प्रस्तुत करता है-

यह कबंध युग है- सिर सब का पेट में धँसा
है। बाँहें आहार खोजने को जाती हैं
इधर-उधर, यों जब भी वे जो कुछ पाती हैं
उसे जकड़ लाती हैं।(२)

गतिशील-बिम्ब-

त्रिलोचन के काव्य में प्रायः वस्तुओं को उनकी गतिशील भूमिका में ही चित्रित किया गया है। गति में ही जीवन है और त्रिलोचन जीवन के कवि हैं, इसलिये न केवल मनुष्य-जीवन को अंकित करते समय बल्कि प्रकृति का साक्षात्कार करते समय भी वे उसमें जीवन की अनुभूति करते हैं और पूरी छवि को गतिशील रूप में अंकित करते हैं। उदाहरण के लिये हवा और केले के पत्तों के पारस्परिक सम्बन्धों को कवि ने सुन्दर गतिशील-बिम्ब के द्वारा अंकित किया है-

केले के पत्ते फट जाते हैं
जरा पोढ़ होते ही
चोटें हवा की

---

१. उस जनपद का कवि हूँ — त्रिलोचन शास्त्री — पृ० ९५
२. वही — पृ० १०३

कड़ी होती है
नरम नरम होने पर
यही हवा
उन को दुलराती है
चाँद को दिखाती है
धूप से नहलाती है
रिमझिम की लोरियां सुनाती है
तालियां बजाते हैं
नाचते हैं गाते हैं
हवा की चपेटों के
दर्द भूल जाते हैं
केले के पत्ते ये।(१)

हवा केवल केले के ही पत्तों को नहीं दुलराती, बल्कि अपने मार्ग में आने वाली हर वस्तु को छेड़ती हुई गमन करती है। हरे-भरे पेड़ों के पत्तों, खेतों में लहराती हुई सरसों, गेहूँ, मटर और जौ से तो हवा क्रीड़ा करती ही है, पर इससे बड़ी बात यह है कि मंद-मंद चलने वाली पछुआ हवा कवि के पास आकर एक नई स्फूर्ति का संचार करती है और तब कहीं आगे बढ़ती है। हवा की गतिशीलता में जीवन का संगीत प्रकट होता है-

मन्द मन्द पछुआ हवा बह रही
लहरें उपजाती हुई बह रही
हरे भरे पेड़ों के पत्तों से
गेहूं, जौ, मटर और सरसों से
खेलती हुई घर के द्वार पर
आकर मुझ को छूकर लहरा कर
और कहीं आगे को जाती है।(२)

यथातथ्य और गतिशील बिम्ब एक-दूसरे के इतने निकट होते है कि एक संवेदनशील कवि दोनों को प्रायः अलग नहीं रख पाता। वह आरम्भ यथातथ्य बिम्ब से करता है, पर

---

१. ताप के ताये हुये दिन	त्रिलोचन शास्त्री	पृ० ३४
२. धरती	त्रिलोचन शास्त्री	पृ० ७४

थोड़ी ही देर में बिम्ब की स्थिरता गतिशीलता में परिवर्तित हो जाती है और पूरा बिम्ब गतिशील-बिम्ब की श्रेणी में आ जाता है। उदाहरण के लिये बादलों का यह चित्र देखा जा सकता है, जिसमें एक स्थिर बिम्ब को बड़े स्वाभाविक रूप में गतिशील बिम्ब बना दिया गया है-

स्लेटी बादल आसमान को घेर घिरे है,
कहीं जरा सा रन्ध्र नहीं है। जब तब बूंदा-
बांदी हो जाती है। फैल फैल कर मूंदा
बदली ने नभ-नील-नयन को। उधर तिरे हैं
बादल के ऊपर बादल, चहूँ ओर फिरे हैं
नाना रूपों-रेखाओं में, जैसे खूँदा
खूँदी बँधे अश्व करते हैं। सुन्दर फूँदा
किरणों का निकला, जिससे सांध्य चिरे है।(१)

लोक सांस्कृतिक-बिम्ब-

त्रिलोचन ग्राम्य-जीवन से सम्बद्ध कवि है। उनके काव्य में लोक-जीवन की अनुपम झाँकी देखने को मिलती है। न केवल ग्रामीण रीति-रिवाज, तीज-त्योहार तथा उनके सोच-विचार को कवि ने चित्रित किया है, बल्कि लोक-जीवन को उन्हीं की भाषा में चित्रित करने का यश त्रिलोचन को मिला है। जब कभी वे लोक-संस्कृति को स्पर्श करते हैं,तो उसके लिये लोक शब्दावली का भी यथावत प्रयोग करतें हैं जिससे समूचा परिवेश बिम्बित हो उठता है। जाड़े के दिनों में गांव का आनन्द जिन वस्तुओं के कारण कवि को आकृष्ट करता है, उन्हें एक लोक-सांस्कृतिक बिम्ब में पिरोकर कवि ने इस प्रकार प्रस्तुत किया है-

बैठ धूप में हरी मटर की घुंघनी खाना,
जाड़े का आनन्द यही है, रस गन्ने का
ताजा ताजा पीना, कोल्हाड़ों में जाना
इन उन बातों से मन बहलाना, बनने का
भाव न मन में आने देना, आवाजाही

१. शब्द त्रिलोचन शास्त्री पृ० २४

का तांता, रस का कड़ाह में पकना, झोंका
जाना गुलौर का, आलू ले कर मनचाही
संख्या में पकने के लिये पहुंचना। (१)

बसन्त के आने की सूचना कोकिल के कूकने से, आमों में बौर आने से, हवा के लहराने से और वनस्थली में भिन्न-भिन्न प्रकार के फूल खिलने से तो सभी को मिल जाती है, किन्तु इस बदलते हुये ऋतु-चक्र को लोक-जीवन में किस प्रकार हर्षोल्लास के साथ अभिनन्दित किया जाता है, इसे कोई लोक-कवि ही बता सकता है। त्रिलोचन ने लोक-जीवन को न केवल देखा है, बल्कि वे स्वयं उसका अंग रहे हैं। इसलिये वे जिन माध्यमों से बसन्त के आगमन की सूचना देते हैं, वे लोक-संस्कृति का प्रत्यक्ष उदाहरण हैं। निम्नलिखित पंक्तियों में उनका एक ऐसा ही लोक-सांस्कृतिक बिम्ब देखा जा सकता है-

चौताल की लहर में बोल ढ़ोल के उठे
गाँव ने फाग गा के कहा आ गया बसन्त
पहले की तरह आज भी फिर रेंड़ गड़ गये
हर कंठ ने गा गा के कहा आ गया बसन्त। (२)

कल्पना-बिम्ब-

त्रिलोचन जी की शैली वर्णनात्मक होने के कारण उसमें कल्पना या अलंकृत बिम्बों का प्रयोग अधिक नहीं हुआ। मोटे तौर पर वे सपाट बयानी से ही अपना मन्तव्य प्रकट कर देते हैं। कविता में चमत्कार प्रदर्शन कभी उनका लक्ष्य नहीं रहा, इसलिये लक्षणा-व्यंजना आदि शक्तियों का भरपूर इस्तेमाल करने के बावजूद वे बाहर से अभिधा के कवि दिखते हैं। पर इसका अर्थ यह नहीं है कि उन्होंने आवश्यकतानुसार बिम्ब निर्माण हेतु अलंकारों का प्रयोग बिल्कुल न किया हो। उपमा, रूपक और मानवीकरण अलंकारों का उपयोग कर उन्होंने अनेक सुन्दर अलंकृत बिम्बों की सृष्टि की है। ''झापस'' कविता में त्रिलोचन ने उपमा और मानवीकरण अलंकारों के माध्यम से निम्नलिखित अलंकृत-बिम्ब प्रस्तुत किया है-

---

१. उस जनपद का कवि हूँ — त्रिलोचन शास्त्री — पृ० ७४
२. 'स्थापना' (७ सितम्बर १६७०) कवि त्रिलोचन — डॉ० रणजीत — पृ० ७२-७३

सुरमई है
दिन की आभा
छाया सी सभी ओर छाई है
बादलों ने हलकी अँगड़ाई ली
एक ओर चमक जरा बढ़ गई
हवा नए अँखुओं से यों ही बतियाती है
उनका सिर हिलता है
फूल खिलखिलाते हैं। (१)

प्राकृतिक पदार्थों का सौन्दर्य चित्रित करते समय वह हर वस्तु को सप्राण रूप में अंकित करता है। प्रकृति, मनुष्यों की तरह हाव-भाव प्रदर्शित करती है। प्रकृति में मानवीकरण करके कवि अपनी कल्पना से जीवन्त अलंकृत-बिम्ब खड़ा कर देता है। 'पृथ्वी-आकाश' कविता में त्रिलोचन जी ने पवन का अलंकृत-बिम्ब निम्नलिखित पंक्तियों में अंकित किया है-

पवन
शाम बीतने पर
बँसवारी में
छिप कर आता है
रुक रुक कर
बाँसुरी बजाता है। (२)

'बरसाती रात' कविता में घटाओं को कवि अपनी उर्वर कल्पना से ही नृत्यांगनाओं का स्वरूप प्रदान करता है-

आई थीं घटाएं अभी
नाच कर चली गयीं। (३)

भाव-बिम्ब-

त्रिलोचन एक भावुक कवि है। वे सृष्टि के कण-कण के साथ अपना गहरा

---

१. ताप के ताये हुये दिन — त्रिलोचन शास्त्री — पृ० ३७
२. वही — पृ० १६
३. वही — पृ० १८

रागात्मक सम्बन्ध बनाकर चलते हैं। मनुष्य जीवन के साथ वे जिस सहज भाव के साथ जुड़ते हैं, उसी सहजता के साथ वे प्रकृति से भी रागात्मक सम्बन्ध स्थापित कर लेते हैं। 'चांदनी चमकती है गंगा बहती जाती है' कविता में वे गंगा के किनारे खड़े-खड़े धरती और आकाश दोनों को नाप लेते हैं। आकाश में रंग-बिरंगे बादलों का सौन्दर्य पान करके वे खेतों की ओर प्रयाण करते हैं और वहाँ फैली हरियाली के साथ अपना आत्मीय सम्बन्ध स्थापित करते हैं। अन्त में उनका यथार्थ बोध उन्हें जगत में व्याप्त करुणा की ओर ले जाता है और वे भावुक होकर पूरे वातावरण का एक चित्र खींचने लगते हैं-

है सन्नाटा बढ़ रहा
रात भी बीत रही है
सारा आलम सोया है
पशु पंक्षी सोये हैं
तो अर्थहीन
कुछ अर्थपूर्ण
स्वर जग में ब्याये
फिर कौन कहे
दुनिया कब,
क्या क्या, जीत रही है
तब कौन किसे समझाये
सब खोए खोए हैं
फिर कौन कहाँ तक जन-जन की
करुणा को नापे
चाँदनी चमकती है गंगा बहती जाती है।(१)

कवि ने चांदनी रात में प्रकृति के सौन्दर्य को बार-बार देखा है। जब वह अपनी प्रिया के साथ इस सौन्दर्य का दर्शन करता है, तो उसका आनन्द कुछ और ही होता है, किन्तु जब वह अकेले पुनः उन्हीं स्थानों को देखता है, तो बीते दिनों की स्मृतियाँ

---

1. धरती त्रिलोचन शास्त्री पृ० ३२

उसे भावुक कर देती हैं। दृश्य तो वही होते हैं, किन्तु प्रिय के अभाव में उनका प्रभाव पहले जैसा नहीं होता। अतीत की स्मृतियों में कवि खो जाता है-

तुम्हें याद है रात अँजोरिया? हम तुम दोनों
नहीं सो सके, रहे घूमते नदी किनारे
मुग्ध देखते प्यार भरी आँखों से प्यारे
भूमि गगन के रूप रंग को।...........
....
वही नदी है, वही रात है किन्तु अकेला
अब मैं ही हूं पहले की सुधियों से खेला।(१)

कवि जब तक जीवन यथार्थ से जूझता रहता है, तब तक उसके मन में विचारों का आधिपत्य रहता है, किन्तु जब वह एकान्त में होता है, तब उसे जीवन की मधुर स्मृतियाँ आकर घेर लेती हैं। प्रिय की याद आते ही कवि भावुक हो उठता है और बीते हुये दिनों का सम्पूर्ण घटना-चक्र चलचित्र की भाँति उसके मानस पटल पर हिलोरें लेने लगता है-

तुम्हें याद है, उस दिन बाबा के पोखर में
हम तुम दोनों साथ स्नान करने पहुंचे थे,
पहले बोल न बात हुई बाहर या घर में,
इधर उधर की तीरों पर बैठे सकुचे थे,
जल उछालते, राह ताकतें, कोई आये
अपना हेलीमेली...........................।(२)

सान्द्र-बिम्ब-

त्रिलोचन ने छोटीं कविताएं भी लिखी है और लम्बी कविताएं भी। उनकी छोटी कविताएं इतनी छोटी हैं कि उन्हें बड़ी आसानी से 'हाइकू' की श्रेणी में रखा जा सकता है। इन तीन-तीन, चार-चार पंक्तियों की कविताओं में सान्द्र-बिम्ब का घनत्व स्पष्ट दिखाई देता है। प्रथम दृष्टया हो सकता है कि ये पंक्तियाँ कोरा वर्णन अथवा वक्तव्य प्रतीत हों, किन्तु यदि थोड़ा रुक कर इन पंक्तियों के अन्दर प्रवेश करने का प्रयास किया

---

१. दिगन्त — त्रिलोचन शास्त्री — पृ० २४
२. उस जनपद का कवि हूँ — त्रिलोचन शास्त्री — पृ० २६

जाये तो तीन पंक्तियों में ही कथा के सौन्दर्य का आनन्द प्राप्त किया जा सकता है। उदाहरण के लिये निम्न पंक्तियाँ दृष्टव्य हैं-

पीछे उषाएं हैं
और आगे संध्याएं पंक्तिबद्ध
बीच में मै मेरा आकाश।(१)

इस कविता में कोरा प्रकृति वर्णन नहीं है, बल्कि समकालीन जीवन के सत्य को यहाँ एक बिम्ब के माध्यम से उद्घाटित किया गया है। उषाओं और सन्ध्याओं के बीच खड़े सूरज के समान इन्सान भी जीवन में उषाओं को छोड़कर सन्ध्याओं की तरफ आगे बढ़ रहे हैं। यही सत्य कवि यहाँ पर उद्घाटित करना चाहता है।

त्रिलोचन के सान्द्र-बिम्बों में कुछ चित्र ऐसे भी हैं, जिन्हें हम रोजमर्रा की जिन्दगी में गली-मुहल्लों से आते-जाते देखते हैं, लेकिन हमारे लिये यह इतनी आम बात होती है कि हम उस पर ध्यान नहीं देते। त्रिलोचन ऐसे ही सामान्य और उपेक्षित विषयों को अपनी सूक्ष्म दृष्टि और संयोजन से असाधारण बना देते हैं। जैसे-

आँख मूँदे, पेट पर सिर टेक
गाय करती है घमौनी बंधी जड़ से
पेड़ की छाया खड़ी दीवार पर है।(२)

इसी प्रकार जाड़े की धूप में मेमनों के कुदकने की कवि एक सान्द्र-बिम्ब के माध्यम से इस तरह प्रस्तुति करता है कि उसमें से जीवन का उत्साह फूट पड़ता है-

मेमने कुदकते हैं
जाड़े की धूप को जीवन के खेल से
आँक-आँक देते है।(३)

<u>विवृत-बिम्ब-</u>

त्रिलोचन ने या तो सपाट बयानी द्वारा अपनी बात कह दी है या फिर सान्द्र-बिम्ब में ढ़ालकर प्रस्तुत किया है, किन्तु कहीं-कहीं उन्होंने अपने हृदय से विस्तृत विचार-सौन्दर्य को व्यक्त करने के लिये विवृत-बिम्बों का सहारा भी लिया है। सम्पूर्ण पृथ्वी उस पर रहने वाले मनुष्य और मनुष्येत्तर जीव-जगत के प्रति अपने कर्तव्य-बोध का

---

१. अरधान	त्रिलोचन शास्त्री	पृ० ०६
२. अरधान	त्रिलोचन शास्त्री	पृ० २५
३. त्रिलोचन के बारे में :	सं० गोविन्द प्रसाद	पृ० २३६ से उद्धृत

स्मरण करता हुआ कवि एक विवृत-बिम्ब खींचता है-

इस पृथ्वी की रक्षा मानव का अपना कर्तव्य है
इसकी वनस्पतियाँ चिड़ियाँ और जीव-जन्तु
उसके सहयात्री हैं इसी तरह जलवायु और सारा आकाश
अपनी अपनी रक्षा मानव से चाहते हैं
उन की इस रक्षा में मानवता की भी तो रक्षा है
नहीं, सर्वनाश अधिक दूर नहीं
दिन रात प्रातः सन्ध्या कितने अलग अलग रूपों में
आते हैं, कोई इन्हें देखे या अनदेखा कर जाय,
इनकी आपत्ति का पता नहीं चलता
मानव का सारा सौन्दर्य-बोध जब विकास करता है
तब इन का अपना क्या योगदान रहता है
आँखे ही इसे देख सकती है।
मैं उसी समग्रता को देखने का आदी हूँ।(१)

मनुष्य-जीवन को खुशहाल बनाने के लिये कोई अदृश्य-शक्ति नहीं आयेगी, मनुष्य स्वयं अपनी पीड़ा से मुक्ति का जब उपाय करेगा, तभी उसे अभीष्ट फल प्राप्त होगा। मनुष्यों में भी विशेष रूप से किसानों-मजदूरों की ओर कवि आशा भरी दृष्टि से ताकता है, क्योंकि उसे विश्वास है कि उनके पास असीम शक्ति है, वे जिस क्षण अपनी शक्ति को पहचान लेंगें, उसी क्षण वे दुनिया से अन्याय और अनाचार को समाप्त कर देगें। श्रमिकों और कृषकों को इसी शक्ति का स्मरण करते हुये कवि एक विवृत-बिम्ब खड़ा करता है-

जीवित मानव महिमा तुम से
तुम मानव जीवन के धर्ता
तुम मानव जीवन के कर्ता

---

१. ताप के ताये हुये दिन — त्रिलोचन शास्त्री — पृ० ६३

तुम मानव जीवन के हर्ता
विपुल शक्तियों के निधान तुम
अपमानित जीते धरती पर
अपना शक्ति-प्रकाश दिखा दो
क्षय कर अत्याचार, अनय का
श्रमिक, कृषक भोगो वह अमृत
जो फल है जीवन मंथन का। (१)

तुलनात्मक निष्कर्ष-

आलोच्य कवियों ने कविता में बिम्ब की महत्ता प्रतिपादित की है। बिम्ब के लगभग सभी प्रकार इन कवियों में मिल जाते हैं। सबसे अधिक बिम्ब इन्द्रिय संवेदना से प्रसूत हैं। केदार ने आँख, कान, नाक, जिह्वा और त्वचा से ग्राह्य-बिम्बों का व्यापक विधान किया है। अनेक स्थलों पर उन्होंने मिश्रित संवेदनाओं के सुन्दर बिम्ब खड़े किये हैं। उनके यहाँ गन्ध, रस, स्पर्श, और ध्वनि को चित्रित करने वाले अनेक सार्थक बिम्ब हैं, किन्तु उन्होंने चाक्षुस बिम्बों का तुलनात्मक रूप से अधिक प्रयोग किया है। उनकी कवि-दृष्टि इतनी सूक्ष्म है कि वे वस्तु के अन्दर छिपी हुई सौन्दर्य राशि को भी बड़ी सहजता से उद्घाटित कर देते हैं।

नागार्जुन ने भी इन्द्रिय-संवेद्य-बिम्बों का सुन्दर विधान किया है। उनके यहाँ अलग-अलग इन्द्रियों से सम्बन्धित बिम्ब भी मिलते हैं और मिश्रित संवेदनाओं के बिम्ब भी। अधिकता मिश्रित संवेदनाओं के बिम्बों की है। वे इतने संवेदनशील हैं कि किसी दृश्य को देखकर उनकी सभी इन्द्रियाँ एक साथ सक्रिय हो उठती हैं। केदार और नागार्जुन के इन्द्रिय-संवेद्य बिम्बों में एक उल्लेखनीय अन्तर यह है कि नागार्जुन जहाँ किसी दृश्य में डूबकर मात्र आनन्दित होते हैं, वहाँ केदार उस दृश्य के मनुष्य-जीवन पर पड़ने वाले प्रभाव को भी चित्रित करते है, बल्कि प्रभाव-चित्रण में ही उनका मन अधिक रमा है। त्रिलोचन के यहाँ भी इन्द्रिय-संवेद्य-बिम्बों की अधिकता है। उनके बिम्ब तुलनात्मक रूप से अधिक व्यंजनागर्भी होते हैं। उन्होंने दृश्य और श्रव्य बिम्बों का सृजन तुलनात्मक रूप से अधिक किया है।

---

१. धरती त्रिलोचन शास्त्री पृ० १५

आलोच्य कवियों ने वस्तु जगत को स्थिर और गतिशील दोनों रूपों में देखा है, पर उनकी अधिक रुचि, गतिशील बिम्बों की ओर रही है। अपनी मानवीय संवेदनाओं से भरकर केदार प्रकृति के जड़ पदार्थों में भी जीवन का संगीत सुनते हैं, उन्हें प्रकृति के जड़ रूपों में भी जीवन के चिन्ह दिखाई देते हैं। इसलिये वे वस्तुओं के व्यापार-व्यंजक रूप की ओर अधिक आकृष्ट होते हैं। उनकी आरम्भिक रचनाओं में यथार्थ के प्रति अतिरिक्त मोह होने के कारण यद्यपि वस्तुपरक बिम्बों की बहुलता है, किन्तु उनकी परवर्ती रचनाओं में वस्तु को उसकी गत्यात्मक भूमिका में ही अधिक देखा गया है। नागार्जुन और त्रिलोचन ने भी अपनी प्रगतिशील जीवन दृष्टि के कारण गतिशील बिम्बों का सृजन अधिक किया है। त्रिलोचन और नागार्जुन के वस्तु-बिम्ब आरम्भ में पल भर के लिये स्थिर बिम्ब जैसे दिखते हैं पर थोड़ी ही देर में बिम्ब की स्थिरता गतिशीलता में परिवर्तित हो जाती है।

आलोच्य कवि यथार्थवादी जीवन-दर्शन से अनुप्राणित है। इसलिये उनके यहाँ अलंकृत बिम्बों का सृजन कम ही हुआ है, पर कवि जनोचित सहृदयता के कारण उन्होंने अनेक स्थलों पर सुन्दर भाव-बिम्बों का सृजन किया है। ये भाव-बिम्ब प्रायः अपने परिवारजनों अथवा मित्रों का स्मरण करते समय अधिक उभरे हैं।

केदार की कविताएं प्रायः लघु आकार की हैं। वे प्रायः जीवन की छोटी-छोटी बातों या घटनांओं को लेकर एक या दो पृष्ठ में कविता को समेट लेते हैं। उनकी कुछ कविताएं तो दो-दो, चार-चार पंक्तियों में ही पूरी हो जाती हैं ऐसी स्थिति में उनके यहाँ सान्द्र-बिम्ब स्वयमेव निर्मित हो जाते हैं। त्रिलोचन की कविताओं में केदार से भी अधिक कसावट दिखाई देती है, इसलिये उनके यहां भी सान्द्र-बिम्बों की संख्या अधिक है। किन्तु नागार्जुन की कविताओं में समाहार शक्ति का वैसा कलात्मक सौन्दर्य तुलनात्मक रूप से कम है। उन्होंने दो-दो, चार-चार पंक्तियों की कविताएं लिखने में कोई रुचि प्रदर्शित नहीं की। उनकी कविताएं केदार और त्रिलोचन की अपेक्षा अधिक पृष्ठ घेरती हैं। स्वभावतः उनके काव्य में सान्द्र-बिम्ब तुलनात्मक रूप से कम मिलते हैं। उनकी लम्बी कविताओं में ही अनेक स्थल ऐसे मिल जाते हैं, जहाँ उन्होंने अपनी भावनाओं को कसे हुए सान्द्र-बिम्बों का रूप दे दिया है। उनके यहाँ विवृत-बिम्ब तुलनात्मक रूप से अधिक मिलते हैं। केदार और त्रिलोचन में भी विवृत-बिम्बों के उदाहरण मिल जाते हैं किन्तु उनमें वैसा भाव-विस्तार नहीं दिखायी देता जैसा नागार्जुन के विवृत-बिम्बों में दृष्टिगत होता है।

-:0:-

अध्याय-७
आलोच्य कवियों का प्रतीक-सौन्दर्य

(1)- (क) प्रतीक का स्वरूप,

(ख) प्रतीक और बिम्ब में अन्तर,

(ग) प्रतीक के विविध प्रकार

(2) आलोच्य कवियों में प्रतीक-सौन्दर्य

(क) केदार की प्रतीक योजना - प्राकृतिक-प्रतीक, मार्क्सवादी-प्रतीक, पशु जीवन से सम्बद्ध प्रतीक, पौराणिक-ऐतिहासिक-प्रतीक, आर्थिक जीवन से सम्बद्ध प्रतीक आदि।

(ख) नागार्जुन की प्रतीक योजना - प्राकृतिक-प्रतीक, मार्क्सवादी-प्रतीक, पशु जीवन से सम्बद्ध प्रतीक, पौराणिक-ऐतिहासिक-प्रतीक, आर्थिक जीवन से सम्बद्ध प्रतीक आदि ।

(ग) त्रिलोचन की प्रतीक-योजना - प्राकृतिक-प्रतीक, मार्क्सवादी-प्रतीक, पशु जीवन से सम्बन्धित प्रतीक, पौराणिक-ऐतिहासिक-प्रतीक, आर्थिक जीवन से सम्बद्ध प्रतीक आदि ।

तुलनात्मक निष्कर्ष

अध्याय- ७

आलोच्य कवियों का प्रतीक-सौन्दर्य

(क) प्रतीक का स्वरूप- सौन्दर्यशास्त्र में प्रतीक का विशिष्ट महत्व है । प्रतीकों के सम्बन्ध में 'प्रसाद' जी की सबसे महत्वूपर्ण मान्यता यह है कि कला-जगत में सौन्दर्य-बोध को मूर्त्त बनाने तथा संवेदनों को आकार देने के लिये प्रतीकों की सृष्टि होती है। अर्थात् प्रतीकों के द्वारा कवि काव्य-निबद्ध भावों को मूर्तता और वस्तुमत्ता प्रदान करता है। इस मान्यता को उपस्थित करते हुये उन्होंने लिखा है- "सौन्दर्य-बोध बिना रूप के हो ही नहीं सकता। सौन्दर्य की अनुभूति के साथ ही हम अपने संवेदन को आकार देने के लिये, उनका प्रतीक बनाने के लिये बाध्य है।(१) सामान्यतः प्रतीक शब्द का प्रयोग उस दृश्य (अथवा गोचर) वस्तु के लिये किया जाता है, जो किसी अदृश्य (अगोचर या अप्रस्तुत) विषय का प्रतिविधान उसके साथ अपने साहचर्य के कारण करती है। अथवा यह कहा जा सकता है कि अन्य स्तर की समानरूप वस्तु द्वारा किसी अन्य स्तर के विषय का प्रतिनिधित्व करने वाली वस्तु प्रतीक है।(२) डॉ0 भागीरथ मिश्र ने प्रतीक की परिभाषा प्रस्तुत करते हुये लिखा है- "अपने रूप, गुण कार्य या विशेषताओं के सादृश्य एवं प्रत्यक्षता के कारण जब कोई वस्तु या कार्य किसी अप्रस्तुत वस्तु, भाव विचार, क्रियाकलाप, देश, जाति, संस्कृति आदि का प्रतिनिधित्व करता हुआ प्रकट किया जाता है, तब वह प्रतीक कहलाता है।"(३) वस्तुतः प्रतीक भावों की अभिव्यंजना की प्रस्तुति में सहायक का काम करते है। आचार्य शुक्ल ने भी लिखा है कि- "प्रतीक का आधार सादृश्य या साधर्म्य नहीं, बल्कि भावना जागृत करने की निहित शक्ति है।"(४)

धर्म, राजनीति, कला, समाजशास्त्र, मनोविज्ञान और विज्ञान सभी क्षेत्रों में प्रतीक का महत्व है। आर्थर साइमन्स का कहना है कि प्रतीक वाद का प्रारम्भ प्रथम पुरुष के प्रथम शब्दों से हुआ था(५)

१.	काव्य और कला तथा अन्य निबन्ध -	जय शंकर प्रसाद	पृ० ३५
२.	हिन्दी साहित्य कोश भाग-१-	सं.धीरेन्द्र वर्मा	पृ० ५१५
३.	काव्यशास्त्र-	भागीरथ मिश्र	पृ० २५५
४.	चिन्तामणि, भाग-२	आचार्य रामचन्द्र शुक्ल	पृ० १२६

5. " Symbolism began with the first words uttered by the first man, as he named every living thing or before then in heaven when god named the world in to being-

- The Symbolist movement in literature.

'इनसाइक्लोपीडिया ब्रिटेनिका' के अनुसार 'प्रतीक' शब्द उस दृश्य वस्तु के लिये आता है जो अपने सादृश्य के कारण साहचर्य से अदृश्य वस्तु का ज्ञान कराये।(१) चैम्बर्स शब्दकोश के अनुसार प्रतीक परम्परा के किसी अन्य वस्तु का प्रतिनिधत्व करते है(२)

मनोविज्ञान में भी प्रतीक का विस्तृत विवेचन हुआ है। 'मानविकी पारिभाषिक कोश' में प्रतीक के सम्बन्ध में लिखा है कि- "वह वस्तु या विचार, जो किसी अन्य वस्तु या विचार का प्रतिरूप हो अथवा उसका स्थापन्न बने । जिस मूल वस्तु या विचार-इच्छा का वह प्रतीक है वह सदैव गूढ़ अनिर्वचनीय, अप्राप्य और अज्ञात होता है। प्रतीक और मूल वस्तु या विचार में अटूट सम्बन्ध होता है जिससे प्रतीक को न यथार्थ वस्तु कहा जा सकता है, न अयथार्थ। प्रतीक अनेक हैं और इनसे व्यक्ति की विभिन्न प्रकृत इच्छाओं की व्यंजना होती है। प्रतीक सार्वभौम है, प्राचीन है।"(३) जेम्स ड्रेबर ने भी प्रतीक की ऐसी ही परिभाषा दी है।(४)

लक्ष्मीनारायण 'सुधांषु' ने प्रतीक के विषय में लिखा है कि- "प्रत्येक भाषा में कुछ ऐसे शब्द होते है जिनसे केवल अर्थ की व्यक्ति ही नहीं होती, वरन् भावनाओं का सद्बोध भी होता है। जिन वस्तुओं में तनिक भी निजी विशेषतापूर्ण आकर्षण है तथा जिन पर दीर्घ सांस्कृतिक वासना का प्रभाव पड़ा है वे शब्द हमारे काव्य में प्रतीक का काम करते है।(५) और "प्रत्येक देश की परिस्थिति तथा संस्कृति के विचार से प्रतीक भी भिन्न-भिन्न हुआ करते हैं।(६) डॉ0 रामकुमार वर्मा ने प्रतीक के विषय में कहा है कि- "प्रतीक व्यष्टि में समष्टि का संपोषण है।"(७) डॉ0 वर्मा ने प्रतीक के सम्बन्ध में जो मुख्य बातें कही है, वे निम्नवत् हैं-

---

1- " The term given to a visible object representing to the minds the sembolance of something which is not shown but realized by association with it."

- Encyclopedia Brittanica , P. 701

2- " That which by custom or convention represents something else."

Chamber's Dictonary, P. 1117

३. मानविक पारिभाषिक कोश : मनोविज्ञान खण्ड, सं० डॉ० पद्मा अग्रवाल पृ० २६४

4- An object or activity representing and standing as a substitute for something else."

A Dictonary of Psychology , P. 290

५. भारतीय काव्य शास्त्र की परम्परा : लक्ष्मी नरायण सुधांशु पृ० ४८२

६. वही पृ० ११२

७- साहित्य शास्त्र : डॉ० रामुकमार वर्मा पृ० ११८

(क) प्रतीक के द्वारा एक से अधिक भावों की अभिव्यक्ति की जाती है।

(ख) अर्थ-प्रेषण की दृष्टि से प्रतीक का सम्बन्ध शब्द-शक्ति की ध्वनि-शैली से है।

(ग) अर्थगत और व्यापारगत संश्लेषणशीलता के कारण प्रतीक एक में अनेक का संपोषण करता है।

डॉ0 वर्मा ने प्रतीकों के प्रति अपनी सैद्धान्तिक धारणा को कबीर के रहस्यवाद की विवेचना के क्रम में भी व्यक्त किया है।(१)

इस प्रकार, काव्य में वर्णित वह गोचर या अगोचर वस्तु जो किसी अन्य वस्तु या भाव का बोध कराये और जिसमें भाव जगाने की शक्ति हो, प्रतीक कहलाती है। प्रतीक शब्द अन्य शब्दों की अपेक्षा अधिक भाव निर्भर होते हैं।

(ख) प्रतीक और बिम्ब में अन्तर-

प्रतीक और बिम्ब एक नहीं है-उनमें पर्याप्त भिन्नता है।'बिम्ब अपेक्षाकृत अधिक स्वच्छन्द (आर्बिट्रेरी) और नानार्थ व्यंजक होते हैं, जबकि प्रतीक नियत और अचूक रूप से एकार्थ-व्यंजक होते हैं। प्रतीक अपेक्षाकृत अधिक परम्परागत और समाज स्वीकृति सापेक्ष होते हैं, बिम्ब कम, लगभग नहीं। प्रतीकों का प्रयोग एक ऐतिहासिक जीवन-प्रवाह की अपेक्षा रखता है, वह निरन्तर प्रयुक्त होते-होते ही नियत अर्थ और निश्चित रूप ग्रहण करता है। इसके विपरीत बिम्ब प्राय: आकस्मिक होते हैं, उनका जीवन प्रवाह-जीवन नहीं होता। इसलिये बिम्ब को बड़ी सरलता से कविता से बाहर निकालकर रखा जा सकता है और वहां भीवह जल से निकले हुये ताजे कमल की तरह अपना सौन्दर्य बनाये रख सकता है। प्रतीक कविता से बाहर निकल कर अपना अर्थ चाहे बनाये रखे, पर अपना कलात्मक सौन्दर्य अवश्य खो देता है।(२) बिम्बविधान एक प्रकार का सफल सम्मूर्तन है जिसमें चित्रोपमता रहती है किन्तु प्रतीक में ऐसी चित्रोपमता अथवा सम्मूर्तन की कोई आवश्यकता नहीं रहती, इसमें प्रभाव साम्य एवं प्रभविष्णुता को महत्व दिया जाता है।(३) इतना भेद होते हुये भी प्रत्येक बिम्ब मूलत: प्रतीकात्मक होता है और बार-बार दुहराये जाने पर एक बिम्ब

१.	कबीर का रहस्यवाद	:	डॉ० रामकुमार वर्मा	पृ० ७०-८६
२.	'छायावाद'	:	सं० उदयभानुसिंह में संकलित केदारनाथ सिंह का निबन्ध	पृ० १२७
३.	सौन्दर्य शास्त्र के तत्व	:	कुमार विमल	पृ० २६४

प्रतीक का रूप धारण कर लेता है। वास्तव में शब्द का रूढ़ प्रयोग प्रतीक कहलाता है- किन्तु रूढ़ होकर कोई शब्द अपनी बिम्ब शक्ति नहीं खो बैठता है, उसमें चित्र उपस्थित करने की क्षमता तब भी रहती है।

(ग) प्रतीक के विविध प्रकार-

सौन्दर्यशास्त्र में प्रतीक का विशिष्ट महत्व है। भारतीय काव्यशास्त्र में प्रत्यक्ष रूप से प्रतीक पर विचार नहीं हुआ। परन्तु परवर्ती आचार्यो द्वारा प्रतीकों के वर्गीकरण तथा प्रकारों पर चर्चाएं हुई हैं। आचार्य शुक्ल ने दो प्रकार के प्रतीकों का उल्लेख किया है- "एक तो मनोविकारों या भावों को जगाने वाले (Emotional Symbolism) और दूसरे, भावनाओं या विचारों को जगाने (Intellectual Symbolism) वाले । भावना या कल्पना जगाने वाले प्रतीकों के साथ भाव या मनोविकार भी प्रायः लगे रहते हैं।(२)" शुक्ल जी द्वारा किया गया यह वर्गीकरण प्रतीक के प्रभाव की दृष्टि से है, आधार या ग्रहण की दृष्टि से नहीं। उन्होंने आगे यह भी स्पष्ट किया है कि काव्य में परम्परागत प्रतीकों का ही व्यवहार होता आया है और हो सकता है, क्योंकि उनके दीर्घ समय से कल्पना का अंग और भावों का विषय रहने के कारण उनमें शक्ति का संचय हो जाता है।(३)

लक्ष्मीनारायण 'सुधांशु' ने आचार्य शुक्ल के समान उपर्युक्त दो प्रकार के ही प्रतीक माने है, लेकिन उनका कहना है कि- "दोनों में से किसी एक का भी शुद्ध उदाहरण चुनना कुछ कठिन है। प्रायः सब भावोत्पादक प्रतीकों में विचार मिले रहते है और उसी प्रकार प्रायः सब विचारोत्पादक प्रतीकों में भाव की स्थिति बनी रहती है। दो भेद करने का तात्पर्य भाव और विचार की प्रधानता और गौणता से है।(४)" डॉ0 रामअवध द्विवेदी ने तीन प्रकार के प्रतीकों की चर्चा की है- परम्परागत, व्यक्तिगत और प्राकृतिक ।(५)

स्रोत के आधार पर कैलाश बाजपेई ने प्रतीकों को तीन प्रकार का माना है-

---

१.	छायावादोत्तर हिन्दी काव्य में बिम्ब विधान,	डॉ० उमा अष्टवंश	पृ० १७
२.	चिन्तामणि (भाग-२)	आचार्य रामचन्द्र शुक्ल	पृ० १०६
३.	वही		पृ० १०६
४.	भारतीय काव्य शास्त्र की परम्परा	लक्ष्मीनारायण सुधांशु	पृ० ४८२
५.	आलोचना, जुलाई १६५७ अंक में प्रकाशित निबन्ध 'काव्य में प्रतीक विधान'	डॉ० राम अवध द्विवेदी	पृ० ३०

(क) सांस्कृतिक- 1. पौराणिक प्रतीक 2. ऐतिहासिक प्रतीक, 3.धार्मिक प्रतीक

(ख) प्रकृत- 1. जड़ प्रतीक 2. चेतन प्रतीक

(ग) सैद्धान्तिक- 1. वैज्ञानिक प्रतीक 2. दार्शनिक प्रतीक, 3.राजनीतिक प्रतीक(१)

नरेन्द्र मोहन ने भी स्रोत के आधार पर प्रतीकों का लगभग वही वर्गीकरण करके बाजपेई जी द्वारा किये गये वर्गीकरण की संस्तुति की है- 1. प्राकृतिक प्रतीक 2. सांस्कृतिक प्रतीक 3. सैद्धान्तिक प्रतीक

इन वर्गो का विश्लेषण करते हुये उन्होंने लिखा है कि प्रकृति के जड़-चेतन क्षेत्रों से सम्बद्ध प्रतीकों को प्राकृतिक प्रतीक अथवा प्रकृति के क्षेत्रों में गृहीत प्रतीक कहा जा सकता है। सांस्कृतिक प्रतीकों के अन्तर्गत पुराण, इतिहास, धर्म से सम्बद्ध प्रतीकों को लिया जा सकता है। सैद्धान्तिक प्रतीकों के अन्तर्गत ऐसे प्रतीक आते हैं, जो वैज्ञानिक, दार्शनिक और राजनीतिक संदर्भो से स्फूर्त हों अथवा जिनमें विज्ञान, दर्शन एवं सिद्धान्तों का प्रतीकात्मक विधान किया गया हो। सैद्धान्तिक प्रतीकों के अन्तर्गत प्रविधि के अन्य क्षेत्रों से गृहीत प्रतीकों को भी लिया जा सकता है।(२)

डॉ0 रणजीत के अनुसार स्रोत के आधार पर काव्य-प्रतीकों को निम्नलिखित वर्गीकरण में रखा जा सकता है- 1. प्रकृति सम्बन्धी 2. पौराणिक-धार्मिक 3. ऐतिहासिक 4. वैज्ञानिक और औद्योगिक जीवनसे सम्बन्धित 5. सामाजिक, राजनैतिक जीवन से सम्बन्धित प्रतीक।(३)

परन्तु आज की कविता में प्रतीक विधान को कुछ निश्चित वर्गो में सीमाबद्ध नहीं किया जा सकता, क्योंकि आधुनिक कविता जीवन के विभिन्न क्षेत्रों से अपनी विषयवस्तु का चयन करने के लिये स्वतंत्र है इसलिये प्रतीक-चयन में कवि किसी भी क्षेत्र से अपना सम्बन्ध जोड़ सकता है और चूंकि मानव-जीवन का क्षेत्र असीम है, इसलिये प्रतीकों का भी स्रोत के आधार पर कोई अन्तिम वर्गीकरण प्रस्तुत कर पाना सम्भव नहीं है।

---

१. आधुनिक हिन्दी कविता में शिल्प : कैलाश बाजपेई पृ० ७७-७८

२. आधुनिक हिन्दी कविता में अप्रस्तुत विधान : नरेन्द्र मोहन पृ० ५७

३. हिन्दी की प्रगतिशील कविता : डॉ० रणजीत पृ० ३२५

आलोच्य कवि स्पष्ट और प्रत्यक्ष कथन में अधिक विश्वास रखते है, इसलिये प्रतीक-विधान के प्रति इन्होंने बहुत रुचि नहीं दिखायी, पर चूँकि इनके काव्य में एक ऐसी राजनीतिक विचारधारा को अभिव्यक्ति दी गयी है- जिसका भारत की सरकार से कभी भी सीधा तालमेल नहीं बैठा, इसलिये अनेक स्थलों पर प्रतीकों का प्रयोग करना इनके लिये अनिवार्य सा हो गया है। ये प्रतीक बिना किसी आवश्यकता के सिर्फ प्रतीकों के लिये प्रस्युक्त नहीं हुये है, इसलिये इनकी प्रतीकात्मक छवि का अपना महत्व है।

2. आलोच्य कवियों में प्रतीक-सौन्दर्य

(क) केदार की प्रतीक-योजना-

केदार के काव्य में प्रतीकों का भरपूर उपयोग किया गया है। प्रतीकों के प्रयोग से उनकी कविता में कलात्मकता आ गयी है। प्रतीक उनके लिये कोई विवशता नहीं है, किन्तु जब उन्हें लगता है कि बात को सीधे-सीधे कहने से उसका प्रभाव उतना नहीं पड़ेगा, तब वे प्रतीकों के माध्यम से विषय की प्रभविष्णुता को बढ़ाते हैं। उन्होंने प्रतीकों का चयन करते समय प्राय: परम्परागत प्रतीक-विधान से स्वयं को बचाने का प्रयास किया है और यथासम्भव नये प्रतीकों की योजना की है। उनके यहां लगभग हर क्षेत्र से प्रतीक चुने गये हैं- प्रकृति, पशु-जीवन, आर्थिक-जीवन, मार्क्सदर्शन और पौराणिक-ऐतिहासिक क्षेत्र।

प्राकृतिक-प्रतीक-

केदार ने प्रकृति के क्षेत्र से अनेक प्रतीक लेकर वर्तमान सामाजिक-जीवन की विसंगति को प्रभावशाली ढंग से चित्रित किया है। मुख्य रूप से उन्होंने जिन प्राकृतिक प्रतीकों का उपयोग किया है वे है- आग, आलोक, अंधकार, गंगा, गर्रा नाला, कोयला, कोहरा, पहाड़, सूरज, दिन, कली, बबूल, कमल इत्यादि। 'दो जीवन' शीर्षक कविता में केदार ने एक ओर ऐश्वर्य और वैभव में पलने वाले तथा दूसरी ओर निरीह और निराश्रित सर्वहारा के जीवन को 'कली' और 'बबूल' के प्रतीकों के माध्यम से सफल अभिव्यक्ति प्रदान की है-

कली निगाह में पली,
हिली-डुली कपोल में,
हृदय-प्रदेश में खिली,
तुली हँसी की तोल में।

गरम गरम हवा चली
अशान्त रेत से भरी,
हरेक पाँखुरी जली,
कली न जी सकी, मरी।
बबूल आप ही पला,
हवा से वह न डर सका,
कठोर जिन्दगी चला,
न जल सका; न मर सका।'(१)

इन पंक्तियों में सुविधाभोगी-वर्ग और सर्वहारा के जीवन को कली और बबूल के माध्यम से चित्रित किया गया है और यह व्यंजित किया गया है कि सारी सुख-सुविधाओं के बावजूद जब क्रान्ति की गरम हवायें चलती है, तो कली के समान कोमल पूंजीपति वर्ग जलकर राख हो जाता है। किन्तु बबूल अपने बलबूते पर पलता-बढ़ता है।, कठोर जिन्दगी जीता है, विपरीत परिस्थितियों का सामना करने की उसमें अद्‌भुत शक्ति होती है। वह भीषण यातना सहकर भी न जलता है, न मरता है।

केदार प्रगतिशील कवि होने के कारण क्रान्ति को सामाजिक-परिवर्तन के लिये अनिवार्य शर्त मानते हैं। कहीं तो उन्होंने सीधे-सीधे क्रान्ति का शंखनाद किया है और कहीं क्रान्ति-चेतना को वाणी देने के लिये 'आग' का प्रतीकात्मक उपयोग किया है। एक दीन दुखी कुनबे का जीवन चित्रित करते समय वे अनुभव करतें है कि अभी इन शोषितों के हृदय में ही क्रान्ति की आग सुलग रही हैं, उसका आरम्भिक संकेत मिलने लगा है, किन्तु आग में वह ज्वाला नही बन पाई, जो समग्र क्रान्ति के लिये आवश्यक है। अन्दर ही अन्दर आग सुलग रही है, धुआँ उठ रहा है, पर ज्वाला बनकर बाहर निकलनें की स्थिति अभी नहीं बन पाई। सर्वहारा के अन्दर विकसित हो रही इस क्रान्ति चेतना को कवि ने इन शब्दों में अनावृत किया है-

ताप रहा है कौड़ा !!
लकड़ी कण्डे सुलग रहे है,

---

१. फूल नही रंग बोलते हैं केदारनाथ अग्रवाल पृ० २४

आग लगी है,

थोड़ी-थोड़ी लपक उठी है,

धुआं बढ़ा है,

बाहर नहीं निकल पाता है

सबको घेरे रह जाता है।(१)

सामाजिक यथार्थ को चित्रित करने के लिये कवि ने प्रायः प्राकृतिक-प्रतीकों का सहारा लिया है। प्रकृति केदार के काव्य का महत्वपूर्ण प्रतिपाद्य रही है। उन्होंने आलोक और अन्धकार दोनों की आँख-मिचौनी का दृश्य बार-बार देखा है। उन्होंने देखा है कि आलोक के लगातार आक्रमण करने पर भी अंधकार पूरी तरह से नहीं मिट पाता, पर वह निश्चित भी नहीं रह पाता, क्योंकि उसे आलोक के आक्रमण का भय बराबर बना रहता है। विडम्बना यह है कि अन्धकार से लड़ते-लड़ते आलोक भी उसके प्रति अब कुछ सहृदय हो गया है और इसलिये अन्धकार पर उसका दबाव भी कम हो गया है। ऐसी स्थिति में कवि यहां-वहां ढूंढता है कि शायद कोई मिल जाये जो अंधकार की पोल खोल सके और उसके प्रभाव को समाप्त कर सके। आलोक और अंधकार का उपयोग केदार ने क्रमशः सफेदपोश राजनेताओं और शोषक पूंजीपतियों के रूप में किया है उनकी चिन्ता इन शब्दों में प्रकट हुई है-

आलोक की हो गयी

अन्धकार से सांठ-गांठ

कौन है कि अब अन्धकार का उद्घाटन करे?(२)

अंधेरे का प्रभाव इतना गहरा और दीर्घकालिक है कि उसे देखकर प्रकृति स्वयं बेचैन हो उठी है। कवि की कल्पना है कि उसके सामने शोषित और दमित रात हाथ जोड़े पौ फटने की गुहार लगा रही है ताकि जलता हुआ सूरज निकले और कालिमा को समूल नष्ट कर दे। 'जलती ज्वाल' और 'पौ फटना' प्रकृति के ऐसे उपादान है जिन्हें कवि साम्यवादी क्रान्ति और उसके फलस्वरूप आने वाले साम्यवादी समाज का प्रतीक मानता है। कवि इस बात को निम्नलिखित रूपक में ढाल

१.	गुलमेंहदी	केदारनाथ अग्रवाल	पृ०.५४
२.	फूल नही रंग बोलते हैं	केदारनाथ अग्रवाल	पृ०.१६७

कर सजीव रूप में प्रस्तुत करता है-

मैंने देखा
लम्बी रात
मेरे दरवाजे के पास
काला कम्बल ओढ़े आई
वह रोती है
लम्बे काले बाल
चुचुआते हैं,
तन भीगा है
बेबोले ही,
कँपते कँपते हाथ बढ़ाये
माँग रही है जलती ज्वाल
पौ फटने की।।(१)

कवि को पूरा विश्वास है कि अंधकार का साम्राज्य अब और चलने वाला नहीं है। बहुत जल्दी दिन निकलेगा और सूरज की रोशनी में अंधकार की सेना या तो हताहत हो जायेगी या फिर आत्मसमर्पण के लिये विवश हो जायेगी। यहां पर अंधकार का उपयोग कवि ने पूंजीवादी व्यवस्था और उसको चलाने वाले पूंजीवादी मानसिकता के लोगों के लिये किया है और सूरज, दिन तथा धूप को साम्यवादी समाज का प्रतीक माना है। कवि प्रकृति के इस संग्राम को मनुष्य समाज के परिपार्श्व में इस तरह देखता है-

हताहत हो गयी
अंधकार की सेना
और अब
सीने से लगाये सूरज का तमगा
सामने खड़ा है दिन

---

१. जो शिलायें तोड़ते हैं, केदारनाथ अग्रवाल पृ०.१३१

जमीन और आसमान खुश है
जवान धूप से।(१)

केदार ने जिन-जिन क्षेत्रों से प्रतीकों का चयन किया है उनमें प्रकृति का स्थान सर्वोपरि है। प्रकृति के साथ कवि का निकट का सम्बन्ध है और वह उनके भिन्न-भिन्न रूपों को प्रतीकों में ढ़ालकर सहज ढंग से अपनी बात को कह देता है। 'युग की गंगा' कवि के लिये सशक्त साम्यवादी क्रान्ति-चेतना का प्रतीक है। कवि को विश्वास है कि जब क्रान्ति की धारा पूरे वेग के साथ प्रवाहित होगी तब वह सामने के सारे अवरोधों को ध्वस्त करते हुये आगे बढ़ जायेगी। रूढ़ियों और कुत्सित परम्पराओं की मजबूत चट्टानें भी उसका मार्ग न रोक पायेंगी। उसके थपेड़ों से आहत होकर चट्टानें स्वयं टूट जायेंगी-

युग की गंगा
पाषाणों पर दौड़ेंगी ही,
लम्बी, ऊँची,
पथ को रोके
चट्टानों को तोड़ेगी ही।(२)

'पहाड़ और पत्थरों' को कवि ने कभी रूढ़ियों और परम्पराओं का प्रतीक माना है और कभी सीधे-सीधे पूंजीपतियों, शोषकों का प्रतीक बना दिया है, जो लोकतंत्र के लिये सबसे बड़ा खतरा बने हुये हैं। जब तक इन पहाड़ जैसे पूंजीपतियों को सामने से न हटाया जायेगा, तब तक लोकतंत्र की वास्तविक स्थापना सम्भव नहीं है। इन पहाड़ों के रहते आम जनता को उसका अधिकार नहीं मिल सकता। कवि बार-बार इस पहाड़ को काटने की बात इसीलिये करता है-

वही है एक
बीच में खड़ा पहाड़

१.	आग का आईना	केदारनाथ अग्रवाल	पृ०.८६
२.	गुलमेंहदी	केदारनाथ अग्रवाल	पृ०.१६

जिसे काटना जरूरी है
जनतंत्र की सड़क के लिये
इस पार से
उस पार जाने के लिये
अपना अधिकार पाने के लिये।(१)

कवि की कलम में इतनी शक्ति है कि वह प्रकृति के कोमल और तरल रूपों को भी इतनी ऊर्जा से भर देता है कि रूढ़ियों और परम्पराओं की चट्टानें पानी के प्रहार को भी नहीं सह पाती और खुद-ब-खुद टूटकर बिखर जाती हैं। केन का पानी कवि की इसी शक्ति से ऊर्जस्वित होकर संगठित-मजदूर-क्रान्ति का रूप धारण कर लेता है और चट्टानी किनारा रूढ़ियों और परम्पराओं का प्रतीक बन जाता है। अपनी आशा और मान्यता के अनुरूप पानी और चट्टानों का यह संघर्ष कवि की निम्नलिखित पंक्तियों में देखा जा सकता है-

तेज धार का कर्मठ पानी,
चट्टानों के ऊपर चढ़कर,
मार रहा है
घूँसे कस कर
तोड़ रहा है तट चट्टानी।(२)

केदार ने बढ़ते हुये जल के कई रूपों को श्रम-शक्ति और क्रान्ति के प्रतीक में ढ़ालकर चित्रित किया है। 'गर्रानाला' बांदा के प्राकृतिक परिवेश का एक विशिष्ट आकर्षण है। केदार ने उसे एक कामरेड नेता का प्रतीक बनाकर सम्पूर्ण क्रान्ति का बिगुल बजाया है-

काली मिट्टी, काले बादल का बेटा है।

---

१. आग का आईना — केदारनाथ अग्रवाल — पृ०.७२
२. फूल नही रंग बोलते है — केदारनाथ अग्रवाल — पृ०.६७

टक्कर पर टक्कर देता, धक्के देता है।।
रोड़ों से वह बेहारे लोहा लेता है।
नंगे, भूखे, काले लोगों का नेता है।।(१)

पानी ही नहीं कोयला भी केदार के लिये जागरूक सर्वहारा का प्रतीक है। यही कारण है कि जब कोयला जलता है तो उसकी लपटों में केदार को खूनी सवेरा (साम्यवादी क्रान्ति) का एक दृश्य दिखाई देता है। मजदूरों की इसी क्रान्ति चेतना को कवि ने 'कोयला' शीर्षक कविता की निम्नलिखित पंक्तियों में प्रतीकात्मक अभिव्यक्ति दी है-

जल उठे है तन बदन से
क्रोध में शिव के नयन से।
खा गये निशि का अँधेरा,
हो गया खूनी सेवरा।
जग उठे मुरदे बेचारे,
बन गये जीवित अंगारे।
रो रहे थे मुँह छिपाये,
आज खूनी रंग लाये।(२)

मार्क्सवादी-प्रतीक-

केदार प्रगतिशील चेतना-सम्पन्न कवि है, इसलिये उनकी कविताओं में मार्क्स-दर्शन से सम्बद्ध प्रतीक काफी संख्या में प्रयुक्त हुये है। मार्क्स-दर्शन लाल क्रान्ति पर विश्वास करता है और इस क्रान्ति को लाने के लिये जो राजनीतिक दल आगे बढ़ता है, वह साम्यवादी दल के नाम से जाना जाता है। इस दल का चिन्ह है 'हँसिया और बाली'। कवि को इसलिये खेत में मुट्ठी बाँधे हुये गेहूँ लाल फौज के सैनिक-सा दिखाई देता है जो दृढ़ता के साथ पूंजीवादी व्यवस्था से जूझने को तैयार खड़ा है-

ताकत से मुट्ठी बाँधे है,

---

१. गुलमेंहदी केदारनाथ अग्रवाल पृ०.२५
२. वही पृ०.६१

नोकीले भाले ताने है,
हिम्मत वाली लाल फौज-सा
मर मिटने को झूम रहा है।।(१)

लाल फौज साम्यवादी क्रान्ति की वाहिका है और कवि इसीलिये उसे स्मरण करता है। इस क्रान्ति में मजदूरों के हँसिया और हथौड़े को उनकी शक्ति के रूप में स्वीकार करते हुये उसे एक प्रकार का प्रतीक मान लिया गया है। केदार जब जोश में होते है, तब वे मजदूरों का आवाहन करते हुये हँसिया और हथौड़ा का स्मरण करना नहीं भूलते। वे मजदूरों के इन हथियारों को साम्यवादी क्रान्ति का प्रतीक मानते हैं और किसानों तथा मजदूरों को प्रोत्साहित करते हुये उन्हें क्रान्ति की दिशा में आगे बढ़ने का संदेश देते हैं-

हल, हँसिया का और हथौड़ा
का परचम लहराये जा।
अब अपनी सरकार बनाकर,
जीवन में मुसकाये जा।।(२)

यह हँसिया और हथौड़ा उनकी अनेक कविताओं में क्रान्ति-चेतना का प्रतीक बनकर आया है, जैसे इस आवाहन गीत में-

काटो काटो काटो करबी
मारो मारो मारो हँसिया
हिंसा और अहिंसा क्या है
जीवन से बढ़ हिंसा क्या है।(३)

यही बात निम्नलिखित पंक्तियों में भी देखी जा सकती हैं-

मार हथौड़ा,
कर कर चोट
लाल हुये काले लोहे को
जैसा चाहे वैसा मोड़।(४)

१.	गुलमेंहदी	केदारनाथ अग्रवाल	पृ०.०२१
२.	वही		पृ०.१६१
३.	फूल नही रंग बोलते हैं	केदारनाथ अग्रवाल	पृ०.०७५
४.	वही		पृ०.०८३

वस्तुतः हँसिया और हथौड़ा किसान-मजदूरों की असली ताकत है और उन्हें उनकी इस ताकत का अहसास दिलाने के लिये ही केदार इनका बार-बार प्रयोग करते हैं। उन्हें विश्वास है कि यदि किसान-मजदूर अपनी शक्ति को पहचान जायें, संगठित होकर अपने अधिकारों के लिये संघर्ष करें तो साम्राज्यवादी-पूंजीवादी शक्तियों को शिकस्त दी जा सकती है। उनके सामने इसका प्रत्यक्ष उदाहरण भी है कि हिन्दुस्तान, वर्मा, पैलिस्टीन आदि की जन-क्रान्तियों ने अंग्रेजी-साम्राज्यवाद का सफाया कर दिया है। वे उस हँसिया और हथौड़े की शक्ति का अभिनन्दन करते हुये किसान-मजदूरों को याद दिलाते है कि-

एक दिन था जब यही दम्भी पियानो,
वायुयानों को उड़ाता था अनिल में,........
....
किन्तु अब जनतंत्र के दृढ़ मोरचे ने,
हिन्द, वर्मा, अरब, पैलेस्टीन की जन-क्रान्तियों ने,
मार कर हँसिया-हथौड़े,
देह उसकी तोड़ दी है,
हड्डियों को चरमरा कर लुंज उसको कर दिया है।(१)

पशु-जीवन से सम्बद्ध प्रतीक-

केदार ने पशु-पक्षियों के प्रति अपनी आत्मीयता का परिचय देते हुये अनेक कविताएं लिखी हैं। किन्तु कुछ कविताएं ऐसी भी है, जिनमें उन्होंने घोड़ा, डांगर, गिद्ध, गधा, बकरे आदि को प्रतीक रूप में अंकित किया है। अंग्रेजी शासन के दौरान प्रतिदिन कोई न कोई अध्यादेश निर्गत होते रहते थे और ये अध्यादेश भारतीय जनता को दबाने-सताने में प्रशासनिक अधिकारियों की मदद करते थे। देश की जनता इन अध्यादेशों की मार से तंग आ चुकी थी। केदार ने इन अध्यादेशों को घोड़े के प्रतीक में पिरोकर उनकी क्रूरता का वर्णन इन शब्दों में किया है-

कागजी घोड़े विदेशी
हिनहिनाते, टाप रखते,
ध्वंस करते गांव, बस्ती,
धूल धरती की उड़ाते,

---

१. कहें केदार खरी-खरी, केदारनाथ अग्रवाल पृ०४८-४६

चाल मारू चल रहे हैं।

बेतहाशा बढ़ रहे हैं।(१)

केदार ने सुविधाभोगी वर्ग के प्रति घृणा और आक्रोश का भाव व्यक्त करने के लिये प्रतीकात्मक शैली को अपनाया है। डांगर एक ऐसा पशु है, जो देखने में तो बहुत मोटा-ताजा होता है, किन्तु दिनभर पड़े-पड़े समय गुजारता है, कोई काम-धाम नहीं करता। कवि ने विलासिता का जीवन जीने वाले कामचोर पूंजीपतियों के लिये डांगर को प्रतीक बनाकर प्रस्तुत किया है और मजदूरों से उनकी तुलना करते हुये उनकी निष्क्रियता का उपहास किया है-

ये कामचोर

आराम तलब

मोटे तोंदियल भारी भरकम

हट्टे-कट्टे सब डांगर-ऊँघा करते हैं,

हम चौबीस घण्टे हँफते है

भूख बड़ी लम्बी-चौड़ी

दस बीस जनों का सब खाना

ये एक अकेले खाते हैं,

दिन भर ही पागुर करते हैं,

हम भूखे ही रह जाते हैं।(२)

केदार की दृष्टि में पूंजीपति वर्ग के लोग इतने निर्लज्ज होते है कि बिना कुछ किये ही सब कुछ पा लेने का प्रयास करते हैं। उन्हें दूसरों की कोई चिन्ता नहीं होती, अपनी जरूरतों के सामने वे किसी और की परवाह नहीं करते और विडम्बना यह है कि पूंजीवादी व्यवस्था में ऐसे ही लोगों को समाज का नेता कहा जाता है। केदार ने ऐसे स्वाभिमानहीन लोगों के लिये साँड़ और सियार जैसे पशुओं को प्रतीक बनाकर उन पर करारा व्यंग किया है-

---

१. गुलमेंहदी केदारनाथ अग्रवाल पृ०.३१

२. वही पृ०.५०

खफ्त है मुझे

आदमी होने का

बेखफ्त आदमी

सांड है

सियार है

पेट भर लेता है

नेता है।(१)

सुविधाभोगी वर्ग के प्रति कवि के मन में इतनी घृणा है कि वह उन्हें डांगर और सांड कहने भर से संतुष्ट नहीं होता। वह उन्हें ऐसे गधों के रूप में चित्रित करता है, जो बागी हो चुके हैं और उल्टे-सीधे काम करने पर तुले हुये हैं। अपनी काली करतूतों से सबको त्रस्त किये हैं। और जो बैल की तरह दिन-रात काम करते थे, वे भी उनके हाथों का खिलौना बन गये है-

गधों के

निकल आये है

पैने सींग

जमीन और आसमान को हुरेटते है

बैल

अब बिक गये हैं

बाजार में,

कुबेर का रथ वही खींचते है।(२)

---

१. आग का आईना, केदारनाथ अग्रवाल पृ०.५४

२. वही पृ०.६८

केदार सामाजिक असमानता और उससे उत्पन्न शोषण-चक्र को बहुत बारीकी से पकड़ने की कोशिश करते हैं। पूंजीवादी व्यवस्था ने सर्वहारा को इतना विवश कर दिया है कि वह चाहकर भी अपने अधिकारों के लिये खुलकर आवाज नहीं उठा पाते। उसकी स्थिति उस बकरे की तरह हो गयी है, जो कसाई की मर्जी से चाहे जितने क्षण जी ले अन्यथा उसके खून से अपनी प्यास बुझाने के लिये चाकू उसका इन्तजार कर ही रहा है। बकरे की यह विवशता शोषित सर्वहारा का प्रतीक बनकर इन शब्दों में प्रकट हुई है-

बकरे बोलते हैं,
चाकुओं की सदारत में,
सलाम ठोंकते।
प्यासा आदमी
कब्र से उठा
खून के इन्तजार में खड़ा है।(१)

समाज में व्याप्त अव्यवस्था और अराजकता के लिये सुविधाभोगी वर्ग जिम्मेदार है। इस वर्ग के तेवर इतने आक्रामक हैं कि आम आदमी का जीवन दूभर हो गया है। ये लोग इतने निरंकुश और मनमौजी है कि इन्हें किसी दूसरे के सुख-दुख से कोई सरोकार नही है। लाख कोशिश करने के बाद भी शान्तिप्रिय लोग इनके कुचक्रों से नहीं बच पाते। कवि ने ऐसे अराजक तत्वों को कौआ और आवारा गदहा के प्रतीकों में ढ़ालकर वर्तमान सामाजिक दुर्गति और तद्जन्य विवशता की मार्मिक अभिव्यक्ति दी है-

घर के बाहर खड़ी नीम की हरियाली पर
बैठे कौए आ कर यहां शाम से पहले
एक साथ ही काँव-काँव करते हैं कर्कश
शान्ति भंग होती है उनके
कोलाहल से
वातावरण फटा रहता है जोर-जबर से

---

१. आग का आइना, केदारनाथ अग्रवाल पृ०.६४

और नगर के अधिकाधिक आवारा गदहे
गला फाड़ कर फेक रहे हैं बम के गोले
आबादी घायल होती है तन की, मन की।(१)

पौराणिक-ऐतिहासिक प्रतीक-

केदार मार्क्सवादी दर्शन से प्रभावित होने के कारण प्राचीन परम्पराओं और पौराणिक धार्मिक मान्यताओं का निरन्तर विरोध करते दिखाई देते हैं। उन्होंने अपनी कविताओं में वर्तमान जीवन की विसंगतियों को ही मुख्यतः चित्रित किया है। उन्होंने यदि कभी ऐतिहासिक-पौराणिक संदर्भो की ओर दृष्टिपात किया भी है, तो उनका उद्देश्य अतीत को महिमामंडित करने का कभी नहीं रहा। कभी-कभी वर्तमान का चित्रण करने के लिये उन्होंने इतिहास और पुराणों के पात्रों को प्रतीक बनाकर अवश्य प्रस्तुत किया है। स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् और स्वतंत्रता प्राप्ति के पूर्व की कांग्रेस-पार्टी के चरित्र में कवि को भारी अन्तर दिखाई देता है। सत्य और अहिंसा को अपना हथियार बनाकर जिस पार्टी ने स्वतंत्रता की लड़ाई लड़ी थी, वह स्वतंत्रता मिलने के बाद शासन करने के लिये हिंसा का सहारा लेने लगती है। सत्तारूढ़ कांग्रेस पार्टी अंग्रेजी रीति-नीति से ही शासन करना चाहती है और आम जनता बिना किसी अपराध के सरकारी शोषण और दमन का शिकार हो रही है। इस बात से क्षुब्ध होकर केदार कांग्रेस और उसकी दमनकारी नीतियों का खुलकर विरोध करते हैं और ऐतिहासिक-पौराणिक प्रतीकों का उपयोग करते हुये उनकी पोल खोलते हैं-

कामधेनु-सी कांग्रेस अब
सुरसा जैसा मुँह बाये है
शासन के अधिकारी नेता
डायर की वर्दी पहने है,
सत्य अहिंसा के अवतारी अब हिंसा का रूप धरे हैं,
अंग्रेजी पिस्तौल चलाकर,
कफन लपेटी आजादी को

---

१. फूल नहीं रंग बोलते हैं, केदारनाथ अग्रवाल पृ०.१७०

जन-सेवक का खून चटाकर,

राम राज्य की कथा सुनाते सौ प्रयास से जिला रहे हैं।(१)

इन पंक्तियों में कामधेनु और सुरसा जैसे पौराणिक-प्रतीकों के माध्यम से कवि ने क्रमशः स्वतंत्रता प्राप्ति के पूर्व की कांग्रेसी मानसिकता और स्वातंत्रयोत्तर काल की कांग्रेसी-मनोवृत्ति को उद्घाटित किया है। कामधेनु से कांग्रेस की उदारता और नेकनीयती का भाव प्रकट होता है जबकि सुरसा कांग्रेस की सर्वग्रासी, भयानक तस्वीर को उजागर करती है। नेताओं को 'डायर' की वर्दी पहनाने के पीछे कवि का यही मन्तव्य है कि सत्तारूढ़ नेता अत्यन्त क्रूर और हिंसक व्यवहार करने पर तुले हुये है। डायर दमन और क्रूरता का ऐतिहासिक प्रतीक है।

एक अन्य कविता में बढ़ती हुई महंगाई का चित्र खींचने के लिये भी कवि ने 'सुरसा' का प्रतीकात्मक उपयोग किया है जिस प्रकार सुरसा, हनुमान का रास्ता रोककर खड़ी हो गयी थी और अपने मुख को असाधारण रूप से फैलाकर उन्हें निगल जाना चाहती थी, उसी प्रकार आजकल महंगाई का मुँह इतना फैल गया है कि जन सामान्य उसका ग्रास बन चुका है-

हम हो गये है बौने

और कीमतें हो गयीं हैं सुरसा

वस्तुएं हो गयी है

पहुंच से परे।(२)

कवि जब पौराणिक पात्रों को अथवा उनके नामों को अपनी कविता में प्रयोग करता है, तब वह एक तीर से दो निशाने साधता है, एक तो इन पौराणिक पात्रों को प्रतीकात्मक बनाकर अपनी कविता का कलात्मक श्रृंगार करता है, और दूसरे परम्परा-सापेक्ष पौराणिक पात्रों की छवि को अपनी मार्क्सवादी दृष्टि के कारण उपहास का पात्र बनाकर प्रस्तुत करता है। देश की दुर्व्यवस्था और अफरा-तफरी को उजाकर करने के लिये कवि अनेक पौराणिक नामों को प्रतीकों में ढालकर उनका सार्थक उपयोग करता है। देश की दुर्गति से आहत होकर कवि का हृदय फटने लगता है और वह

---

१. कहें केदार खरी-खरी ,	केदारनाथ अग्रवाल	पृ० १०१
२. फूल नही रंग बोलते हैं,	केदारनाथ अग्रवाल	पृ० १८६

उसे इन शब्दों में बाँधकर प्रस्तुत करता है-

व्यास मुनि को धूप में रिक्शा चलाते,
भीम, अर्जुन को गधे का बोझ ढोते देखता हूँ।
सत्य के हरिश्चन्द्र को अन्याय-घर में,
झूठ की देते गवाही देखता हूँ,
द्रोपदी को और शैव्या को, शची को,
रूप की दुकान खोले,
लाज को दो-दो टके में बेचते मैं देखता हूँ।(१)

यहां कवि ने व्यास मुनि को पढ़े-लिखे व्यक्तियों, भीम, अर्जुन को शक्तिशाली लोगों, हरिश्चन्द्र को असत्यवादियों तथा द्रोपदी, शैव्या और शची को रूप-जीवा नारियों का प्रतीक बनाकर प्रस्तुत किया है। कवि देश की दयनीय स्थिति से चिंतित भी है और पौराणिक पात्रों के प्रति उपहास का भाव भी उसमें है।

आर्थिक-जीवन से सम्बद्ध प्रतीक-

केदार की दृष्टि में अर्थ की प्रधानता असंदिग्ध है। उन्होंने आर्थिक विषमता के विरोध में खुलकर अपनी आवाज उठायी है, पर प्रतीकों का चयन करते समय उन्होंने इस क्षेत्र की ओर बहुत अधिक ध्यान नहीं दिया। अपवाद स्वरूप किसी-किसी कविता में टाटा-बिड़ला और डालमिया जैसे धनाड्य उद्योगपतियों को पूंजीवादी वर्ग का प्रतीक बनाकर प्रस्तुत किया है। कहीं-कहीं डालर को अमेरिका की पूंजीवादी नीतियों का खुलासा करने के लिये उपयोग में लाया गया है। कवि स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद पंडित नेहरू की सरकार द्वारा लागू की गयी पंचवर्षीय योजना और उन योजनाओं को पूरा करने के लिय अमेरिका से ऋण लेने की नीति का विरोध करता है और इस विरोध को इन पंक्तियों में व्यक्त करता है-

पंचवर्षीय योजना की रीढ़ ऋण की श्रृंखला है,
पेट भारतवर्ष का है और चाकू डालरी है।
संधियाँ व्यापार की अपमान की कटु ग्रंथियाँ हैं,
हाथ युग के सारथी है, भाग्य-रेखा चाकरी है।(२)

---

१. कहें केदार खरी-खरी — केदारनाथ अग्रवाल — पृ० ६८
२. वही — पृ० ११०

(ख) नागार्जुन की प्रतीक-योजना-

नागार्जुन सामाजिक यथार्थवादी कवि है। उनकी कविताएं समाज के यथार्थ जीवन को चित्रित करती हैं। जनकवि होने के नाते उन्होंने अपनी बात को प्राय: सीधे-सीदे शब्दों में व्यक्त किया है। भाव के प्रवाह में कहीं-कहीं उनकी कविता में प्रतीकात्मक शब्दावली भी स्वयंमेव आ गयी है। प्रकृति, मार्क्सदर्शन, पशुजीवन, इतिहास, पुराण तथा आर्थिक क्षेत्र से सम्बद्ध प्रतीकात्मक शब्दावली उनकी रचनाओं में यत्र-तत्र दृष्टिगोचर होती है। कभी-कभी अतिशय भावुकता में कवि प्रतीकों की लड़ी-सी लगा देता है। नागार्जुन की प्रतीक-योजना को मुख्यत: निम्नलिखित उपशीर्षकों में रखा जा सकता है-

प्राकृतिक-प्रतीक-

प्रात:काल सूर्य को उदित होता हुआ देखकर उसकी लाल किरणों से कवि नई स्फूर्ति का अनुभव करता है और उसे प्रकृति के इस दृश्य से संघर्ष करने की प्रेरणा मिलती है। कवि अति उत्साह में अपनी भावनाओं को प्राकृतिक-प्रतीकों में ढालकर इस प्रकार प्रस्तुत करता है-

जय अरुणोदय
जय सिन्दूरी किरण सुहानी
उछल रही है तुझे देखकर नई जवानी
बुरे ग्रहों का अन्त निकट है
सदाबहार बसन्त निकट है
शान्तिपूर्ण सुखमय-जीवन की खातिर यह संघर्ष हमारा
कैसे भला रुकेगी युग-गंगा की धारा।(१)

यहां अरुणोदय और सिन्दूरी-किरण का प्रयोग लाल क्रान्ति के लिये, बुरे ग्रह शोषकों के लिये, सदाबहार बसन्त साम्यवादी व्यवस्था के लिये तथा युग-गंगा की धारा का प्रयोग इतिहास की गति के लिये प्रतीकात्मक रूप में किया गया है। नागार्जुन की कविता में जिन शब्दों का प्रयोग होता है, वे ऊपर से देखने पर एकार्थी प्रतीत होते हैं, किन्तु उनमें तीक्ष्ण व्यंजना-शक्ति विद्यमान रहती है। यही व्यंजना उनके सीधे-सादे शब्दों को प्रतीकात्मकता प्रदान करती है। आपातकाल की

---

१. युगधारा नागार्जुन पृ० १०३

तानाशाही से क्षुब्ध होकर कवि एक क्षण के लिये यह अनुभव करने लगता है कि शायद साम्यवादी, संर्घष सहसा समाप्त हो जायेगा किन्तु उसे विश्वास है कि यह फिर दुगनें वेग से सभी बाधाओं को पार कर पूरी गति के साथ आरम्भ होगा। अपनी इसी अन्तर्वेदना को कवि प्राकृतिक प्रतीकों के माध्यम से इंगित करता है-

लगता है
हिन्द के आसमान में
ठीक दोपहर के वक्त
सूरज फ्यूज हो जायेगा
जी हाँ, बैसाख-जेठ का प्रखर-प्रचण्ड मध्यान्ह
बिना ग्रहण के भी डूब जायेगा
धुन्ध के माहौल में
लगता है
हिन्द के आसमान में
साबित सूरज भक् से निकल आयेगा
फाड़कर मसानी सन्नाटा बरसाती अमावस का।(१)

यहां पर दोपहर, क्रान्ति के चरम उत्कर्ष, सूरज जयप्रकाश नारायण की सम्पूर्ण क्रान्ति तथा धुन्ध और बरसाती अमावस आपातकालीन अध्यादेशों का प्रतीक है। इस प्रकार कवि प्राकृतिक प्रतीकों का बहाना लेकर तत्कालीन सामाजिक-राजनीतिक यथार्थ और उस पर अपनी दृढ-आस्था और विश्वास को व्यक्त करता है।

मार्क्सवादी-प्रतीक-

नागार्जुन मार्क्सवादी कवि है। उनकी दृष्टि में मार्क्सवादी दर्शन समाज को सही-दिशा देने में पूर्णतः सक्षम है। उनका सम्पूर्ण रचना संसार मार्क्सवादी चिन्तन से ओत-प्रोत है। इसलिये उनकी कविताओं में मार्क्सवादी प्रतीक स्वभावतः आ जाते है। लाल सबेरा, लाल भवानी, जैसे लाल क्रान्ति का संकेत करने वाले प्रतीक उन्हें विशेष प्रिय है। तेलंगाना के किसान-विद्रोह का स्मरण करते

---

1. नागार्जुन : चुनी हुई रचनायें-२ शोभा कान्त मिश्र पृ० २२०-२२१

हुये कवि अनुभव करता है कि जिस रूप में तेलंगाना के किसान अपने अधिकारों के प्रति जागरूक हुये हैं, उससे यह विश्वास दृढ़ होता है कि साम्यवाद आने में अधिक समय नहीं लगेगा। निम्नलिखित पंक्तियों में प्रयुक्त 'लाल सबेरा' और 'लाल भवानी' उसी साम्यवादी क्रान्ति की ओर संकेत करते हैं-

होशियार, कुछ देर नहीं है लाल सवेरा आने में
लाल भवानी प्रकट हुई है सुना कि तैलंगाने में।(१)

कवि को लाल रंग इतना प्रिय है कि उसे तत्काल उसमे लाल क्रान्ति का दृश्य दिखाई देने लगता है। पतझड़ के मौसम मे पीपल के पत्ते झड़ने लगते हैं और उनके स्थान पर नये-नये रक्ताभ वर्ण के पत्ते पुनः पल्लवित होने लगते हैं। कवि यह दृश्य देखकर अनुभव करता है कि प्राचीन रूढ़ियाँ और अन्धविश्वास अब ज्यादा दिनों तक नहीं रह सकते। समय बदल रहा है और निकट भविष्य में एक न एक दिन प्रगतिशील विचारधारा का समाज में अधिपत्य अवश्य हो जायेगा। पीपल के पीले पत्ते सड़ी-गली प्राचीन मान्यताओं तथा उसके लाल-लाल पत्ते साम्यवाद की रक्तिम क्रान्ति का प्रतीक बनकर निम्नलिखित पंक्तियों में प्रयुक्त हुये हैं-

खड़-खड़-खड़ करने वाले
ओ पीपल के पीले पत्ते
अब न तुम्हारा रहा जमाना
शकल पुरानी रंग पुराना
सीख पुरानी ढंग पुराना
अब न तुम्हारा रहा जमाना
आज गिरो कल गिरो कि परसों
तुमको तो अब गिरना ही है
बदल गयी ऋतु राह देखती लाल-लाल पत्तों की दुनिया।(२)

---

१. नागार्जुन : चुनी हुई रचनायें-२ शोभा कान्त मिश्र पृ० ५६
१. वही पृ० १८

पशु-जीवन से सम्बद्ध प्रतीक-

नागार्जुन की रचनाओं का एक बड़ा हिस्सा भारतीय राजनीति से आन्दोलित है। वे काफी समय तक भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी के सक्रिय सदस्य रहे है और उन्होंने अनेक किसान-मजदूर आन्दोलनों का नेतृत्व किया है। अपनी इस गतिविधि के कारण उन्हें अनेक बार सरकार का कोप-भाजन भी बनना पड़ा है। उन्होंने अपने जीवन का काफी समय पटना, दिल्ली और कलकत्ता में बिताया है। वहाँ रहकर वे लगभग हर पार्टी के राजनेताओं के सम्पर्क में गये और राजनेताओं के चरित्र को उन्होंने बहुत निकट से देखा, समझा। कांग्रेस पार्टी के प्रति, और विशेष रूप से कांग्रेस के नेता पं0 नेहरू तथा उनके परिवार के प्रति आरम्भ से ही कवि के मन में घृणा और आक्रोश का भाव रहा है। वह पं0 नेहरू तथा उनके परिवारजनों को पूंजीपतियों का पोषक मानता रहा है। उसकी घृणा उत्तरोत्तर बढ़ती गयी है और जब 1975 में श्रीमती गांधी देश पर आपातकाल लाद देती है तथा जय प्रकाशनारायण की 'सम्पूर्ण-क्रान्ति' का क्रूरता से दमन करने लगती है, तो कवि का आक्रोश अपने चरम पर पहुंच जाता है। वे उस समय श्रीमती गांधी की तुलना हिसंक पशुओं से करने लगते है और उन्हें कभी बाघिन तो कभी भेड़िया जैसे उपमानों से जोड़कर अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त करते है। कवि का आक्रोश इतना अधिक है कि वह आक्रामक रुख अपना लेता है और परिस्थिति की गम्भीरता को ध्यान में रखते हुये प्रतीकों के माध्यम से अपना आक्रोश व्यक्त करता है। निम्नलिखित पंक्तियों में 'बाघिन' का प्रयोग श्रीमती इन्दिरा गांधी के संदर्भ में ही किया गया है-

लम्बी जिह्वा, मदमाते दृग झपक रहे है
बूंद लहू के उन जबड़ों से टपक रहे है
चबा चुकी है ताजे शिशुमुण्डों को गिन-गिन
गुर्राती है, टीले पर बैठी है बाघिन
पकड़ो, पकड़ो, अपना ही मुँह आप न नोचे।
पगलायी है, जाने, अगले क्षण क्या सोचे।
इस बाघिन को रक्खेगें हम चिड़ियाघर में
ऐसा जन्तु मिलेगा भी क्या त्रिभुवन में।(१)

---

१. खिचड़ी विप्लव देखा हमनें नागार्जुन, पृ० १६

अकेले श्रीमती गांधी ही नहीं, बल्कि उनके इर्द-गिर्द रहने वाले अन्य कांग्रेसी नेताओं को भी कवि भिन्न-भिन्न नामधारी हिंसक पशुओं की कतार में खड़ा करता है। निम्नलिखित पंक्तियों में 'मादा भेड़िया' श्रीमती गांधी के लिये तथा सिंह, बाघ, रीछ, भालू, गीदड़ अन्य कांग्रेसी नेताओं के लिये प्रतीकात्मक रूप में प्रयुक्त हुये हैं।-

दूर, एक टेकरी पर विराजमान है मादा भेड़िया
अभी-अभी सलाम बजा के निकल गये है
सिंह, बाघ, रीछ, भालू, गीदड़.........
गर्वीली चितवन में इधर-उधर देख रही है।
मादा भेड़िया..........(१)

इसी प्रकार जब देश आजाद हुआ था, तब पं0 नेहरू की सरकार अमेरिका के साथ लगातार सम्पर्क बनाकर रखना चाहती थी और उनसे आर्थिक सहायता की याचना करती थी। अमेरिका एक पूंजीवादी देश होने के कारण किसी भी प्रगतिशील कवि को रुचिकर नहीं लग रहा था। सभी ने उस समय अमेरिका और भारत के सम्बन्धों की तीव्र आलोचना की थी। कवि इन साम्राज्यवादी शक्तियों को 'जोंक' प्रतीक के माध्यम से अपनी कविता में चित्रित करता है और इन शक्तियों के भारत में पूंजी प्रसार को शोषण-चक्र का एक हिस्सा मानता है। सन् 1950 में लिखी 'बजट वार्तिक' कविता का यह अंश कवि की पीड़ा को इस रूप में व्यक्त करता है-

गंगा-यमुना के कछार में
आ-आकर अंडे देंगी अब
दुनिया भर की जोंकें
रामराज की सरल प्रजा का तरल रक्त
कितना सस्ता है।(२)

---

१. नागार्जुन, प्रभाकर माचवे पृ० ८४
२. युगधारा नागार्जुन पृ० ६६

पौराणिक, ऐतिहासिक-प्रतीक-

नागार्जुन का विद्याध्ययन संस्कृत-साहित्य से पुष्ट है इसलिये उनके काव्य में पौराणिक-प्रतीकों का प्रयोग तुलनात्मक रूप से अधिक हुआ है। उनकी विचारधारा मार्क्स-चिन्तन से ओत-प्रोत है, इसलिये शोषित दलित जनों के प्रति अपनी आत्मीयता और श्रद्धा व्यक्त करने के लिये वे उन्हें प्रायः पौराणिक प्रतीकों के माध्यम से अपनी कविता में चित्रित करते हैं। मल्लाहों के नंग-धड़ंग बच्चों को चप्पू चलाते देखकर उन्हें सहसा चतुर्भुज विष्णु का स्मरण हो आता है। बच्चों के दो हाथ और दो चप्पू एक साथ मिलकर चतुर्भुज रूप धारण कर लेते हैं। इसलिये मल्लाह पुत्रों की चतुर्भुज के रूप में कल्पना सार्थक प्रतीत होती है-

देखना ओ गंगा मइया।
निराश न करना इन नंग-धड़ंग चतुर्भुजों को।
कहते हैं, निकली थी कभी तुम
बड़े चतुर्भुज के चरणों में निवेदित अर्ध जल से
बड़े होंगें तो छोटे चतुर्भुज भी चलायेगें चप्पू
पुष्ट होगा प्रवाह तुम्हारा इनके भी श्रम-स्वेद-जल से
मगर अभी इनको निराश न करना
देखना ओ गंगा मइया।(१)

प्रकृति और राजनीति दोनों को आमने-सामने रखकर जब कवि पूरे परिवेश का चित्रण करता है, तब भी उसे पौराणिक प्रतीक ही याद आते हैं। ग्रीष्मकाल में हिमालय की बर्फ तक पिघल कर बहने लगती है। राजनीतिक क्षेत्र में भी कुशासन के कारण आम जनता स्वयं को असुरक्षित और कष्ट में पड़ा हुआ अनुभव करती है। इस विकट स्थिति को कवि ने इस रूप में प्रतीकात्मक अभिव्यक्ति दी है-

दुःशासन का यह प्रताप तो देखो
दूर-दूर हटती जाती है देवदार की छाया
झुलस नहीं सकती है केवल चाटुकार की काया
आंच झूंठ की बड़ी विकट है, पिघल रहा कैलाश
शिव की शुभ आधार-शिला का होगा सत्यानाश

---

१. सतरंगे पंखो वाली नागार्जुन, पृ० २१-२२

इतने पर भी रावण का यदि हो न मनोरथ पूर्ण
अजी, छिड़क देना तुम अपना मनश्चेतना चूर्ण।(१)

स्वतंत्रता के तत्काल बाद कांग्रेस सरकार देश के विकास हेतु जिस प्रकार का बजट बना रही थी, उसमें साफ तौर पर पूंजीपतियों के हितों को सर्वाधिक महत्व दिया गया था। आम जनता के हितों की ओर आवश्यक ध्यान नहीं था। नागार्जुन इस स्थिति से क्षुब्ध होकर 'बजट-वार्तिक' कविता में जो व्यंग करते हैं, उसमें पौराणिक प्रतीक नई जान डाल देते हैं-

ताक लगाये
कछुओं-सा कर-चरण समेटे
देशी धन्नासेठ
विदेशी युधिष्ठिरों की शरण मांगते
पूंजी को चाहिये छांह साम्राज्यवाद की (२)

नागार्जुन ने सबसे अधिक पौराणिक-प्रतीक महाभारतकाल से चुने है। दुःशासन, युधिष्ठिर, भीष्म, द्रोपदी, दुर्वासा आदि उनकी कविताओं में बार-बार प्रयुक्त होते हैं। इन प्रतीकों के माध्यम से कवि वर्तमान राजनीतिक उठा-पटक और देश की बिगड़ती कानून-व्यवस्था की स्थिति पर तीक्ष्ण व्यंग करता है। जब वे देखते है कि स्वतंत्रता का सुख प्राप्त करने के लिये ऊँची पहुंच वाले नेता एड़ी-चोटी का जोर लगा रहे है और स्वार्थ में इतने अंधे हो गये हैं कि देश में फैल रही विकृतियों की ओर उनका ध्यान नहीं जा रहा, तो वे राजनेताओं तथा पूंजीपतियों पर व्यंग-बाण छोड़ते है-

शरशैया पर पड़े हुये हैं वृद्ध पितामह
स्तनपायी शिशु छिन्न मुण्ड छटपटा रहे है
नग्न-बुभुक्षित द्रुपद सुताएं त्राहि-त्राहि करती फिरती है
पांचों दिशाओं में मुंह फेरे पांचों पाण्डव
एक चित्त हो नहीं पा रहे

---

१. युगधारा नागार्जुन पृ० ८३
२. वही पृ० ६८

बड़ी-बड़ी तनखाहें पाने वाले विदुरों की मत पूंछो
मुदित मुख नत नयन कुर्सियों पर बैठे हैं
अपना ली है सन्ध्या भाषा
भूमिदान करवाने की, लो, सनक सवार हुई है शिर पर लोमश मुनि के
दुर्वासा उपकुलपति बनने की फिराक में
घात लगाये घूम रहे हैं।(१)

ऊपर जिन पौराणिक नामों का उपयोग किया गया है, वे सभी साम्राज्यवादी-पूंजीवादी विचारों के पोषक व्यक्ति के रूप में चित्रित किये गये हैं। वस्तुतः कवि को साम्राज्यवादी मानसिकता से इतनी चिढ़ है कि वह जब इतिहास पर दृष्टि डालता है, तो वहां भी उसे व्यंग करने के लिये हिटलर और मुसोलिनी का नाम याद आता है। श्रीमती इन्दिरा गांधी को कवि साम्राज्यवादी मानसिकता की राजनेता मानता रहा है और उसके दल के अन्य नेताओं को भी वह इसी दृष्टि से देखता रहा है। ये राजनेता चुनाव के समय जिस तरह जोर-जबरदस्ती करके मत-पत्रों की छीना-झपटी करते है और चुनाव का परिणाम अपने पक्ष में करने के लिये घिनौने हथकंडे अपनाते हैं, वह सब कवि के व्यंग का आधार बनता है। श्रीमती गांधी को काली देवी के रूप में और उसके समर्थकों को हिटलर मुसोलिनी के रूप में चित्रित करने के पीछे कवि की यही पीड़ा झलकती है-

देवी प्रतिमा चंड-मुंड को लिये साथ में
हुई अवतरित, बंदूकें है दसों हाथ में
लगे बैठने गद्दों पर हिटलर-मुसोलिनी
हुई मूर्छिता भारतमाता ग्रामवासिनी।(२)

चाणक्य भारतीय इतिहास के सफलतम राजनीतिज्ञ रहे है। उन्होंने अपनी राजनीतिक कुशलता से मौर्य राजसत्ता को स्थापित करने में अभूतपूर्व सफलता प्राप्त की थी। अपनी राजनीतिक क्षमता के लिये वे आज भी स्मरण किये जाते हैं। चाणक्य-नीति राजनीति का पर्याय मानी जाती है। कवि ने चाणक्य को आधुनिक राजनेताओं के लिये प्रतीकात्मक रुप में प्रयोग किया है और उसे बहुवचन का रूप देकर व्यंग की धार को और भी पैना बना दिया है। उदाहरण के लिये 'शपथ'

---

१. नागार्जुनः चुनी हुई रचनाये-२ — शोभाकान्त मिश्र — पृ० ८३
२. नागार्जुन — प्रभाकर माचवे — पृ० ६८

कविता की इन पंक्तियों में चाणक्यों का प्रतीकात्मक प्रयोग देखा जा सकता है-

बापू, तुम तर्जनी उठाकर
आसमान से मना कर रहे-देख रहा हूँ
पर, कितनी भी लम्बी हांके
ह्रदय नहीं परिवर्तित होगा
क्रूर कुटिलमति, चाणक्यों का
नहीं-नहीं, कभी नहीं।(१)

आर्थिक-जीवन से सम्बद्ध प्रतीक-

नागार्जुन आरम्भ से ही सामान्य जन के दुःख-सुख को अपनी कविताओं में सम्मान के साथ चित्रित करते रहे है। पूंजीपतियों के प्रति उनके मन में घृणाभाव रहा है। उन्हें आशा थी कि स्वतंत्रता के बाद देश के दीन-हीन जनों का सरकार भला करेगी और उन्हें जीवन की आवश्यक सुविधायें उपलब्ध करायेगी, किन्तु कांग्रेस सरकार ने अपनी गृहनीति और विदेश-नीति दोनों में ही पूंजीवादी रुझान का परिचय दिया। देश के अन्दर जिन नीतियों का निर्धारण हुआ, वे प्रायः पूंजीपतियों के हितों का पोषण करने वाली थी। स्वतंत्रता के पूर्व कांग्रेस का जो उदार चरित्र था, उसमें स्वतंत्रता के बाद छल-छद्म दिखाई देने लगा। खादी और मलमल आर्थिक क्षेत्र से लिये गये प्रतीक है, जो क्रमशः खद्दर पहनने वाले कांग्रेसियों और पूंजीपतियों का अर्थ वहन करते हैं। इसी तरह बिड़ला, टाटा, डलमियां व्यक्तिवाचक संज्ञा होते हुये भी पूंजीपतियों के प्रतीक रूप में कवि के द्वारा उपयोग किये गये हैं। दो पंक्तियों में ही कवि ने कांग्रेस की पूंजीपतियों के साथ मिलीभगत का व्यंग्यात्मक चित्र खींच दिया है और यह घोषणा कर दी है कि कांग्रेस के राज्य में पूंजीपतियों को ही ध्यान में रखकर नीतियाँ निर्धारित की जाती हैं -

खादी ने मलमल से अपनी सांठ-गांठ कर डाली है
बिड़ला-टाटा-डालमियां की तीसों दिन दीवाली है।(२)

---

१. नागार्जुनः चुनी हुई रचनाये-२ — शोभाकान्त मिश्र — पृ० ६३
२. नागार्जुन — प्रभाकर माचवे — पृ० १२

नागार्जुन के प्रतीकों की सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि उन्होंने जानबूझकर चमत्कार उत्पन्न करने के लिये प्रतीकों का प्रयोग नहीं किया। उनके प्रतीक स्थिति की आवश्यकता से प्रेरित होकर सहज रूप में प्रयुक्त हुये हैं। इसलिये उनके प्रतीकों से कविता में नये अर्थ की सृष्टि हुई है और अभिव्यक्ति का सौन्दर्य भी बढ़ गया है। दूसरी बात यह है कि उनके यहाँ प्राय: ऐसे प्रतीकों का प्रयोग हुआ है जो आम पाठकों के लिये नये नहीं है। एक विशेष अर्थ में लम्बे समय से प्रयुक्त होते रहने के कारण उनकी प्रतीकात्मकता सर्वग्राह्य हो गयी है और वे सभी के लिये एक निश्चित अर्थ का प्रतिपादन करते है। यही कारण है कि नागार्जुन चाहे जिस क्षेत्र से अपने प्रतीकों का चयन करें, वे अपेक्षित प्रभाव उत्पन्न करने में सफल हो जाते हैं। परम्परा सापेक्ष होने के कारण उनकी प्रतीक-योजना असंदिग्ध रूप से काव्य की श्री-वृद्धि करने में सहायक सिद्ध होती है।

(ग) त्रिलोचन की प्रतीक-योजना-

त्रिलोचन जीवन-यथार्थ के विभिन्न पहलुओं को वर्णनात्मक ढंग से प्राय: अंकित करते है। इसलिये इनका कथ्य काव्यात्मक जटिलताओं से मुक्त रहता है। किन्तु जब वे किसी संदर्भ को कलात्मक रूप में प्रस्तुत करने का मन बना लेते है, तो बिम्ब और प्रतीकों का उपयोग करते हैं। उनके काव्य में विभिन्न क्षेत्रों से सम्बद्ध प्रतीकों का चयन किया गया है। उनकी प्रतीक-योजना को निम्नलिखित उप-शीर्षकों में विभक्त करके देखा जा सकता है-

प्राकृतिक-प्रतीक-

त्रिलोचन की कविता के प्रमुख विषयों में से एक महत्वपूर्ण विषय प्रकृति है। कभी तो उन्होंने प्रकृति के सौन्दर्य को पूरी आत्मीयता के साथ अंकित किया है और कभी प्रकृति को प्रतीक रूप में प्रयुक्त करके सामाजिक-जीवन के यथार्थ को व्यंजित किया है। वे प्राकृतिक प्रतीकों के माध्यम से जीवन-स्थितियों की मार्मिक व्यंजना करने में उल्लेखनीय रूप से सफल हुये हैं। उदाहरण के लिये निम्नलिखित पंक्तियों में उनकी प्रगतिशील सामाजिक दृष्टि को देखा जा सकता है, जिसमें mUgksa ihiy d s iRrks औ लू को क्रमश: सर्वहारा तथा शोषकों के प्रतीक रूप में अंकित किया है-

पीपल के पत्ते ने ज्यों मुँह खोला खोला
त्यों चटाक से लगा तमाचा आकर लू का,
झेल गया वह भी आखिर बच्चा था भू का
लेकिन जिसने देखा उसका धीरज डोला,
बैठ कलेजा गया।(१)

त्रिलोचन प्रकाश के कवि हैं। उन्होंने अंधेरे से अधिक उजाले को अपनी कविताओं में रेखांकित किया है। जिस प्रकार सूर्य निकलने से रात का अंधेरा मिट जाता है, उसी प्रकार अपने अधिकारों के प्रति जागरूक हो जाने पर अन्याय और अनाचार का साम्राज्य समाप्त हो जाता है। उन्होंने कुहरा और किरणों को क्रमशः शोषण और उत्पीड़न, तथा जन-जागरण का प्रतीक बनाकर बदलते हुये सामाजिक परिदृश्य की सुन्दर अभिव्यक्ति दी है-

देखा, उन की श्यामल हरियाली में
हलके धुएं की तरह
कुहरा
किरणों से परास्त हो
छिपकर रहने का उद्योग अथक करता था।(२)

त्रिलोचन ने सामाजिक यथार्थ को रूपायित करने के लिये प्रायः प्राकृतिक-प्रतीकों के माध्यम से अपनी बात कही है। वे सर्वहारा की असीम शक्ति से परिचित है, किन्तु साथ ही वे यह भी जानते हैं कि सर्वहारा की वह शक्ति शताब्दियों से इस पूंजीवादी अर्थ-व्यवस्था में दबी-सहमी पड़ी हैं। वे इस सत्य को उद्घाटित करने के लिये 'भस्मावृत लूकी' तथा 'अन्धकार' जैसे प्राकृतिक उपकरणों को प्रतीक रूप में प्रयोग करते हैं। 'भस्मावृत्त लूकी' सर्वहारा की उस शक्ति का प्रतीक है, जो अभी तक प्रकट नहीं हो सकी, तथा अँधकार पूँजीवादी व्यवस्था का प्रतीक है, जिसमें अन्याय और शोषण का अबाध-चक्र चलता रहता है-

---

१.	त्रिलोचन के बारे में	सम्पादकःगोविन्द प्रसाद	पृ० १५४ से उदघृत
२.	धरती	त्रिलोचन शास्त्री	पृ० ४८

भस्मावृत लूकी सा
मै इस अन्धकार में
पड़ा हुआ हूँ
अपनी चेतनता की ज्वाला में
परिसीमित।(१)

दूब धरती पर अपनी जड़ें इतने गहरे तक फैलाकर रखती कि विपरीत परिस्थितियों में भी उसका अस्तित्व बना रहता है। ऋतु परिवर्तन होते ही वह पुनः हरी-भरी हो जाती है। यह दूब त्रिलोचन के लिए सर्वहारा की दृढ़ता का प्रतीक है, जिसे जीवन के अभाव भी नष्ट नहीं कर पाते। बाढ़ पूँजीवादी व्यवस्था के अन्याय और अनाचार का प्रतीक है। कवि का विस्वास है कि सर्वहारा दूब की तरह दृढ़ता के साथ पूँजी के अभावों का सामना करता है और अन्ततः विजय उसी की होती है-

बाढ़ में जो
कहीं न जा सकी
जलरुद्ध रही
वही दूब रहा हूँ।(२)

अन्धकार और प्रभात त्रिलोचन के लिए पूँजीवादी-व्यवस्था और समाजवादी-व्यवस्था के प्रतीक हैं। कवि आश्वस्त है कि जैसे प्रभात होने पर अन्धकार स्वतः समाप्त हो जाता है, उसी प्रकार समाजवादी क्रान्ति होने पर जीवन की सारी सुख सुविधायें स्वतः सुलभ हो जाती है और पूँजीवादी व्यवस्था के सारे दोष जो आम आदमी के जीवन को नर्क बना देते है, एक झटके के साथ दृश्य-पटल से ओझल हो जाते है-

छाती पर चढ़ा हुआ अन्धकार का पहाड़ उतर गया
और प्रभात हुआ
कंचन बरसाता हुआ सुन्दर प्रभात हुआ ।(३)

१.	धरती	त्रिलोचन शास्त्री	पृ० ६०
२.	ताप के ताये हुये दिन	त्रिलोचन शास्त्री	पृ २५
३.	धरती	त्रिलोचन शास्त्री	पृ० ६४

पूँजीवादी व्यवस्था के संत्रास को कवि ने भिन्न-भिन्न प्राकृतिक प्रतीकों के माध्यम से व्यंजित किया है। एक पौराणिक संदर्भ को स्मरण करते हुए कवि सोचता है कि महाप्रलय के समय जब सब कुछ जलमग्न हो गया था, तब भी मनु को इसलिए किनारा मिल गया क्यों कि उसके पास उस अथाह जलराशि को पार करने के लिए एक नाव थी किन्तु आज सामाजिक विषमता और उसमे उपजे शोषण और अत्याचार का सागर चारों ओर गर्जना कर रहा है, आम आदमी उसमें आकण्ठ डूबता चला जा रहा है किन्तु उसे कोई ऐसा नाव जैसा ठोस साधन नहीं मिल पा रहा है, जिसके सहारे वह इस महासागर को पार कर सके। आज के मनुष्य की इसी अन्तर्पीड़ा को त्रिलोचन ने अपनी इस रुबाई में अंकित किया है, जिसमें सागर अराजकता का प्रतीक बन कर आया है -

मनु की तो पार लग गई कुछ भी हो नाव थी
सागर यहाँ गरजता है किस ओर नाव है(१)

त्रिलोचन ने विभिन्न वनस्पतियों को प्रतीक बनाकर सामाजिक यथार्थ की अनेक पर्तो को उद्घाटित किया है। सर्वहारा और पूंजीपतियों की जीवन शैली और उनकी प्रकृति को चित्रित करने के लिये कवि ने 'केले के पत्ते' और 'हवा' को प्रतीक बनाया है। सर्वहारा जैसे ही अपने अधिकारों के प्रति सजग होने लगता है, वैसे ही पूंजीपति अपने पूंजी के प्रभाव से उसे दबा देता है। वह आह भरकर रह जाता है, उसका ह्दय टुकड़े-टुकड़े हो जाता है, पर वह कुछ कर नहीं पाता। मौका मिलते ही उसे पुन: उसी व्यवस्था के साथ समझौता करने के लिये विवश होना पड़ता है। उसके रुख में नर्मी के आते ही पूंजीपति उन्हें तरह-तरह के प्रलोभन देकर शान्त कर देता है। पूंजीपतियों की आवश्यकता जन्य उदारता को सर्वहारा अपना सौभाग्य मान लेता है और उनके द्वारा फेके गये दानों को पाकर वह पुन: उनके जाल में फँस जाता है। पहले का दर्द उसे याद नहीं रहता-

केले के पत्ते फट जाते है
जरा पोढ़ होते ही
चोटें हवा की
कड़ी होती है
नरम-नरम होने पर
यही हवा

---

१. गुलाब और बुलबुल त्रिलोचन शास्त्री पृ० ६७

उनको दुलराती है
चाँद को दिखाती है
धूप से नहलाती है
रिमझिम की लोरियां सुनाती है
तालियां बजाते है
नाचते हैं गाते हैं
हवा की चपेटों के
दर्द भूल जाते है
केले के पत्ते ये।(१)

'काई' मनुष्य की उस जिजीविषा का प्रतीक है, जिसके रहते मनुष्य बड़ी-बड़ी कठिनाइयों और कष्टों का धैर्यपूर्वक सामना कर लेता है इस उम्मीद में कि एक न एक दिन समय उसके अनुकूल होकर रहेगा। जिस प्रकार ग्रीष्म-कालीन धूप में झुलस कर 'काई' का रंग स्याह हो जाता है, पर उसकी जीवन्तता नष्ट नहीं होती और जैसे ही पानी बरसता है, वह पुनः हरी-भरी हो जाती है। ठीक इसी प्रकार मनुष्य अनेक अवरोधों को पार करता हुआ आशा-निराशा के झूले में झूलता हुआ एक-न-एक दिन आत्मगौरव को प्राप्त कर लेता है। कवि का यही विश्वास निम्न पंक्तियों में दृष्टिगोचर होता है।

काई हरियाई फिर
पी पी कर पानी
कुछ दिन की धूप ने
जला कर इसे
स्याह बना दिया था
हठ ले कर इसने भी भीत पर
अपना घर किया था
फिर बादल गरजे
फिर प्रीति नई मानी

---

१. ताप के ताये हुये दिन त्रिलोचन शास्त्री पृ० ३४

जीवन जड़ के ऊपर छा गया
जहां रंग न था रंग आ गया
बरसाती धरती ने
साज सजे धानी। (१)

मार्क्सवादी-प्रतीक-

त्रिलोचन का सम्पूर्ण काव्य मार्क्सवादी-चिंतन से ओत-प्रोत है। वे समाज में व्याप्त जाति, वर्ग और सम्प्रदाय जन्य दोषों से भलीभांति परिचित हैं। इस परम्परागत सामाजिक व्यवस्था में मानवीय मूल्यों का सर्वथा ह्रास हो गया है। कुछ मुट्ठी भर लोग सामाजिक न्याय के ठेकेदार बने बैठे है और बहुसंख्यक समाज उनके दकियानूसी विचारों का शिकार हो रहा है। त्रिलोचन ने अपनी अनेक कविताओं में ऐसे पात्रों की सृष्टि की है, जो आज के समाज का प्रतीकात्मक प्रतिनिधित्व करते है। उदाहरण के लिये 'नगई महरा' नामक लम्बी कविता में नगई कहार का चरित्र अपने आप में एक पूरे समाज का चित्र प्रस्तुत करता है। 'पंचायत, 'डाँड़-बाँध, 'जाति-गंगा' इसी सामाजिकता के प्रतीक हैं। स्वयं नगई और लखमनी व्यक्ति न होकर सर्वहारा के सम्पूर्ण वर्ग का प्रतिनिधित्व करते है। नगई का इतिवृत्त इस बात का स्पष्ट संकेत है कि तोड़ना और जुड़ना इस लचर सामाजिक व्यवस्था की चारित्रिक विशेषताएं हैं-

चौकीदार ने पुकारा
नगई और लखमनी
दोनों हाथ जोड़े सिर झुकाए हाजिर हुए
फिर उसका दोष बतला कर पूछा गया
अपने दोष मानते हो
मानते हैं- दोनों ने साथ कहा

---

१. ताप के ताये हुये दिन त्रिलोचन शास्त्री पृ० ३५

पूछा गया, डाँड़-बाँध तुमकों मंजूर है
सिर माथे हमको मंजूर है- दोनों बोले
पंचों ने कहा, दस रुपये का डाँड़ है, भात देना होगा
यह भी मंजूर है
फिर महरिन जल लाई सब को दिया पीने को
नगई ने हुक्का पिया और बारी-बारी सब को दिया
पंचो ने हुक्म दिया, अब तुम दोनों साथ रहो
पंचायत को मानों पंच परमेश्वर है
नगई हाथ जोड़े अब खड़ा हुआ
बोला, जाति गंगा ने मुझे पावन कर दिया।'(१)

पशु-जीवन से सम्बन्धित प्रतीक-

त्रिलोचन ने भिन्न-भिन्न क्षेत्रों से अपनी प्रतीक-योजना को सामग्री लाकर दी है। वे प्रतीकों के लिये पशु-जीवन में भी दृष्टिपात करते है। गधा भार ढोने वाला एक ऐसा पशु है, जो आधे पेट रहकर भी अपने मालिक की इच्छानुसार बिना कोई आना-कानी किये कार्य में जुटा रहता है। ऐसे मूर्ख और समर्पित गधों से उनका मालिक बहुत प्रसन्न रहता है, जो अपनी सुख-सुविधा के बारे में कभी विचार नहीं करते, केवल मालिक के आदेश का पालन करना ही जिनके जीवन का लक्ष्य होता है। कवि सर्वहारा को 'गधा' प्रतीक के माध्यम से प्रस्तुत करता है। साथ ही सर्वहारा की बदलती हुई मानसिकता को रेखांकित करते हुये गधा और नये गधों के वृत्तिगत अंतर की ओर भी संकेत करता है। आज का सर्वहारा पहले की तरह चुपचाप सब कुछ सहने के लिये तैयार नहीं है, उनके मन में अपने अधिकारों के प्रति जागरूकता आ गयी है और वह विद्रोही हो गया है। कवि इस वैचारिक परिवर्तन को निम्नलिखित पंक्तियों में प्रतीकात्मक अभिव्यक्ति देता है-

गधा पड़ा था, जान न थी, मालिक उदास था।
लोथ देखते मुझ से बोला, बड़ा भला था
बेचारा! इस का दम रहते, काम चला था

---

१. ताप के ताये हुये दिन त्रिलोचन शास्त्री पृ० ७७

अपना अच्छी तरह! लगा, गम उसे खास था
समझाने के लिये कहा मैंने, ले लेना
कोई और। जानता था मै भी, पैसे है
नया ले सकेगा। उसाँस बोला, कैसे है
आप, नयों को नहीं जानते, खूंटा देना
इन्हें सरल है, ये कब उसे उखाड़ कर भगें......(१)

त्रिलोचन प्रगतिशील कविता के अग्रगण्य कवियों में से एक हैं। प्रगतिशील कवियों का आरम्भ से ही कांग्रेस पार्टी और उसके नेता पं0 जवाहर लाल नेहरू के साथ वैचारिक मतभेद रहा है, इसलिये त्रिलोचन समेत लगभग हर प्रगतिशील कवि ने कांग्रेस पार्टी और उसके प्रमुख नेताओं की कड़ी आलोचना की है। 'स्वतंत्र भारत के प्रथम आम चुनाव के समय जब पं0 नेहरू वोट मांगने के लिये जनता के बीच में आते हैं और देश की ज्वलन्त समस्याओं का उल्लेख करते हुये उन्हें हल करने का आश्वासन देते है, तो प्रगतिशील कवियों को इससे संतोष नहीं होता। वे अपनी कविताओं के माध्यम से पण्डित नेहरू को खरी-खोटी सुनाते हैं। त्रिलोचन प्रतीकात्मक ढंग से पण्डित नेहरू की चिकनी-चुपड़ी बातों और उनकी कलुषित मानसिकता को उद्घाटित करते हैं। निम्नलिखित पंक्तियों में 'पंख' चुनाव के समय दिये गये झूंठे आश्वासनों, 'कौआ' निन्दनीय व्यक्ति और 'मोर' यशस्वी व्यक्ति का प्रतीक बनकर आये हैं-

पंख लगा कर कौवा फिर फिर मोर न होगा
एक बार हम लोगों ने भोगा सो भोगा (२)

त्रिलोचन की कविता मुख्य रूप से सामाजिक यथार्थ-चित्रण को समर्पित है। वे कभी तो इस यथार्थ को सीधे-सादे व्यंजनागर्भी कथन के द्वारा चित्रित करते है और कभी उसे सटीक अभिव्यक्ति देने के लिये सार्थक प्रतीकों का उपयोग करते हैं। सामाजिक जीवन में हो रहे समाजवादी परिवर्तन को उन्होंने कठफोड़े, कीड़ों और तरू जैसे प्रतीकों के माध्यम से प्रभावशाली अभिव्यक्ति दी है। निम्नलिखित पंक्तियों में कठफोड़े अपने अधिकारों के प्रति जागरूक सर्वहारा, कीड़े शोषक वर्ग और तरू सर्वहारा समाज का प्रतीक है-

---

१. ताप के ताये हुये दिन — त्रिलोचन शास्त्री — पृ० २३
२. अनकहनी भी कुछ कहनी है — त्रिलोचन शास्त्री — पृ० ६६

कठफोड़े ने मार-मार कर उन कीड़ों को
बाहर आज निकाल लिया आहार के लिये
जो तरू के अंतःस्थ शत्रु थे।(१)

पौराणिक, ऐतिहासिक-प्रतीक-

त्रिलोचन एक बहुज्ञ कवि है। उनके अध्ययन का क्षेत्र बहुत व्यापक है। उन्होंने भारतीय और पाश्चात्य साहित्य और दर्शन का गम्भीरतापूर्वक अध्ययन किया है। उनकी कविताओं में अनेक स्थलों पर पौराणिक-ऐतिहासिक संदर्भो को प्रतीक रूप में अंकित किया गया है। वे प्रयाग के महाकुम्भ जैसे पर्व का चित्रण करते समय जब वहाँ हो रही अव्यवस्था से बहुत क्षुब्ध होते हैं, तो उनके स्वर में व्यंग का पैनापन आ जाता है और वे वहाँ नियुक्त अधिकारियों के व्यवहार पर ग्लानि और तिरस्कार का भाव व्यक्त करते हैं। वे उन अधिकारियों की विलासिता और उनके ऐश्वर्य को इन्द्र, वरुण, कुबेर से उपमित करते हैं। यहां इन्द्र, वरुण, कुबेर वस्तुतः विलासिता के प्रतीक बनकर प्रयुक्त हुये हैं-

इन्द्र, वरुण, कुबेर से अधिकारी छाये थे।
शिविर सजे थे, धूलि कहाँ उनको लगती थी। (२)

इसी प्रकार कल्पतरु का प्रयोग कवि ने महत्वाकांक्षाओं के प्रतीक रूप में किया है। वह सोचता है कि जिस प्रकार कल्पतरु की कल्पना भले ही सुखद हो, किन्तु उससे किसी प्रकार की फल-प्राप्ति की कोई आशा यथार्थतः नहीं की जा सकती उसी प्रकार एक सर्वसाधारण की महत्वाकाँक्षा कठिन साधना के बाद भी आज की दुनिया में साकार रूप धारण नहीं कर पाती-

फलों की चाह में मैंने लगाया कल्पतरु कोई,
बराबर अश्रु से सींचा, कभी फलते कहाँ पाया।(३)

---

१. शब्द — त्रिलोचन शास्त्री — पृ० ६१
२. अरधान — त्रिलोचन शास्त्री — पृ० ६२
३. गुलाब और बुलबुल — त्रिलोचन शास्त्री — पृ० ६६

त्रिलोचन की प्रतिबद्धता मार्क्सवादी चिंतन के साथ है। वे जानते हैं कि दो नावों पर पैर रखने वाला व्यक्ति सागर पार नहीं कर सकता। इसलिये उसे अनिवार्यतः किसी एक नाव का ही आश्रय ले लेना चाहिये। आज समाज में इतनी अराजकता और असमानता है कि इसे मिटाने के लिये सशस्त्र क्रान्ति ही एकमात्र विकल्प है। सर्वहारा की सहिष्णुता का बाँध अब टूटने लगा है और निकट भविष्य में निर्णायक युद्ध होने की सम्भावना है। ऐसी स्थिति में हर व्यक्ति को किसी-न-किसी के साथ अपनी पक्षधरता की घोषणा करना आवश्यक है। कवि ने अपने काथ्य को महाभारत जैसे प्रतीक के माध्यम से स्पष्ट किया है। महाभारत व्यापक साम्यवादी क्रान्ति का प्रतीक है-

व्यूह बनते हैं दलों के एक दल चुनना पड़ेगा।
फिर महाभारत निकट है
लक्षणों से यह प्रकट है
शंख नीरव है रहें पर
भर चुका अब धैर्य घट है।(१)

त्रिलोचन ने महाभारत काल और रामायणकाल से अनेक सार्थक प्रतीकों का चयन किया है। सुरसा रामायणकाल की एक ऐसी राक्षसी थी, जो आवश्यकतानुसार अपना शरीर छोटा या बड़ा कर सकती थी। उसने लंका जाते समय हनुमान का मार्ग रोक लिया था और उन्हें निगल जाने के लिये आश्चर्यजनक ढंग से विशालकाय होकर अपना मुँह फैला लिया था। तब से सुरसा एक ऐसी अवस्था का प्रतीक बन गयी है, जो सबको निगलकर आत्मसात कर ले। त्रिलोचन आज के सुविधाभोगी वर्ग पर व्यंग करने के लिये और उनकी धन लोलुपता का उपहास करने के लिये बाढ़ की विभीषिका का चित्र खींचते हैं। बाढ़ के समय जन-धन हानि तो होती ही है, साथ ही फसलें भी नष्ट हो जाती है और दुर्भिक्ष या अकाल की स्थिति पैदा हो जाती है। ऐसे समय में भी श्रीनाथ तिवारी जैसे सुविधाभोगी व्यक्ति अपना सारा ध्यान अधिक से अधिक धन कमाने पर ही केन्द्रित रखते हैं। कवि ने बाढ़ को सुरसा के समानान्तर रखकर उसकी विभीषिका का मार्मिक चित्र खींचा है-

---

१. सबका अपना आकाश — त्रिलोचन शास्त्री — पृ० ३५

झूरी बोला कि बाढ़ क्या आई
लीलने अन्न को सुरसा आई
अब की श्रीनाथ तिवारी का घर
पक्का बन जाने की सुविधा आई।(१)

कामधेनु एक ऐसी पौराणिक धेनु है, जो सर्वसमर्थ है और सभी कामनाओं को पूर्ण करने में सक्षम है। कवि ने नदी, बाँध परियोजनाओं के बहुआयामी लाभों का संकेत करने के लिये कामधेनु को प्रतीक रूप में प्रयोग किया है-

नदी ने कहा था : मुझे बाँधो
मनुष्य ने सुना और
आखिर उसे बाँध लिया
बाँध कर नदी को
मनुष्य दुह रहा है
अब वह कामधेनु है।(२)

आर्थिक-जीवन से सम्बद्ध प्रतीक-

त्रिलोचन कुछ चुनी हुई घटनाओं को लेकर अपनी प्रगतिशीलता का मार्मिक चित्रण करते हैं। अपने सॉनेट में उन्होंने 'इंदो' नाम की एक भोली-भाली ग्रामीण बाला के जीवन को उद्घाटित किया है। इस लड़की का अल्पवय में विवाह हो जाता है और शीघ्र ही वह मां भी बन जाती है। युवावस्था में ही वह बूढ़ी दिखने लगती है। यह सब इसलिये होता है क्योंकि आज भी भारतीय ग्रामीण जीवन में अज्ञानता और कुरीतियाँ व्याप्त हैं। 'तूने तो सारी खो दी अपनी पूंजी'- इस कथन में कवि ने बाल-विवाह जैसी कुरीति पर तीखा प्रहार किया है। 'पूंजी' शब्द यौवन और सौन्दर्य की प्रतीकात्मक व्यंजना करता है-

इंदो आई थी। पहले मैं ने पहचाना
नहीं। बताया उसकी मां ने देखा, गोदी

---

१. गुलाब और बुलबुल — त्रिलोचन शास्त्री — पृ० १३८
२. ताप के ताये हुये दिन — त्रिलोचन शास्त्री — पृ० १३

भरी हुई है। आया मुझ को याद जमाना
गुजरा हुआ। कहा, तू ने तो सारी खो दी
अपनी पूंजी।(१)

आज की भौतिकतावादी मानसिकता पर व्यंग करते हुये कवि उसे 'कबंध युग' की संज्ञा देता है। कबंध युग पूंजीवादी व्यवस्था का प्रतीक है। 'सिर सबका पेट में धँसा है' कहकर कवि सामाजिक जीवन की व्यवसायिक मानसिकता को उजागर करता है। आजकल पैसा इतना महत्वपूर्ण तत्व बन गया है कि दर्शन, ज्ञान-विज्ञान, कला-कौशल सभी उसी की तुला में तुलते है-

यह कबंध युग है- सिर सब का पेट में धंसा
है, बाहें आहार खोजने को जाती है
इधर-उधर, यों जब भी वे जो कुछ पाती है,
उसे जकड़ लाती है............
महाराज पेट के सभी मानुष चाकर है,
दर्शन, ज्ञान, कला, कौशल, विज्ञान उन्हीं की
टहल बजाया करते है।................(२)

तुलनात्मक निष्कर्ष-

आलोच्य कवियों ने कविता को प्रभावशाली बनाने के लिये प्रतीकों का भरपूर उपयोग किया है। साधारणतया प्रतीक नियत और अनिवार्य रूप से एकार्थ व्यंजक होते है, किन्तु आलोच्य कवियों ने जिन प्रतीकों का प्रयोग किया है, वे अपनी नवीनता के कारण अलग-अलग व्यक्तियों को अलग-अलग अर्थ का आभास दे सकते है। इन कवियों ने प्रतीकों का चयन करते समय परम्परागत प्रतीक-विधान से स्वयं को बचाने का भरसक प्रयास किया है और यदि भूल से कभी कोई परम्परागत प्रतीक इनकी कविताओं में आ भी गया है, तो इन्होंने अपने काव्य-कौशल से उसमें नये अर्थ का समावेश कर दिया है।

आलोच्य कवियों ने जीवन के लगभग हर क्षेत्र से प्रतीकों का चयन किया है। केदार

---

१. उस जनपद का कवि हूँ। त्रिलोचन शास्त्री पृ० ६२

२. वही पृ० १०३

के काव्य में सबसे अधिक प्रतीक प्रकृति के क्षेत्र से चुने गये हैं। आग, आलोक, अंधकार, सूरज, दिन, कमल, कोयला, कोहरा, कली, बबूल आदि प्राकृतिक उपादानों को केदार ने आवश्यकतानुसार प्रतीकों का रूप दे दिया है। इन सामान्य रूपों के अतिरिक्त उन्होंने आंचलिक प्रकृति के विशिष्ट रूपों जैसे- 'गर्रानाला' आदि को भी सार्थक प्रतीक बनाकर प्रस्तुत किया है। सामाजिक जीवन की भिन्न-भिन्न स्थितियों को रूपायित करने के लिये प्राय: इन्हीं प्राकृतिक-प्रतीकों का आश्रय लिया है। केदार की प्रतीक-योजना में एक उल्लेखनीय बात यह है कि प्राय: सभी प्रतीक सर्वदा एक ही अर्थ की व्यंजना नहीं करते। भिन्न-भिन्न कविताओं में उनके अर्थ में थोड़ी-बहुत भिन्नता आ जाती है।

नागार्जुन और त्रिलोचन ने भी प्रकृति के क्षेत्र से बिपुल मात्रा में प्रतीकों को चुना है। पर उनके प्रतीकों में नयापन होने के बावजूद अर्थ की भिन्नता प्राय: कम दिखाई देती है। वस्तुत: त्रिलोचन जीवन-यथार्थ के विविध पक्षों को प्राय: वर्णनात्मक ढंग से ही अंकित करते हैं, इसलिये प्रतीकों के प्रति वे बहुत उत्साहित नहीं दिखाई देते। नागार्जुन ने अपनी बात व्यंगात्मक ढंग से कहने में अधिक रुचि प्रदर्शित की है, इसलिये उनके यहां भी प्रतीकों के प्रति वैसा उत्साह नहीं दिखाई देता, जैसा केदार में मिलता है। उनके यहां 'सिन्दूरी-किरण' 'बुरे ग्रह', 'युग-गंगा', 'दोपहर', 'सूरज', 'धुंध', 'अमावस', आदि प्राकृतिक-प्रतीक प्रयुक्त हुये हैं जो शोषित-शोषक समाज की भिन्न-भिन्न मुद्राओं को इंगित करते हैं और भावी सामाजिक व्यवस्था में अभीष्ट परिवर्तन की व्यंजना करते हैं। त्रिलोचन ने 'पीपल के पत्ते', 'केले के पत्ते', 'दूब', 'काई' जैसी वनस्पतियों का उपयोग प्रतीक रूप में अधिक किया है। अंधकार और प्रभात भी उनके यहाँ प्रतीक बनकर आये हैं, लेकिन त्रिलोचन के प्राकृतिक-प्रतीकों में लोक-जीवन की जो संस्पर्श मिलता है, वह अन्यत्र दुर्लभ है। उनकी प्रतीकात्मक शब्दावली में भी ग्राम्य-जीवन की स्पष्ट झलक देखी जा सकती है।

मार्क्सवादी जीवन-दर्शन से सम्बद्ध होने के कारण आलोच्य कवियों की कविताओं में मार्क्सवादी-प्रतीकों को भी ससम्मान स्थान दिया गया है। केदार ने लाल फौज, हँसिया, हथौड़ा जैसे साम्यवादी प्रतीकों को आदर के साथ अपनी कविताओं में स्थान दिया है। नागार्जुन ने भी लाल सबेरा,

लाल भवानी, लाल-लाल पत्ते आदि मार्क्सवादी शब्दावली को प्रतीक रूप में प्रयोग किया है। त्रिलोचन ने सामाजिक यथार्थ को चित्रित करने के लिये पंचायत, डाँड-बाँध, जाति-गंगा आदि रूढ़ शब्दों का प्रतीकात्मक प्रयोग करते हुये अपनी प्रगतिशील चेतना का परिचय दिया है।

आलोच्य कवियों ने पशु-जीवन से भी कुछ प्रतीकों को लेकर अपनी कविताओं को सजाया है। केदार ने पूंजीपतियों के लिये डांगर, गिद्ध, गधा जैसे प्रतीकों का प्रयोग किया है। सर्वहारा-वर्ग की विवशता को व्यंजित करने के लिये बकरे को उन्होंने प्रतीक रूप में प्रयुक्त किया है। नागार्जुन ने पशु-जीवन से जिन प्रतीकों को चुना है, वे केदार की अपेक्षा अधिक भयानक और जुगुप्सा जनक चित्र खड़ा करते हैं। बाघिन, भेड़िया, सिंह, बाघ, रीछ, भालू, गीदड़, जोंक आदि उनकी घृणा और आक्रोश की तीव्रता को व्यंजित करते हैं। त्रिलोचन ने भी गधा, कौआ, कठफोड़वा आदि पशु-पक्षियों को प्रतीक बनाकर अपनी कविताओं में प्रयोग किया है, किन्तु यह आवश्यक नहीं है कि उन्होंने इन प्रतीकों को जिस अर्थ में प्रयुक्त किया है, ठीक उसी अर्थ में केदार और नागार्जुन ने भी प्रयोग किया हो। वस्तुतः आलोच्य कवियों की प्रतीक-योजना में यह बात स्पष्ट रूप से दिखाई देती है कि उन्होंने किसी भी प्रतीक को उसके रूढ़ प्रतीकात्मक अर्थ में प्रयोग नहीं किया, बल्कि आवश्यकतानुसार उसमें अपने मनोवांछित अर्थ का सन्निवेश किया है।

आलोच्य कवियों ने पौराणिक-ऐतिहासिक क्षेत्र से भी अनेक सार्थक-प्रतीकों को लिया है। केदार के काव्य में कामधेनु, सुरसा, व्यास मुनि, भीम, अर्जुन, हरिश्चन्द्र, द्रोपदी, शैव्या, शची आदि पौराणिक नामों तथा डायर जैसे ऐतिहासिक पात्रों को प्रतीकात्मक रूप से प्रयुक्त किया गया है। नागार्जुन और त्रिलोचन के यहां पौराणिक प्रतीकों का प्रयोग तुलनात्मक रूप में अधिक हुआ है, क्योंकि इनका अध्ययन क्षेत्र संस्कृत-साहित्य से पुष्ट है। नागार्जुन ने चतुर्भुज, दुःशासन, रावण युधिष्ठिर, पितामह, दुर्वासा, विदुर आदि पौराणिक पात्रों तथा हिटलर, मुसोलिनी और चाणक्य जैसे ऐतिहासिक पात्रों को अपनी कविताओं में प्रतीक बनाया है। त्रिलोचन भी इन्द्र, वरुण, कुबेर, सुरसा,

कल्पतरु, कामधेनु, महाभारत आदि को प्रतीक रूप में प्रयुक्त करते हैं। पौराणिक पात्रों की प्रतीकात्मक प्रस्तुति में जहाँ एक ओर केदार के मन का क्षोभ और आक्रोश छलकता दिखाई देता है, वहाँ दूसरी ओर नागार्जुन और त्रिलोचन उस आक्रोश को काव्यात्मक शिष्टता के साथ व्यंजित करते हैं। नागार्जुन इसीलिये विदुर की जगह विदुरों, द्रुपदसुता की जगह द्रुपदसुताओं जैसे बहुवचन बनाकर इन प्रतीकों को अधिक प्रभावशाली बना देते हैं।

आर्थिक-जगत से भी आलोच्य कवियों ने डालर, खादी, मलमल, बिड़ला, टाटा, डालमियां, पूँजी आदि को लेकर प्रतीक रूप में ढाला है। इस प्रकार जीवन के लगभग हर क्षेत्र से इन कवियों ने आवश्यकतानुसार प्रतीकों का चयन किया है और उनमें अपनी प्रगतिशील चेतना के अनुरुप नये-नये अर्थो का समावेश किया है। इनकी प्रतीक योजना से न तो कहीं कविता बोझिल हुई है और न ही उससे काव्य के अभीष्ट अर्थ को समझने में कोई कठिनाई होती है। वस्तुतः इनके यहां प्रतीकों को कविता में थोपा नहीं गया, बल्कि आवश्यकता पड़ने पर ही कविता को अधिक व्यंजक बनाने के लिये और उसे चित्रात्मक रूप देने के लिये प्रतीकों का प्रयोग किया गया है।

अध्याय-8
उपसंहार

आलोच्य कवियों के सौन्दर्य-बोध का तुलनात्मक
निष्कर्ष एवं परवर्ती हिन्दी कविता में उसका प्रभाव ।

अध्याय-8

उपसंहार

आलोच्य कवि छायावादोत्तर हिन्दी कविता की एक मुख्य काव्य धारा-प्रगतिशील कविता के प्रमुख स्त्रम्भ हैं । इन्होंने मार्क्सदर्शन के आलोक में सामाजिक चेतना और भावबोध को अपना लक्ष्य बनाकर काव्य - रचना की है । फलतः इनके काव्य में सामाजिक यर्थाथ का इस प्रकार चित्रण किया गया है कि कुरूप, शोषक, सड़ी-गली विसंगति ग्रस्त शक्तियों का पर्दाफाश हो, और नयी सामाजिक शक्तियों के संघर्षों, युयुत्सा और आस्था को बल मिले । इनकी कविता सामाजिक जीवन की वास्तविकता को लेकर चली, जनता तक पहुँचना और जनता के जीवन की ही बात कहना उसका लक्ष्य रहा, इसलिए वह छायावाद की वायवी, असमान्य, रेशमी परिधान शालिनी और सूक्ष्म भाषा को छोड़कर सुस्पष्ट, सामान्य, प्रचलित भाषा को अपना कर चली । उसमें प्रतीक, बिम्ब, शब्द, मुहावरे आदि सभी का चयन जन-जीवन के बीच से किया गया । इसलिए एक बहुत ही जीवन्त भाषा का उदय हुआ ।

यथार्थवाद आलोच्य कवियों की सौन्दर्य-चेतना का केन्द्र विन्दु है । इन्होंने सौन्दर्य की तलाश महलों में नहीं, झोपड़ों में की है । इन्हें सौन्दर्य का दर्शन सुविधाभोगी वर्ग के विलासितापूर्ण जीवन में नहीं, अपने श्रम से अपनी रोटी कमाने वाले मजदूर और किसानों में होता है । सर्वहारा वर्ग की जिजीविषा इन्हें मन्त्रमुग्ध करती है । प्रकृति की सुन्दरता भी इन्हें मानव जीवन के परिपार्श्व में ही अधिक आकृष्ट करती है । प्रकृति के प्रकृत-सौन्दर्य में इनकी उतनी रूचिं नहीं है । प्रकृति के सामान्य रूपों की अपेक्षा उसके विशिष्ट रूप - आस-पास के सुपरिचित नदी-पहाड़, खेत-खलिहान, पशु-पक्षी, पेड़-पौधे आदि इनके आकर्षण का प्रमुख स्रोत हैं ।

केदार, नागार्जुन और त्रिलोचन ने लगभग एक-सी विषय वस्तु को लेकर एक ही युग में एक-से वातावरण में सांस लेते हुए काव्य-रचना की हैं, फिर भी इन तीनों कवियों ने दृश्य जगत का जो चित्रण किया है, उसमें ऊपर-ऊपर से देखने पर पर्याप्त साम्य होते हुए भी, अन्ततः स्पष्ट अन्तर दृष्टिगोचर होता है । तीनों कवियों ने प्रेम के विविध रूपों-दाम्पत्य-प्रेम, वात्सल्य, देश-प्रेम, सख्य-प्रेम, प्रकृति-प्रेम और कुल मिलाकर मानवीय-प्रेम आदि का व्यापक चित्रण किया है । केदार अपनी कविताओं का आरम्भ वैयक्तिक प्रेम चित्रण से करते हैं । यह प्रेम युवावस्था की सहजात भावना के रूपों में व्यक्त हुआ है । प्रेम का आलम्बन परकीया नायिका न होकर, पत्नी है । पत्नी-प्रेम के माधुर्य से ओत-प्रोत अनेक चित्र केदार ने अंकित किए हैं । संयोग और वियोग दोनों अवस्थाओं पर कवि ने लेखनी चलायी है, किन्तु उनके काव्य में वियोग की अपेक्षा संयोग की चित्रण अधिक हुआ है । नागार्जुन और त्रिलोचन ने भी दाम्पत्य-प्रेम के अनेक सुन्दर चित्र खींचे है । इनका प्रेम वर्णन भी परकीया नायिका के प्रति न होकर अपनी पत्नियों के प्रति है, किन्तु जहाँ केदार संयोग

चित्रण पर अपना ध्यान अधिक-केन्द्रित रखतें है, वहाँ नागार्जुन और त्रिलोचन संयोग सुखों की अपेक्षा उसके वियोग पक्ष का चित्रण अधिक करते हैं ।

अपने कवि-मित्रों के प्रति आत्मीयता बोध और उनसे मिलकर होने वाली प्रसन्नता का चित्रण तीनों कवियों ने किया है, किन्तु केदार जहाँ अपने समानधर्मा कवि मित्रों के प्रति ही संवेदनशील दिखाई देते हैं, वहाँ नागार्जुन भिन्न विचारधारा वाले कवियों से भी घुल-मिलकर रहने की उदार भावना का परिचय देते हैं । वे केदार की तरह प्रयोगवादी या नयी कविता के कवि को अस्पृश्य नही मानतें। त्रिलोचन की दृष्टि में भी इस प्रकार की कोई संकीर्णता नही है, बल्कि वे अपने कवि मित्रों के प्रति केदार और नागार्जुन से भी अधिक उदात्त भावना का परिचय देते हैं । केदार और नागार्जुन जहाँ अपने सख्यभाव की दुनिया में खोकर आत्मीय सुख की अनुभूति करते हैं, वहाँ त्रिलोचन अपनी वैयक्तिक सुखानुभूति से आगे निकलकर- अपने मित्रों के नित्य-प्रति फूलने-फलने की कामना भी करते हैं ।

केदार, नागार्जुन और त्रिलोचन मूलतः मानवीय प्रेम के कवि हैं । सामाजिक जीवन में व्याप्त शोषण और अनाचार का चित्रण करते समय इन्होंने शोषितों के प्रति सच्ची सहानुभूति और शोषकों के प्रति घृणा और आक्रोश का भाव व्यक्त किया हैं । यह घृणा और आक्रोश इनके सच्चे मानवीय-प्रेम का ही परिणाम है । पर इस प्रेम और घृणा के अन्तर्द्वन्द्व को चित्रित करने में तीनों कवियों के बीच तीव्रता का अन्तर दिखायी देता है ।केदार मार्क्सवादी सिद्धान्तों से अनुप्राणित होकर सर्वहारा के प्रति प्रेम और शोषक वर्ग के प्रति घृणा का भाव व्यक्त करते हैं, किन्तु नागार्जुन ने स्वयं पूँजीवादी व्यवस्था के घातक प्रभाव को अपने जीवन में झेला है, इसलिए उनके द्वारा व्यक्त की गई पीड़ा में जो सच्चाई झलकती है, वह केदार के काव्य में उस तीव्रता के साथ व्यक्त नहीं हो सकी । त्रिलोचन ने भी जीवन की सच्चाई का सीधा साक्षात्कार किया है, इसलिए उनके द्वारा भी प्रदर्शित की गई मानवीय करूणा और अन्याय के विरूद्ध उठायी गई आवाज में तुलनात्मक रूप से अधिक पैनापन है ।

जीवन की क्षण-भंगुरता और उसके दुःख-दर्दो से आहत होकर भी केदार, नागार्जुन और त्रिलोचन निराश नहीं होते, बल्कि जीवन का हर आघात उनके अन्दर जीवन के प्रति आस्था और विश्वास को दृढ़तर कर देता हैं । मृत्यु चिर सत्य है-यह जानते हुए भी मृत्यु का भय इन कवियों में नहीं है । जीवन-पर्यन्त दमे का शिकार रहने के बावजूद नागार्जुन जीवन से कभी उकतायें नहीं है । परिस्थितियों की मार त्रिलोचन ने भी कम नही सही, किन्तु इससे जीवन के प्रति उनकी आस्था कम नहीं हुई, बल्कि जीवन की कठिनाइयों से उनकी जिजीविषा को और बल मिला है ।

केदार, नागार्जुन और त्रिलोचन मूलतः यर्थाथवादी कवि है । जीवन के समग्र यथार्थ को चित्रित करना उनकी कविता का उद्देश्य है । कविता में कल्पना की उपस्थिति उन्हें वहीं तक स्वीकार

है, जहाँ तक यर्थाथ की हानि न हो । इसीलिए इनकी कविताओं में वायवीय कल्पना के दर्शन नहीं होते । कल्पना का उपयोग इन कवियों ने कविता की प्रभविष्णुता बढ़ाने के लिए किया है । जो भी कल्पना की गई है, वह किसी-न-किसी रूप में यर्थाथ जगत से जुड़ी हुयी है । केदार की आरम्भिक कविताओं में रूमानी कल्पनाओं का प्राधान्य है, किन्तु प्रगतिशील विचारधारा से जुड़ने के बाद उनकी कल्पना का स्वरूप बदल जाता है और वे जीवन के प्रति कठोर और क्रान्तिकारी कल्पनाएँ करने लगते हैं । नागार्जुन के कल्पना संसार में रूमानियत का स्थान केदार से बहुत कम है । वे जिन कल्पनाओं को आधार बनाकर अपनी कविताओं का ताना-बाना बुनते है । वे प्रायः इसी जीवन जगत से सम्बन्धित होती हैं । प्रकृति-सौन्दर्य का चित्र खींचते समय वे कुछ दूर तक कल्पना का सहारा लेते हैं, पर शीघ्र ही जीवन का कटु यथार्थ कल्पना के तार छिन्न-भिन्न कर देता है । त्रिलोचन मूलतः लोक-जीवन के कवि हैं । वे कविता में कल्पना के हवाई महल नहीं खड़े करते, पर जहाँ कविता को प्रभावपूर्ण बनाने के लिए कल्पना का उपयोग करते हैं, वहाँ उनकी दृष्टि में सबसे पहले लोक-जीवन ही आता है । उनकी कल्पना में लोक-संस्कृति का भाव विद्यमान रहता है ।

आलोच्य कवियों के सौन्दर्य-विधान में बिम्ब का विशेष महत्व है । बिम्ब के लगभग सभी प्रकार-इन कवियों मे मिल जाते हैं । सबसे अधिक बिम्ब इन्द्रिय संवेदना से प्रसूत हैं । केदार और नागार्जुन के इन्द्रिय संवेद्य बिम्बों में एक उल्लेखनीय अन्तर यह है कि नागार्जुन जहाँ किसी दृश्य में डूबकर मात्र आनन्दित होते हैं, वहाँ केदार उस दृश्य के मनुष्य जीवन पर पड़ने वाले प्रभाव को भी चित्रित करते हैं, बल्कि प्रभाव चित्रण में ही उनका मन अधिक रमता है । त्रिलोचन के यहाँ भी इन्द्रिय-संवेद्य बिम्बों की अधिकता है । उनके बिम्ब तुलनात्मक रूप से अधिक व्यंजनागर्भी होते हैं ।

केदार, नागार्जुन और त्रिलोचन ने यथातथ्य वस्तु परक बिम्बों की अपेक्षा गतिशील बिम्बों का सृजन अधिक किया है । केदार की आरम्भिक रचनाओं में यथार्थ के प्रति अतिरिक्त मोह होने के कारण यद्यपि वस्तुपरक यथातथ्य बिम्बों की बहुलता है, किन्तु उनकी परवर्ती रचनाओं में वस्तु को उसकी गत्यात्मक भूमिका में ही अधिक देखा गया हैं । त्रिलोचन और नागार्जुन के वस्तु-बिम्ब आरम्भ में पल भर के लिए स्थिर बिम्ब जैसे दिखते हैं, पर थोड़ी ही देर में बिम्ब की स्थिरता गतिशीलता में परिवर्तित हो जाती है । केदार और त्रिलोचन के काव्य में सान्द्र बिम्बों की अधिकता है, जबकि नागार्जुन की बिम्ब योजना में विवृत बिम्बों की अधिकता है । केदार और त्रिलोचन में भी विवृत बिम्बों के उदाहरण मिल जाते हैं, किन्तु उनमें वैसा भाव विस्तार नहीं दिखायी देता जैसा नागार्जुन के विवृत बिम्बों में दृष्टिगत होता है ।

आलोच्य कवियों ने कविता को प्रभावशाली बनाने के लिए प्रतीकों का भी भरपूर उपयोग

किया हैं । साधारणतया प्रतीक नियत- और अनिवार्य रूप से एकार्थ व्यंजक होते है, किन्तु आलोच्य कवियों ने जिन प्रतीकों का प्रयोग किया है, वे अपनी नवीनता के कारण अलग-अलग व्यक्तियों को अलग-अलग अर्थ का आभास दे सकते हैं । इन कवियों ने परम्परागत प्रतीकों से स्वयं को बचाने का भरसक प्रयास किया है, पर यदि-धोखे से कोई परम्परागत प्रतीक इनकी कविताओं में आ भी गया है, तो इन्होंने अपने काव्य-कौशल से उसमें नये अर्थ का समावेश कर दिया है । आलोच्य कवियों ने जीवन के लगभग हर क्षेत्र से प्रतीकों का चयन किया है । केदार के काव्य में सबसे अधिक प्रतीक प्रकृति के क्षेत्र से चुने गए हैं । आग, आलोक, अंधकार, सूरज, दिन, कमल, कोहरा, कली, बबूल आदि प्राकृतिक उपादानों को केदार ने आवश्यकतानुसार प्रतीकों का रूप दे दिया है। इन सामान्य रूपों के अतिरिक्त उन्होंने आंचलिक प्रकृति के विशिष्ट रूपों जैसे - 'गर्रनाला' आदि को भी सार्थक प्रतीक बनाकर प्रस्तुत किया है । इन प्रतीकों में एक उल्लेखनीय बात यह है कि ये प्रतीक सर्वदा एक ही अर्थ की व्यंजना नहीं करते, बल्कि भिन्न-भिन्न कविताओं में उनके अर्थ में थोड़ी-बहुत भिन्नता आ जाती है । नागार्जुन और त्रिलोचन ने भी प्रकृति के क्षेत्र से विपुल मात्रा में प्रतीकों को चुना है, पर उनके प्रतीकों में नयापन होने के बावजूद अर्थ की भिन्नता प्रायः कम दिखायी देती है ।

त्रिलोचन की प्रतीकात्मकता में लोक-जीवन का जो संस्पर्श मिलता है, वह अन्यत्र दुर्लभ है । उनकी प्रतीक योजना में ग्राम्य-जीवन की स्पष्ट झलक देखी जा सकती है । नागार्जुन और त्रिलोचन के यहाँ पौराणिक प्रतीकों का प्रयोग केदार से अधिक हुआ है । केदार ने भी पौराणिक प्रतीक चुने हैं, किन्तु इन प्रतीकों का प्रयोग करते समय केदार के मन का क्षोम और आक्रोश छलकता दिखायी देता है, जबकि नागार्जुन और त्रिलोचन इस आक्रोश को काव्यात्मक शिष्टता के साथ व्यंजित करते हैं । नागार्जुन इसीलिए विदुर की जगह 'विदुरों', द्रुपदसुता की जगत 'द्रुपदसुताओं' - जैसे बहुवचन बनाकर पौराणिक प्रतीकों को अधिक प्रभावशाली तथा व्यंजनागर्भी बना देते हैं । आलोच्य कवियों की प्रतीक-योजना में नयापन होने के बावजूद अभीष्ट अर्थ समझने में कोई कठिनाई नही होती। वस्तुतः इन कवियों ने प्रतीकों को कविता में थोपा नहीं है । बल्कि आवश्यकता पड़ने पर ही कविता को अधिक व्यंजक बनाने के लिए तथा उसे चित्रात्मक रूप देने के लिए प्रतीकों का समुचित प्रयोग किया है, जिससे काव्य-सौन्दर्य में अपेक्षित श्री-वृद्धि हुई है।

केदार, नागार्जुन और त्रिलोचन के सौन्दर्य बोध की सबसे महत्वपूर्ण उपलब्धि यह है कि इन्होंने सौन्दर्य को व्यक्तिवादी अवधारणा से मुक्त करके उसे सामाजिक जन-जीवन में प्रतिष्ठित किया है । यथार्थवादी सौन्दर्य-दृष्टि होने के कारण इन्होंने सहज-सामान्य में असाधारण सौन्दर्य की खोज की है । शताब्दियों से उपेक्षित और शोषित जन-समुदाय इनकी लेखनी का स्पर्श पाकर सौन्दर्य की परिधि में आ गया है । इनकी कविता का मुख्य उद्देश्य-सर्वहारा की सोयी हुई शक्ति को जगाना

और उन्हें अपने अधिकारों के प्रति-जागरूक करना है, इसलिए इन्होंने एक ऐसे काव्य-शिल्प का निर्माण किया है, जिसके द्वारा ये अपनी बात जन-जन तक पहुँचा सकें । छन्द, अलंकार और रस जैसे परम्परागत काव्य-शास्त्रीय प्रतिबन्धों से अलग हटकर इन्होंने अभिव्यक्ति को अधिक-से-अधिक लोक ग्राह्य बनाने के लिए प्रभावशाली बिम्बों और प्रतीकों का उपयोग किया है और सरल-सहज भाषा में अपनी बात कहने पर जोर दिया हैं ।

आलोच्य कवियों की सौन्दर्य दृष्टि का परवर्ती हिन्दी कविता में व्यापक प्रभाव दृष्टिगोचर होता है । नयी कविता और उसके बाद की साठोत्तरी हिन्दी कविता में लोक सम्पृक्ति की जो ललक दिखाई देती है, वह प्रगतिशील सौन्दर्य दृष्टि का ही परिष्कृत रूप है । परवर्ती कवियों ने वर्गीय चेतना से ऊपर उठकर सामाजिक यर्थाथ को उसकी सम्पूर्णता में चित्रित किया है । मनुष्य का जीवन, वह चाहे किसी वर्ग का हो, चाहे व्यक्ति का हो या समाज का, अपने सम्पूर्ण दुःख-सुख, राग-बिराग के साथ परवर्ती कविता में अभिव्यक्त हुआ है । लोक-जीवन की अनुभूति, सौन्दर्य-बोध, प्रकृति और उसके प्रश्नों को एक सहज और उदार मानवीय भूमि पर ग्रहण करने की प्रवृत्ति सामने आयी है। साथ ही लोक-जीवन के बिम्बों, प्रतीकों, शब्दों और उपमानों को लोक-जीवन के बीच से चुनकर एक जीवंत काव्य-शिल्प का निर्माण किया गया है ।

संदर्भ ग्रन्थ-सूची

केदारनाथ अग्रवाल की रचनायें - प्रकाशक- परिमल प्रकाशन मोतीलाल नेहरू नगर, इलाहाबाद ।

१. युग की गंगा (१९४७)
२. नींद के बादल (१९४७)
३. लोक और आलोक (१९५७)
४. फूल नहीं रंग बोलते हैं (१९६५)
५. आग का आइना (१९७०)
६. बम्बई का रक्त स्नान (१९७५)
७. गुलमेंहदी (१९७८)
८. पंख और पतवार (१९७९)
९. मार प्यार की थापें (१९८१)
१०. हे मेरी तुम (१९८१)
११. कहें केदार खरी-खरी (१९८१)
१२. अपूर्वा (१९८४)
१३. जमुन जल तुम (१९८४)
१४. बोले बोल अबोल (१९८५)
१५. जो शिलायें तोड़ते हैं (१९८६)
१६. आत्मगंध (१९८८)
१७. अनहारी हरियाली (१९९०)
१८. खुलीं आँखे खुले डैने (१९९३)
१९. पुष्पदीप (१९९४)
२०. वसन्त में हुई प्रसन्न पृथ्वी
२१. मेरी कविता यात्रा, संस्मरणात्मक वार्ता
२२. समय-समय पर (निबंध) (१९७०)
२३. विचार-बोध (निबंध) (१९८०)
२४. विवेक विवेचन (निबंध) (१९८१)
२५. आधुनिक कवि केदारनाथ अग्रवाल

नागार्जुन की रचनायें

१.	युगधारा,	यात्री प्रकाशन दिल्ली	(१९५३)
२.	सतरंगे पंखो वाली	वाणी प्रकाशन नई दिल्ली	(१९८४)
३.	प्यासी पथराई आँखे		(१९६२)
४.	तालाब की मछलियाँ		(१९७५)
५.	आज के लोकप्रिय हिन्दी कवि नागार्जुन		(१९७७)
६.	खिचड़ी विप्लव देखा हमने-	सम्भावना प्रकाशन हापुड़	(१९८०)
७.	तुमने कहा था		(१९८०)
८.	हजार-हजार बाँहो वाली		(१९८१)
९.	पुरानी जूतियों का कोरस		(१९८३)
१०.	रत्नगर्भ	वाणी प्रकाशन नई दिल्ली	(१९८४)
११.	ऐसे भी हम क्या, ऐसे भी तुम क्या	वाणी प्रकाशन नई दिल्ली	(१९८५)
१२.	शपथ		(१९४८)
१३.	चना जोर गरम		(१९५२)
१४.	खून और शोले		(१९५६)
१५.	प्रेत का बयान		(१९५७)
१६.	अब तो बंद करो हे देवि यह चुनाव का प्रहसन		(१९७१)
१७.	नागार्जुन : चुनी हुई रचनायें भाग-2	वाणी प्रकाशन नई दिल्ली	(१९९३)
१८.	बाबा बटेशरनाथ		(१९५४)
१९.	कुम्भीपाक		(१९६०)
२०.	भस्मांकुर	राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली	(१९७०)

त्रिलोचन की रचनायें

१.	धरती	साहित्य वाणी अल्लापुर इलाहाबाद	(१९४५)
२.	गुलाब और बुलबुल	वाणी प्रकाशन नई दिल्ली	(१९८५)
३.	दिगन्त	साहित्य वाणी अल्लापुर-इलाहाबाद	(१९५७)
४.	ताप के ताये हुए दिन	साहित्य वाणी पुराना अल्लापुर-इलाहाबाद	(१९८०)
५.	शब्द	वाणी प्रकाशन नई दिल्ली	(१९८०)
६.	उस जनपद का कवि हूँ	राधाकृष्ण प्रकाशन दिल्ली	(१९८१)
७.	अरधान		(१९८३)
८.	तुम्हें सौपता हूँ		(१९८५)

९. फूल नाम है एक (१९८५)

१०. अनकहनी भी कुछ कहनी है राधाकृष्ण प्रकाशन नई दिल्ली (१९८५)

११. प्रतिनिधि कविताएँ सं. केदारनाथ सिंह राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली (१९८५)

१२. सबका अपना आकाश राजकमल प्रकाश्न नई दिल्ली (१९८७)

१३. चैती वाणी प्रकाशन नई दिल्ली (१९८७)

१४. अमोला वाणी प्रकाशन नई दिल्ली (१९९०)

समीक्षात्मक एवं अन्य ग्रन्थ

१. आस्था और सौन्दर्य डॉ० रामविलास शर्मा

२. आधुनिक साहित्य डॉ० नन्द दुलारे वाजपेयी

३. आधुनिक हिन्दी कविता में अप्रस्तुत विधान नरेन्द्र मोहन

४. आधुनिक हिन्दी कविता की मुख्य प्रवृत्तियाँ डॉ० नगेन्द्र

५. आज के लोकप्रिय हिन्दी कवि: नागार्जुन सं. डॉ० प्रभाकर माचवे
प्रकाशक राजपाल एण्ड संस नई दिल्ली

६. आधुनिक कवि-2 : सुमित्रानंदन पंत
प्रकाशक साहित्य सम्मेलन प्रयाग

७. आस्था के चरण डॉ० नगेन्द्र

८. आधुनिक हिन्दी कविता में शिल्प डॉ० कैलास वाजपेयी

९. कामायनी जयशंकर प्रसाद

१०. कला विवेचन डॉ० कुमार विमल

११. कविप्रिया आ० केशवदास

१२. काव्य-शास्त्र डॉ० कृष्णादत्त अवस्थी
प्रकाशक-ग्रन्थम कानपुर (१९७५)

१३. काव्य-शास्त्र युग और प्रवृत्तियाँ कैलाश नारायण अवस्थी

१४. केदार व्यक्तितत्व और कृतित्व सं. श्री प्रकाश
प्रकाशक परिमल प्रकाशन सोहततियाबाग इलाहाबाद ६ जुलाई १९७०

१५. काव्य दर्पण रामदहिन मिश्र

१६. काव्य में उदान्त तत्व डॉ० नगेन्द्र

१७. काव्य बिम्ब डॉ० नगेन्द्र

१८. कबीर का रहस्यवाद डॉ० राम कुमार वर्मा
प्रकाशक-साहित्य भवन, इलाहाबाद १९५१

१९. काव्य और कला तथा अन्य निबंध — जयशंकर प्रसाद
प्रकाशक भारती भण्डार प्रयाग

२०. चिन्तामणि भाग १ — आचार्य रामचन्द्र शुक्ल

२१. चिन्तामणि भाग २ — आचार्य रामचन्द्र शुक्ल

२२. चिद् विलास — डॉ० सम्पूर्णानंद

२३. छायावाद — सं० उदयभानु सिंह

२४. छायावादी काव्य में सौन्दर्य-दर्शन — सुरेश चन्द्र त्यागी
प्रकाशक अनुराधा प्रकाशन मेरठ १९७६

२५. छायावादोत्तर हिन्दी काव्य की सामाजिक और सांस्कृति पृष्ठभूमि — डॉ० कमलाप्रसाद पाण्डेय
प्रकाशक-रचना प्रकाशन खुल्दाबाद, इलाहाबाद १९७२

२६. छायावादोत्तर हिन्दी कविता में बिम्ब विधान — डॉ० उमा अष्टवंश

२७. छायावादोत्तर काव्य — डॉ० सिद्धेश्वर प्रसाद

२८. जयशंकर प्रसाद वस्तु और कला — डॉ० रामेश्वर लाल खण्डेलवाल

२९. पं० जगन्नाथ तिवारी अभिनन्दन ग्रन्थ

३०. तुलसीदास — सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला'

३१. नये प्रतिनिधि कवि (तलासे हुए मूल्य) — डॉ० हरिचरण शर्मा

३२. नागार्जुन : जीवन और साहित्य — डॉ० प्रकाशचन्द्र भट्ट

३३. नागार्जुन : मेरे बाबू जी — शोभाकान्त मिश्र
प्रकाशक-वाणी प्रकाशन नई दिल्ली १९९०

३४. नया हिन्दी काव्य और विवेचन — डॉ० शम्भूनाथ चतुर्वेदी

३५. प्रिय प्रवास — अयोध्या सिंह उपाध्याय 'हरिऔध'

३६. प्रगतिवादी काव्य साहित्य — डॉ० कृष्णलाल हंस

३७. प्रगतिवादी काव्य — उमेशचन्द्र मिश्र

३८. प्रगतिशील काव्य धारा और केदारनाथ अग्रवाल — डॉ०राम विलास शर्मा
प्रकाशक-परिमल प्रकाशन सोहवतिया बाग इलाहाबाद १९८६

३९. भारतीय सौंदर्य शास्त्र की भूमिका — डॉ० फतह सिंह

४०. भारतीय चित्रकला — वाचस्पति गैरोला

४१. भारतीय साहित्य शास्त्र — डॉ० वल्देव उपाध्याय

४२. भारतीय काव्य शास्त्र की परम्परा — डॉ० नगेन्द्र

४३. भारत-भारती- वर्तमान खण्ड — मैथिलीशरण गुप्त
४४. भारत-भारती- भविष्यत् खण्ड — मैथिलीशरण गुप्त
४५. भारतीय काव्य शास्त्र की परम्परा — लक्ष्मी नारायण सुधांशु
४६. मंझन का सौंदर्य-दर्शन — डॉ० लालता प्रसाद सक्सेना
४७. महादेवी साहित्य (१) — सं० ओंकार शरद
४८. रस सिद्धान्त — डॉ० नगेन्द्र
४९. रस सिद्धान्त और सौन्दर्य शास्त्र — डॉ० निर्मला जैन
प्रकाशक नेशनल पब्लिसिंग हाऊस दिल्ली मार्च १९६७
५०. रवीन्द्र कविता कानन — निराला प्रचारक पुस्तकालय वाराणसी(१९५४)
५१. सिद्धान्त और अध्ययन — बाबू गुलाबराय
५२. सौंदर्य-शास्त्र प्रथम खण्ड — रामाश्रय शुक्ल करूणेन्द्र
प्रकाशक आरिएण्टल पब्लिसिंग हाऊस- परेड कानपुर १९७७
५३. सौंदर्य तत्व — डॉ० सुरेन्द्रनाथ दास गुप्ता
५४. सौंदर्य-शास्त्र — डॉ० हरिद्वारी लाल शर्मा
५५. सौंदर्य विज्ञान — हरिवंश सिंह
५६. साहित्यालोचन — डॉ० श्याम सुंदर दास
५७. सौंदर्य-शास्त्र के तत्व — डॉ० कुमार विमल
५८. साहित्य-शास्त्र — डॉ० रामकुमार वर्मा
५९. शिल्पी — सुमित्रानन्दन पंत
६०. हिन्दी साहित्य का इतिहास — सं. डॉ० नगेन्द्र
मयूर पेपरवैक्स ए ९५ सेक्टर ५ नोएडा १९९३
६१. हिन्दी साहित्य का उद्‌भव और विकास- — श्री राम बहोरी शुक्ल और डॉ०भगीरथमिश्र
६२. हिन्दी के राजनीतिक उपन्यासों का अनुशीलन — डॉ० ब्रजभूषण सिंह आदर्श
६३. हिन्दी काव्य प्रकाश — डॉ० सत्यव्रत सिंह
६४. हिन्दी की प्रगतिशील कविता — डॉ० रणजीत
६५. त्रिलोचन के काव्य — राजू एम०फिलिप
यात्री प्रकाशन, दिल्ली १९८५
६६. त्रिलोचन के बारे में — सं. डॉ० गोविन्द प्रसाद
प्रकाशक वाणी प्रकाशन नई दिल्ली १९९४

संस्कृत-ग्रन्थ

१. अग्निपुराण — व्यास
२. उज्जवल नील मणि — श्री मद् रूप गोस्वामी
३. औचित्य विचार चर्चा — क्षेमेन्द्र
४. कुमार संभवम् — कालिदास
५. काव्यांलकार सूत्रवृत्तिः — वामन
६. काव्यांलंकार — भामह
७. काव्यादर्श — दण्डी
८. काव्य प्रकाश — मम्मट
९ चन्द्रालोक — जयदेव पीयूषवर्ष
१०. ध्वन्यालोक — आनंदवर्धन
११. रस गंगाधर — जगन्नाथ
१२. वक्रोक्ति जीवितम् — कुन्तक
१३. साहित्य दर्पण — विश्वनाथ

कोश

१. मानविकी पारिभाषिक कोश (साहित्य खण्ड)
२. वाचस्पत्यम् कोश
३. संस्कृत-हिन्दी कोश- वी0एस0आप्टे
४. हिन्दी साहित्य कोश
5. Chamber's Dictionary
6. Incyclopedia Brittanica
7. A Dictionary of Phychology - James Drever
8. Shorter Oxford Dictionary.

पत्र-पत्रिकाएँ

१. आलोचना — जुलाई १९५७
२. ऋतुगंध — सं. राधाबल्लभ त्रिपाठी १९८९-९०
३. कल के लिए (नागार्जुन अंक) अक्टूबर-दिसम्बर — सं० जयनारायण १९९५

४. कौमी बोली सन् १९४४

५. विशाल भारत जनवरी १९४५

६. समालोचक (सौन्दर्य-शास्त्र विशेषांक)

७. सरस्वती (भाग-२१) सन् १९२०

८. सरस्वती सितम्बर१९४४

९. साक्षात्कार अगस्त-नवम्बर १९९६

१०. धर्मयुग दिसम्बर १९६६

११. स्थापना सितम्बर १९७०

अंग्रेजी-ग्रन्थ

1. Biographia Literaria I — S.T. Coleridge
2. Essays and Introduction — W.B. Yeats.
3. Greek English Lexicon — A. Lexicon.
4. Lectures on Art — Ruskin
5. Literary Criticism - A. Short History — Wimsatt & Brooks
6. Modern Painters Vol. I — Ruskin
7. Poetical Works & John Keats — John Keats
8. Poetic Image — C.D. Lewis
9. The Future Poetry — Sri Arvind
10. The Imagery of John Keats & P.B. Shelley — Fogal
11. The Symbolist Movement in Literature — Arthor Simons
12. What is Art — Tolstoy